आनंद सभा

सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर

पाठ्य पुस्तक (कक्षा ११)

राज्य आनंद संस्थान, आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन

आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर
पाठ्य पुस्तक (कक्षा ११)

पहला संस्करण मई २०२२

राज्य आनंद संस्थान
आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन
माध्यमिक शिक्षा मण्डल परिसर
शिवाजी नगर, भोपाल – ४६२०११

www.anandsansthanmp/in
anandsansthan@gmail.com
+91 755 255 3434

संदर्भ

- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (पाठ्यपुस्तकें)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (अभ्यास पुस्तिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षक मार्गदर्शिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षकों, अभिभावकों के लिए तैयारी हेतु शिविर) – ऑनलाइन एवम् प्रत्यक्ष

हमारे अन्य कार्यक्रम

- अल्पविराम
- आनंद क्लब
- आनंद सभा
- आनंद उत्सव (ख़ुशी का त्यौहार)
- आनंदम केंद्र
- आनंद कैलेंडर
- आनंद शिविर
- ऑनलाइन आनंद कोर्स (अलोहा)
- आनंद फ़ेलोशिप

ज्ञान के सार्वभौमीकरण की भावना से हम यह पाठ्य सामग्री सभी को सर्वशुभ हेतु बिना शर्त उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकाशन की विषयवस्तु यू एच वी टीम (uhv.org.in) के सहयोग के साथ विकसित की गई है। यह सामग्री औपचारिक (मुख्य धारा एवम वैकल्पिक) और अनौपचारिक, दोनो शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा सकती है।

अतएव यह कार्य CCO 1.0 के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।
लाइसेंस की प्रति देखने हेतु, कृपया देखें - https://creativecommons.org/publicdomain/zero/1.0

राष्ट्रगान

जन–गण–मन–अधिनायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
पंजाब–सिन्धु–गुजरात–मराठा
द्राविड़–उत्कल–बंग
विंध्य–हिमाचल–यमुना–गंगा
उच्छल–जलधि–तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मागे,
गाहे तव जय–गाथा।
जन–गण–मंगल–दायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।

(हर देश का अपना एक विशिष्ट झंडा और राष्ट्रगान होता है। ''तिरंगा झंडा'' भारतवर्ष का राष्ट्रध्वज है और ''जनगणमन'' राष्ट्रगान। राष्ट्रध्वज में ऊपर की पट्टी केसरिया रंग की और नीचे की हरे रंग की होती है। बीच की सफेद पट्टी के बीचों बीच २४ शलाकाओं का नीले रंग में गोल-चक्र होता है। केसरिया रंग त्याग का, सफेद शांति का और हरा रंग प्रकृति की सुन्दरता का प्रतीक है। चक्र का स्वरूप अशोक की सारनाथ-स्थित सिंहमुद्रा में अंकित चक्र की भाँति है यह चक्र सत्य और सब धर्मों का प्रतीक है।

राष्ट्रगान की रचना गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। इसमें संपूर्ण देश के लिए मंगल-कामना है। राष्ट्रगान और राष्ट्रध्वज का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। जब राष्ट्रगान गाया जाये या उसकी धुन बजाई जाये अथवा राष्ट्रध्वज फहराया जाये, तब हमें सावधान की स्थिति में खड़े होकर इसे सम्मान देना चाहिए।)

विषयसूची

अध्याय -1 16
मूल्य शिक्षा को समझना 16
मूल्य शिक्षा को समझना 16
तृप्ति-पूर्वक जीना(सुख एवं समृद्धि पूर्वक) 16
तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये शिक्षा 16
मूल्य शिक्षा 17
कौशल-शिक्षा 17
मूल्य एवं कौशल की परस्पर-पूरकता 17
कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता 17
मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय का महत्व 17
अपने लक्ष्य को ठीक-ठीक पहचानना 18
समग्र- दृष्टि का विकास 18
समग्र दृष्टि के साथ जीने के लिये कार्यक्रम की स्पष्टता 19
मूल्य शिक्षा के लिये दिशा- निर्देश 20
मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु 21
मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया : स्व-अन्वेषण 21
अध्याय-2 23
स्व-अन्वेषण : मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया 23
स्व-अन्वेषण : स्वयं में संवाद 23
स्वयं में संवाद 23
स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु 25
स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया 25
सहज-स्वीकृति को समझना - सही समझ का आधार 26
स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय 27
अध्याय-3 31
मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति 31
मूल चाहना का क्या अर्थ है? 31
मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता 31
मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकताएँ 31
सही समझ, संबंध और सुविधा- यह तीनों ही मानव की तृप्ति के लिये आवश्यक हैं 32
वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा 32
मानव चेतना का विकास 34

समग्र विकास 34
शिक्षा-संस्कार की भूमिका 35
अध्याय-4 37
सुख और समृद्धि को समझना- इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिये कार्यक्रम 37
सुख के अर्थ को समझना 37
निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम 37
समृद्धि के अर्थ को समझना 37
सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि 38
सुख की निरंतरता सुविधाओं से ? 38
सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से? 38
सुख, आवेश नहीं है 38
सुख के लिये कार्यक्रम 39
कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष 40
अध्याय-5 42
मानव को स्वयं(मैं) और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना. 42
स्वयं (मैं)और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मानव 43
मैं और शरीर की आवश्यकतायें 43
आवश्यकता- क्या ये सामयिक हैं या निरंतर? 43
आवश्यकतायें - मात्रात्मक और गुणात्मक 44
मैं और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति 44
स्वयं(मैं) की आवश्यकताएं निश्चित हैं 45
स्वयं (मैं) और शरीर की क्रियायें 45
'स्वयं (मैं)' और शरीर की अनुक्रिया 46
मैं , चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में 47
मुख्य भ्रम - मानव को केवल शरीर मानना 48
मानव के केंद्र में मैं है 49
अध्याय-6 50
स्वयं में व्यवस्था- को समझना 50
मैं की क्रियायें 51
मैं की क्रियायें निरंतर हैं 51
क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता 52
कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में 52
कल्पनाशीलता की स्थिति 52
कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति 53
तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता? 54

आगे का मार्ग - स्व-अन्वेषण के माध्यम से मैं में व्यवस्था सुनिश्चित करना 55
स्वयं (मैं) में व्यवस्था को विस्तार से समझना 56
अध्याय-7 57
'शरीर' के साथ 'स्वयं (मैं)' की व्यवस्था - संयम और स्वास्थ्य को समझना 57
'स्वयं (मैं)' द्रष्टा-कर्ता-भोक्ता के रूप में ('शरीर' एक यंत्र के रूप में) 57
'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित प्रणाली और 'स्वयं (मैं)' के एक यंत्र के रूप में 58
'स्वयं (मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था 58
संयम एवं स्वास्थ्य के लिये कार्यक्रम 58
'स्वयं (मैं)' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था के प्रकाश में समृद्धि की पुनरावृत्ति 59
'स्वयं (मैं)' और मेरे 'शरीर' के प्रति मेरी भागीदारी (मूल्य) 59
अध्याय-8 60
परिवार मे व्यवस्था- मानव-मानव संबंध में मूल्य को समझना 60
मानव-मानव परस्परता में जीने की मूल इकाई-परिवार 61
परिवार में व्यवस्था का आधार - संबंध में भाव 61
संबंध में सहज-स्वीकार्य भाव (मूल्य) – उभय-सुख की प्राप्ति हेतु भावों के निर्वाह और इनके सही मूल्यांकन 62
संबंध के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दु 62
मानव-मानव संबंध में आधार मूल्य- विश्वास 63
मानव-मानव संबंध में मूल्य- सम्मान 63
सम्मान की संपूर्ण विषय-वस्तु - हमारी परस्पर-पूरकता है 64
मानव-मानव संबंध में मूल्य- स्नेह, ममता और वात्सल्य 65
मानव-मानव संबंध में मूल्य-श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता 66
मानव-मानव संबंध में पूर्णमूल्य-प्रेम 67
सही भाव- स्वयं के आधार पर या दूसरे से ? 67
संबंध के निर्वाह में सुविधाओं की भूमिका 67
न्याय की समझ 67
प्रेम एवं न्याय की समझ से संबंधित मूल बिन्दु: 68
अध्याय-9 69
समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना 69
शिक्षा-संस्कार 71
संयम और स्वास्थ्य 73
समग्र मानव स्वास्थ्य 75
सार्वभौमिक/मूलभूत स्वास्थ्य सिद्धान्त 77
स्वास्थ्य के लिए अनुशंसाएँ 77
अनुशंसाओं का कार्यान्वयन 78

आहार 79
भोजन और पारंपरिक ज्ञान 81
दिनचर्या 84
उत्पादन-कार्य 104
न्याय-सुरक्षा 110
मानवीय समाज में व्यवसाय 114
सार्वभौम मानवीय व्यवस्था- परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक 115
विषय क्षेत्र -परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था-सार्वभौम मानवीय व्यवस्था 116
सही समझ के सहज निष्कर्ष 116
समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य) 118
मुख्य बिंदु 119
अपनी समझ को जाँचे 120
अनुभाग-1 स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 120
अनुभाग- 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 121
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 121
अनुभाग-4 आपके प्रश्न 122

अध्याय-10 123
प्रकृति में व्यवस्था – अंतर्संबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर-पूरकता को समझना 123

पुनरावृत्ति 125
चारों अवस्थाओं को समझना 125
चारों अवस्थाओं की क्रियायें 126
चारों अवस्थाओं में अंतर्निहित प्रकृति-सहज धारणायें 128
चारों अवस्थाओं के स्वभाव 130
चारों अवस्थाओं की अनुषंगीयता 131
ज्ञान अवस्था के लिये शिक्षा-संस्कार का महत्व 132
प्रकृति में प्रचुरता 134
मुख्य बिंदु 135
अपनी समझ को जाँचे 136
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 137
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 137
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 138
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 138

अध्याय-11 139
अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना .. 139

पुनरावृत्ति 140

शून्य और इकाइयों को समझना 140
इकाइयाँ आकार में सीमित है; शून्य असीमित है 141
इकाइयाँ क्रिया हैं, वे क्रियाशील हैं; शून्य “क्रिया-शून्य” है 141
संपृक्तता को समझना 143
इकाइयाँ शून्य में उर्जित हैं 144
इकाइयाँ शून्य में स्व-व्यवस्थित हैं 145
इकाइयां शून्य के सह-अस्तित्व में दूसरी इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं .. 145
अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में - शून्य में संपृक्त इकाइयाँ 146
मुख्य बिंदु 147
अपनी समझ को जाँचे 147
(Test Your Understanding) 147
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 147
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 148
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 148
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 149
परिशिष्ट 149

पुस्तक का एक परिचयात्मक अवलोकन एवं पाठक के लिये एक संदेश

स्नेही विद्यार्थीगण, हम इस अभिनव और महत्वपूर्ण प्रयास: "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को पढ़ने व समझने के लिए आपकी रुचि और प्रतिबद्धता की सराहना करते हैं।

हम बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी मानव सुखी रहना चाहते हैं; निरंतर सुखी रहना चाहते हैं| इसे हममे में से हर एक अपने में जांच कर देख सकते हैं| इस निरतर सुख को ही आनंद कहा है| नन्द शब्द का अर्थ है प्रसन्न रहना, सुखी रहना, आनंद का अर्थ है- सुख के अभाव का अभाव अर्थात निरंतर सुख

आनंद = अ + अ + नंद
= अभाव + अभाव + सुख
= सुख के अभाव का अभाव = निरंतर सुख

हम आनंद पूर्वक, निरंतर सुख पूर्वक रहना चाहते हैं| इसी के लिए हमारे जिन्दगी के सारे प्रयास हैं|

सुख के बारे आज की प्रचलित सोच यह है कि सुख मिलता है

- अनुकूल संवेदना के आस्वादन से
- दूसरे से भाव पाकर
- सुविधा से, उसके भोग से

इसलिए प्रचलित कार्यक्रम सुविधा-संग्रह (असीमित, किसी भी तरह) के रूप में दिखाई देता है! परन्तु, इन आधार पर कितना भी प्रयास किया जाय, कितनी भी उपलब्धि हो, इससे आनंद, सुख की निरंतरता, को सुनिश्चित नहीं किया जा पाता |

इस सोच के में मूल में मान्यता है कि मनाव केवल शरीर है तथा सुख शरीर से, बाहर से पायी जाने वाली कोई वस्तु |

जबकि वास्तविकता को सीधा सीधा देखने का प्रयास करें तो यह दिख पाता है कि

- मानव केवल शरीर ही नहीं है, परंतु मैं (चैतन्य) और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में है
- सुख = व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति में
- आनंद = निरंतर सुख = निरंतर व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – जीने के हर स्तर पर

अतः आनंद पूर्वक जीने का आधार

- व्यवस्थित मन – स्वयं में सही समझ, भाव-विचार – व्यवस्था का
- व्यवस्थित शरीर – शरीर में स्वास्थ्य, न केवल रोग का निवारण
- व्यवस्थित वातावरण
    - व्यवस्थित परिवार- संबंध व समृद्धि पूर्वक जीना
    - व्यवस्थित समाज – न्याय व व्यवस्था संपन्न, "सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय"
    - व्यवस्थित प्रकृति – परस्परपूरकता आधारित, समृद्ध प्रकृति

'सार्वभौमिक मानव मूल्य' के आधारभूत पाठ्यक्रम के माध्यम से हम सभी, शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक आनंद पूर्वक जीने की सही समझ (उपरोक्त वर्णित) पर मनन-चिंतन व् अभ्यास करने का प्रयास करेंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य में हम सबकी प्रमुख भागीदारी है, जिम्मेदारी है।

यह पुस्तक, लंबे प्रयोग, परामर्श और चिंतन के परिणामों पर आधारित है। जिसका उद्देश्य शिक्षा को मूल्य शिक्षा की एक ऐसी पद्धति से जोड़ना है, जो कि सार्वभौम रूप से सभी को स्वीकार्य हो। इस दिशा में पहला और महत्वपूर्ण कदम "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को शुरू करना है, जिसके लिये यह विषय वस्तु तैयार की गई है।

इस पुस्तक में, मानव के साथ-साथ शेष-प्रकृति और अस्तित्व को समझने के लिये एक सुव्यवस्थित स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को प्रस्तावित किया गया है, जिसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में सार्वभौमिक मानवीय मूल्य और निश्चित मानवीय आचरण की समझ सुनिश्चित हो पाती है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक ओर मानव को स्वयं के आधार पर अपने में सही समझ सुनिश्चित करने के योग्य बनाती है, और दूसरी ओर यह प्रक्रिया, मानव को 'स्वयं' के विकास के साथ-साथ जीने में आवश्यक व्यवहार, कार्य को सीखने में सहयोग करती है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया को, मूल्य शिक्षा की एक प्रभावी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

इस पुस्तक को इस प्रकार लिखा गया है कि, पाठक के भीतर एक संवाद की प्रक्रिया शुरु हो सके। जिसके लिये एक सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तावों को एक-एक करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, ताकि वह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से इन प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन कर सकें। पूरी चर्चा इस विषय पर केन्द्रित है, कि मानव का तृप्ति पूर्वक जीना कैसे हो पाये? यह अध्ययन, मानव के जीने के सभी स्तरों पर अंतर्निहित व्यवस्था को समझने और जीने के अर्थ में है, जो कि मानव के तृप्ति पूर्वक जीने का आधार है।

पाठकों के ध्यान देने के लिये महत्वपूर्ण टिप्पणी (A Note to the Readers)

इस पुस्तक की विषय-वस्तु को, प्रस्तावों के एक समूह के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें याद करने या याद करके सुनाने या वाह्य रूप से इन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के बजाय, धीरे-धीरे इन्हें अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचना है। इससे आपके भीतर एक संवाद शुरु होगा– 'जैसे आप है' और 'जैसा होना आपको सहज स्वीकार्य है' के बीच। जैसे-जैसे आप इस पुस्तक को पढ़ते जाते हैं, आप इस प्रस्तावित विधि से अध्ययन कर पाते हैं। और जैसे-जैसे आप इस अध्ययन की प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं, आपके अंदर कई प्रश्न बन सकते हैं, जिनमें से अधिकांश प्रश्न धीरे-धीरे इस स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के दौरान स्वतः ही हल हो जायेंगे; जो कि एक महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी उत्तर से तभी आश्वस्त हो पाता है, जब वह स्वयं में उत्तर देख पाये बजाय इसके कि बाहर से उस पर उत्तर थोपे जायें।

हमारी भूमिका, इन प्रस्तावों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने और आप में स्व-अन्वेषण एवं स्व-सत्यापन की प्रक्रिया को शुरू करने में सहयोग करने की है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया से आप उन मूल्यों को स्वयं में देख सकेंगे, जो कि प्राकृतिक रूप से आप में अंतर्निहित हैं ही। यह आपको स्व-विकास, अर्थात् 'स्वयं' के विकास की ओर ले जायेगा, जिसके परिणाम स्वरूप, आपकी मूल चाहना की पूर्ति हो पायेगी। यहाँ आपकी ओर से एक ईमानदार एवं निष्ठापूर्ण प्रयास की अपेक्षा है। इसके लिये, इस पुस्तक को पढ़ते समय निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखा जा सकता है-

जागरूकता के साथ पढ़ें
(Read with Awareness)

इस पुस्तक को समझने की दृष्टि से, जागरूकता के साथ पढ़ना आवश्यक है। किसी बात को केवल याद कर लेना, वास्तव में, उसे समझना नहीं है। हमने कुछ वास्तविकता देखी है; उस वास्तविकता से जुड़े कुछ अर्थ हैं, और इन अर्थों के लिये हमने कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। हमारी तरफ से, इन शब्दों को प्रस्ताव के रूप में, इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। जब आप कोई शब्द पढ़ते हैं, तो आप उसे किसी न किसी अर्थ से जोड़ते हैं। क्या आपके द्वारा जोड़ा गया अर्थ और हमारे द्वारा इंगित किया गया अर्थ, अनुरूप हैं? इसके अलावा, आप स्वयं में उस शब्द अथवा उसके अर्थ से इंगित वास्तविकता को देखने की कोशिश करते हैं। यदि आप उसी वास्तविकता को स्वयं में देखने में सक्षम हो पाते हैं, जिसे हमारे द्वारा इंगित किया गया है, तो वास्तव में यह संवाद सफल होता है। वास्तव में, हम वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं के अर्थ को जोड़ते हैं। हम आने वाले अध्यायों में, व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं (अर्थों) का वर्णन करेंगे, जिन्हें आप स्वयं में देख सकते हैं और वास्तविकता को स्वयं में समझ सकते हैं। हम सभी में समझने और जानने की प्राकृतिक क्षमता है ही।

अध्याय 5-7 'मानव में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-8 'परिवार में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-9 'समाज में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-10 'प्रकृति में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है और अंततः अध्याय-11 'अस्तित्व में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है। हमारा सुझाव यह है कि आप प्रस्तावों द्वारा इंगित किये जाने वाले अर्थ को समझने के लिये, इन प्रस्तावों को जागरूकता के साथ पढ़े और इन्हें, इंगित वास्तविकता (अस्तित्व सहज व्यवस्था) से जोड़ने का प्रयास करें। यदि आप अस्तित्व सहज वास्तविकता को समझने में सक्षम हो पाते हैं, तो इस पुस्तक के माध्यम से उस वास्तविकता को संप्रेषित करने का हमारा यह संयुक्त प्रयास सफल है।

पूर्व-निर्मित समाधान खोजने के प्रयास से बचें
(Avoid Jumps to Readymade Solutions)

हम कभी-कभी विभिन्न परिस्थितियों में तुरंत पूर्व-निर्मित (पहले से तैयार) समाधान प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, कुछ सूत्रों में पिरोने की कोशिश करते हैं जिससे समाधान मिल सके। इस पुस्तक में, मूल समझ के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कि किसी भी स्थिति/परिस्थिति के लिये आपमें समग्र समाधान का एक आधार बन सकता है। यदि व्यक्ति इस मूल समझ से युक्त होता है, तो वह समस्याओं से मुक्त होकर जी सकता है। चूंकि, समस्यायें समय, स्थान, और व्यक्ति के साथ बदलती रहती हैं; इसलिये यह एक व्यक्तिगत जिम्मेदारी है कि हम अपने लिये इस मूल समझ के आधार पर समाधान सुनिश्चित करने का प्रयास स्वयं करें। मूल्यों की समझ से हमें ऐसे समाधानों को विकसित करने में मदद मिलेगी, जो निरंतरता में हमारे लिये परस्पर पूरक होंगे। इसे सुविधाजनक बनाने के लिये, उपयुक्त स्थानों पर कुछ उदाहरण भी दिये गये हैं, ताकि आप इन प्रस्तावों को अपने जीने के साथ जोड़कर देख सकें।

मौजूदा मान्यताओं/पूर्वाग्रहों के साथ तुलना से बचें
(Avoid Comparing with Existing Beliefs/Notions)

वैसे, हम सभी के पास लंबे समय से चले आ रहे पूर्वाग्रह अथवा मान्यतायें हैं ही। वे सही या गलत दोनों ही हो सकते हैं, लेकिन हम उन्हें बिना जाँचे ही स्वीकारे रहते हैं। यदि हम सावधान नहीं हैं, जागरूक नहीं हैं, तो जो कुछ भी इस पुस्तक में बताया जा रहा है, उसकी तुलना हम अपने मौजूदा पूर्वाग्रहों या

मान्यताओं से करने लगते हैं। ऐसा हो सकता है, कि किसी वास्तविकता के बारे में यहाँ कुछ और कहा जा रहा हो, और आपकी मान्यता उसके संदर्भ में कुछ और हो। फिर आप कैसे तय करेंगे कि सही क्या है? क्या आप इस बात पर जोर देंगे कि केवल आपकी वर्तमान मान्यता ही सही है? या यहाँ जो प्रस्तावित किया जा रहा हैं, आप उसे समझने और जाँचने का प्रयास करेंगे, और साथ ही साथ अपनी वर्तमान मान्यता की भी जाँच करेंगे? यहाँ पर हम आपको, इन दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण करने के साथ-साथ, अपनी मान्यताओं का स्व-अन्वेषण करने का भी सुझाव दे रहे हैं। इससे आपको अपनी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को स्व-सत्यापित करने में सहयोग मिलेगा।

प्रस्तावों की जाँच करें (सहमत या असहमत होने के बजाय)

Verify the Proposals (rather than agreeing or disagreeing)

हम अपनी वर्तमान मान्यताओं से तुलना के आधार पर प्रस्ताव से सहमत या असहमत हो सकते हैं, लेकिन, इस प्रक्रिया में हम वास्तविकता को देख नहीं पाते, अतः तुलना करने से बचना होगा। सहमत या असहमत होने के बजाय, हम आपको इन प्रस्तावों को सत्यापित करने / जाँचने का आग्रह कर रहे हैं। हमने इस पुस्तक में कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर, 'रुकें और सोचें' नामक प्रतीक का प्रयोग किया है। आपसे अपेक्षा है कि आप इन विशेष बिंदुओं पर कुछ समय रुककर, स्वयं में देखने की कोशिश करें।

प्रत्येक अध्याय में, 'अपनी समझ को जाँचे' नामक एक अनुभाग भी दिया गया है। जिसमें, तीन उप-अनुभाग हैं। अनुभाग-1, प्रश्नों का एक समूह है, जो आपको यह जाँचने में मदद करेगा कि आपने अध्याय में प्रस्तुत प्रस्तावों को कितना समझा है। अनुभाग-2 में, इन प्रस्तावों को आपके दैनिक जीने से जोड़ने में सहयोग के लिये कुछ अभ्यास दिये गये हैं। अनुभाग-3 में, प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग से संदर्भित कुछ अभ्यासों का उल्लेख किया गया है, जिसमें आप अपनी समझ की एक रचनात्मक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अगले अध्याय में जाने से पहले यह महत्वपूर्ण होगा, कि आप इन दिये गये अभ्यासों को करने की कोशिश अवश्य करें। यदि आपके कुछ प्रश्न हों तो उन्हें लिख लें। यह संभव है कि, जैसे-जैसे आप स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे बढेंगे तो आप स्वयं ही उन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर प्राप्त कर पायेंगे। उस स्थिति में, जिन भी प्रश्नों का उत्तर आपको मिल जाता है, उन्हें चिह्नित कर लें। शेष बचे हुये प्रश्नों के उत्तर के लिये, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया स्वयं में जारी रखना आवश्यक है, साथ ही आप अपने प्रश्न से संबंधित शीर्षकों को पुनः पढ़ सकते हैं, अपने शिक्षक के साथ चर्चा कर सकते हैं, वेबसाइट देखे सकते हैं अथवा वेबिनार या कार्यशाला में प्रतिभाग कर सकते हैं। निश्चित रूप से जब हमारे मूलभूत प्रश्नों के उत्तर स्वयं से प्राप्त होते हैं, तब वह अधिक तृप्ति दायक होते हैं।

इस पुस्तक में आप यह देखेंगे कि कुछ वक्तव्यों, अवधारणाओं और चित्रों को कई बार दोहराया गया है। ऐसा आपका ध्यान बार-बार उनकी ओर आकर्षित करने के लिये किया गया है, या पहले हो चुकी बातों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने के अर्थ में किया गया है या जिन मुद्दों पर आपकी मान्यतायें बहुत मजबूत हैं उनका मूल्यांकन करने में आपका सहयोग करने के अर्थ में किया गया है; क्योंकि आपकी ये मान्यतायें आपको वास्तविकता जैसी है, उसे वैसा समझने में बाधा उत्पन्न करती हैं।

यहाँ हमने कुछ समस्याओं का उल्लेख किया है, जिससे आपका ध्यान उन समस्याओं के सार्थक विश्लेषण की ओर जा पाये। जैसे परिवार और समाज में शासन की समस्या का विश्लेषण करना, यह परिवार या समाज में विघटन को बढ़ावा देने के लिये नहीं किया गया है और न ही यह आपकी अथवा दूसरों की निराशाजनक आलोचना करने के लिये ही किया गया, बल्कि ऐसा समस्याओं के मूल कारणों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किया गया है; क्योंकि सामान्यतः वास्तविकता के कुछ हिस्से के बारे हम जागरूक ही नहीं रह पाते हैं, जिससे हम समस्या के मूल कारण को ठीक से नहीं देख पाते।

प्रस्तावों को समझने के लिये, हमने कुछ उदाहरणों और कहानियों का भी प्रयोग किया है। ये आपके जीने के साथ प्रस्तावों को जोड़ने में आपकी मदद करने के अर्थ में है। ये बने बनाये समाधान प्रस्तुत करने अथवा 'क्या करें या क्या न करें' के अर्थ में नहीं हैं। पढ़ते समय आप इस बात के लिये जागरूक रहें कि कहीं इन उदाहरणों में ही आप लिप्त न हों जायें और मूल बिन्दु ही छूट जाये।

इस पुस्तक में, सभी प्रस्तावों को एक क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन्हें इसी क्रम में पढ़ना अपेक्षित है, क्योंकि प्रस्तावों के एक समूह की समझ, आने वाले अगले प्रस्तावों को समझने में सहयोग करता है। एक प्रकार से, यह पूरी पुस्तक पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक एक ही 'वाक्य' है। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक निश्चित क्रम में पूरे वाक्य को पढ़ने से ही इसके अर्थ को सही ढंग से समझा जा सकता है।

प्रस्तावों का प्रयोगात्मक सत्यापन करें

(Experientially Validate the Proposals)

यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक सतत प्रक्रिया है। कार्यशालाओं में, हम आमतौर पर ऐसा कहते हैं कि "यह कार्यशाला शुरू तो होती है, लेकिन कभी समाप्त नहीं होती", क्योंकि एक बार जब आप अपने में, स्वयं के अधिकार पर जाँच शुरू कर देते हैं, तो यह जाँच सतत जारी रहती है। यह प्रक्रिया, स्व-विकास की प्रक्रिया के रूप में सतत चलती रहती है। यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, मात्र कक्षा तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रस्तावों का विश्लेषण करने, इनको स्वयं के अधिकार पर जाँचने, और जीने में इनका स्व-सत्यापन करने इत्यादि के रूप में यह प्रक्रिया हमारे दैनिक जीने का एक अंग बन जाती है। मूल्य-शिक्षा के बारे में अच्छी बात यह है कि, आपको इसके लिये किसी विशेष प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है - हमारा संपूर्ण जीना ही एक प्रयोगशाला है!

यह अध्ययन, समझने के लिये है; और समझना, तृप्ति पूर्वक जीने के लिये है। अतः यह स्पष्ट रहना अनिवार्य है कि हमारा अंतिम लक्ष्य भी यही है 'परस्पर तृप्ति पूर्वक जीना', स्वयं की तृप्ति, दूसरों की तृप्ति और अंततः सभी की तृप्ति। मूलतः हमारा जीना इस बात का प्रमाण है कि वास्तव में हमने कितना समझ लिया है!

अब, हम अध्ययन के लिये तैयार हैं।

अध्याय 1

मूल्य शिक्षा को समझना
(Understanding Value Education)

पिछली कक्षाओं में हमने मानव मूल्यों एवं मूल्य शिक्षा के आशय पर चर्चा के साथ-साथ,मूल्य शिक्षा की आवश्यकता, सामग्री, प्रक्रिया और मूलभूत दिशा-निर्देशों की व्याख्या करते हुए, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया की विस्तार से चर्चा की। मूल्य शिक्षा की आवश्यकता वस्तुत: समग्र में जीने के प्रयास को कहा गया। मूल रूप से सहज स्वीकार्यता, तार्किकता , सार्वभौमिकता और स्व परीक्षण को मूल्य शिक्षा के दिशा निर्देश के रूप में जाना गया। इन सबकी संक्षिप्त पुनरावृत्ति हम कक्षा ग्यारह में करेंगे।

मूल्य शिक्षा को समझना
(Understanding Value Education)

पिछली कक्षाओं में हमने मूल्य शिक्षा को समझना आरंभ किया है और इसी प्रयास में आगे बढ़ रहे हैं। मानवीय मूल्यों को समग्र से समझने के क्रम में हमने देखा कि हम सभी तृप्तिपूर्वक जीना ही चाहते हैं। इसके लिए, हम उज्ज्वल भविष्य की योजना बनाते हैं, वास्तव में हम ऐसा जीना चाहते हैं जिसमें हर क्षण सुख हो ,आनंद हो। हमारे तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये हमें जो भी आवश्यक लगता है उसकी एक सूची बना कर हमने कक्षा 9-10 में समझने का प्रयास किया।

तृप्ति-पूर्वक जीना(सुख एवं समृद्धि पूर्वक)
(Living a Fulfilling Life)

तृप्ति पूर्वक जीने का अर्थ अपनी आवश्यक सुविधा की आवश्यकता को पूरा करने के साथ-साथ स्वस्थ शरीर और अपने सगे -संबंधियों के साथ संबंध पूर्वक जीते हुए हर समय अपने आप में सुख और समृद्धि का भाव बना रहने से होता है। इसके साथ समाज में शांति और व्यवस्था, प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व (Co-existence) में होने की प्रक्रिया और वास्तविकताओं को जैसा है वैसा ही समझना।

तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये शिक्षा
(Education for a Fulfilling Life)

तृप्ति-पूर्वक जीने की समझ और इसे सुनिश्चित करने के लिये मानव के लिये ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं:-

1. **क्या करना है (What to do)? - मूल्य शिक्षा**
2. **कैसे करना है (How to do it)? - कौशल-शिक्षा**

एक समग्र शिक्षा (holistic education) के लिये इन दोनों पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक होगा। किसी वस्तु का मूल्य उसकी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है जिसका (मानव, परिवार, समाज और अंततः प्रकृति/ अस्तित्व के स्तर पर) कि वह हिस्सा है।

मूल्य शिक्षा

(Value Education)

शिक्षा का वह भाग, जो मानव की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी को समझने और वैसा जीने को सुनिश्चित करता है, उसे मूल्य शिक्षा कहते हैं। यह बाकी शिक्षा के लिये आधार प्रदान करती है, जो कि तृप्ति-पूर्वक जीने में सहायक हो।

कौशल-शिक्षा

(Skill Education)

कौशल-शिक्षा के साथ-साथ मूल्य शिक्षा की भी उतनी ही आवश्यकता है। यह भी समझना जरूरी है कि कौशल शिक्षा का विकास किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयोग किया जा रहा है।

कौशल मात्र एक साधन (means) है, जिसके द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस निर्णय के बिना कौशल शिक्षा उद्देश्य विहीन, दिशाहीन हो जाता है।

मूल्य एवं कौशल की परस्पर-पूरकता

(Complementarity of Values and Skills)

तृप्ति-पूर्वक जीने के लक्ष्य के लिये मूल्य और कौशल के बीच परस्पर-पूरकता आवश्यक है, बल्कि कौशल शिक्षा का विकास मूल्य शिक्षा के आधार में होना ही वरीयता का कार्य है। अत:, यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि मानव के रूप में हम अपने उद्देश्य को पहचान सकें। इस निर्णय के बिना कौशल उद्देश्य विहीन, दिशाहीन हो जाता है, और इसका प्रयोग किसी भी उद्देश्य के लिये किया जा सकता है– रचनात्मक या विध्वंसात्मक (constructive or destructive)। मूल्य और कौशल दोनों की आवश्यकता साथ-साथ है, दोनों में परस्पर-पूरकता है। तृप्ति-पूर्वक जीने के लक्ष्य के प्रति किसी भी मानवीय प्रयास की सफलता के लिये दोनों के बीच परस्पर-पूरकता आवश्यक है।

कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता

(Priority of Values over Skills)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, **'क्या करना है'** को निर्धारित करने के लिए मूल्य की समझ आवश्यक है जबकि **'कैसे करना है'** को निर्धारित करने के लिये कौशल आवश्यक है। अब, यदि हम अपने आप से पूछें कि इनमें वरीयता क्रम क्या होगा, तो **'क्या करना है'** यह पहले निर्धारित किया जाएगा उसके बाद ही हम 'कैसे करना है' के बारे में सोच सकते हैं। आप ये देख पा रहे हैं कि कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता है हालांकि मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये ये दोनों ही आवश्यक हैं।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय का महत्व

(Appreciating the Need and Important Implication of Value Education)

हम मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय को समझते हुए ही कौशल शिक्षा को समग्र विकास के लिए सुनिश्चित कर सकते हैं।

अपने लक्ष्य को ठीक-ठीक पहचानना

(Correct Identification of Our Goals)

मूल्य शिक्षा हमें अपने लक्ष्य को ठीक-ठीक पहचानने में सहायक होती है। जैसे कि -क्या मानव का लक्ष्य अधिक से अधिक धन संग्रह करना है या समृद्ध जीवन (prosperous life) को सुनिश्चित करना है? क्या सुविधाओं का संग्रह करना और समृद्धि दोनों एक ही हैं या अलग-अलग हैं? क्या मानव का लक्ष्य केवल भोग अर्थात् इन्द्रिय संवेदनाओं को भोगना (sensual pleasure) है और वह भी निरंतरता में? क्या भोग और सुख दोनों वास्तविकताएं एक ही है या दोनों अलग-अलग हैं? क्या हम अपना लक्ष्य तय करते समय स्वयं में देखते हैं या दूसरे को देखते है? पिछली कक्षाओं में हमने इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया है| ऐसे ही अनेक मुद्दे हैं जिनके साथ हम संघर्षरत हैं, जहाँ असमंजस की स्थिति उत्पन्न होती है और अपने लक्ष्य को निश्चितता के साथ तय कर पाना कठिन हो जाता है। आगे और बढ़ने पर हमने देखा कि मानव, प्रकृति, संबंध और व्यवस्था को समझने के उपरांत जीने के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी भागीदारी को समझना संभव है, इसलिये अपना लक्ष्य, अपना उद्देश्य भी ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इसी को समग्र की दृष्टि (holistic perspective) कहा गया है ।

समग्र- दृष्टि का विकास

(Development of Holistic Perspective)

मूल्य शिक्षा से समग्र दृष्टि बनती है, जो मानव (वह जो समझने वाला है), प्रकृति/अस्तित्व (जिसका कि हम अभिन्न अंग हैं) और प्रकृति/अस्तित्व में हमारी भागीदारी की स्पष्टता से होता है। यह भागीदारी ही हमारी भूमिका है और यही हमारा मूल्य है। (चित्र. 1-1. देखिये)। हम यह भी देख सकते हैं कि जब हम किसी भी स्तर पर अपनी भागीदारी का निर्वाह करते हैं तो हम सुख का अनुभव करते हैं।

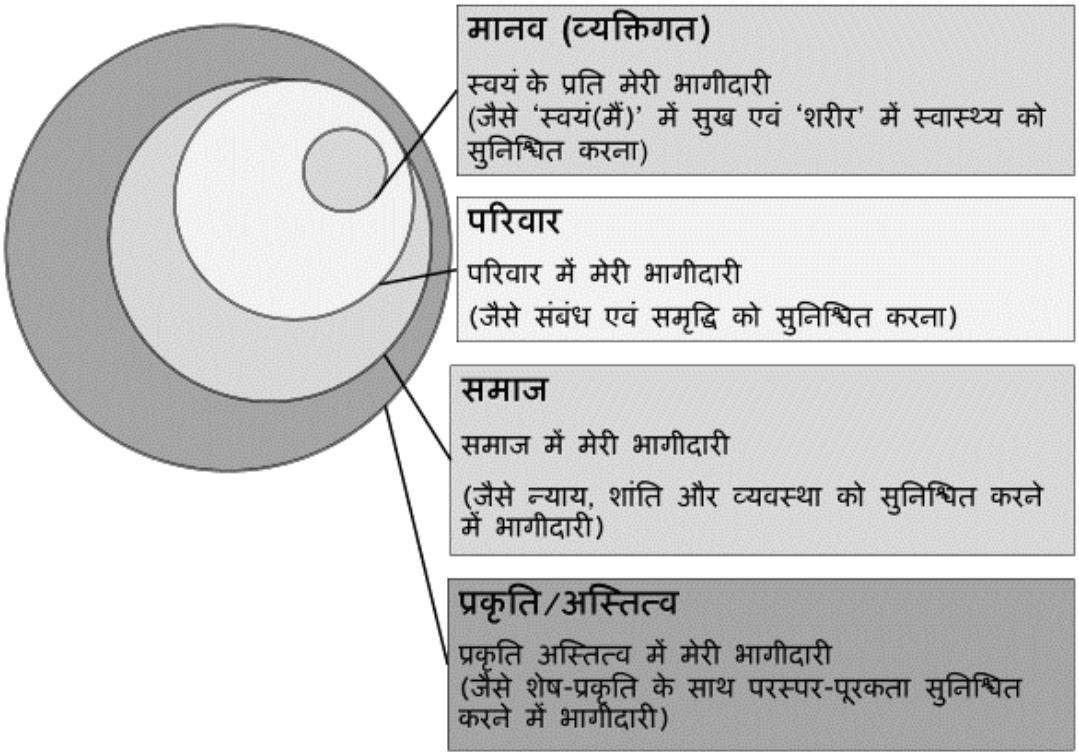

चित्र. 1-1. बड़ी व्यवस्था में भागीदारी और अंतर्संबंध

मूल्य शिक्षा से समग्र दृष्टि बनती है, जो कि मानव मूल्य, मानव से संबंध, प्रकृति/ अस्तित्व से हमारी अभिन्नता और प्रकृति/अस्तित्व में हमारी भागीदारी की स्पष्टता से होता है। यह भागीदारी ही हमारी भूमिका है और यही हमारा मूल्य है।

हम इस अस्तित्व में सबसे छोटे स्तर से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड (whole cosmos) तक परस्पर-जुड़े (interconnected) हुये हैं तथा परस्पर-संबंधित (interrelated) हैं।

हम यह स्वीकार सकते हैं कि प्रकृति की सभी इकाइयां जो अस्तित्व में है, उनमें व्यवस्था और संबंध एक सूत्र की तरह उपलब्ध है। अब हम यह देख सकते हैं कि ये सभी इकाइयां जो छोटे परमाणु से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड तक हैं, ये प्रत्येक स्तर पर इस व्यवस्था और संबंध की ही अभिव्यक्ति (expressions) हैं।

समग्र दृष्टि के साथ जीने के लिये कार्यक्रम की स्पष्टता

(Clarity of Programme to Live with Holistic Perspective)

मूल्य शिक्षा ऐसी दृष्टि (vision) प्रदान करती है, जिससे कि हम हर तरह के प्रश्नों के उत्तर पा सकते हैं। हम यह भी देख सकते हैं कि इस तरह कार्यक्रम की स्पष्टता हमारे स्वयं के सुख के लिये भी आवश्यक है।

हमारी मान्यताओं का मूल्यांकन
(Evaluation of Our Beliefs)

मूल्य शिक्षा हमारी अपनी मान्यताओं (preconditioning) के बारे में जागरूक होने में सहायक सिद्ध होता है। हमारा अधिकांश व्यवहार या क्रियाकलाप इन्हीं मान्यताओं पर आधारित होता है जिसके बारे में सामान्यतः हम अनभिज्ञ रहते हैं। यह हमारे जीवन में निर्णय लेते समय

मार्गदर्शन करती रहती हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी मान्यताओं का भली भांति मूल्यांकन करें। निःसंदेह हमारी सभी मान्यता गलत नहीं होती हैं, लेकिन इसका पता स्वयं के आधार पर जांच कर ही कर सकते हैं।

एक मान्यता यह भी है कि प्रकृति इस प्रकार से बनी है जिसमें "जीवन संघर्ष है" और "ताकतवर का ही अस्तित्व बना रह पाता है " (struggle for survival and the 'survival of the fittest'); अतः मनुष्य को जीवन पर्यंत संघर्ष करते ही रहना पड़ेगा इस मान्यता के कारण ही हम दूसरे मानव के साथ परस्पर-पूरकता की जगह प्रतिस्पर्धा (competition) की सोचते हैं। यहाँ तक कि हम उस पर शासन (domination) का भी सोच लेते हैं जो अंततः हमें लड़ाई और युद्ध की तरफ ले जाता है। हम सुविधाओं के अधिकाधिक संग्रह के बारे में सोचते हैं, जिसकी पूर्ति के लिये हम शेष-प्रकृति पर शासन और शोषण (mastery and exploitation) के लिये भी तत्पर रहते हैं बजाय इसके कि हम परस्पर-पूरकता सुनिश्चित करें। इससे अंततः प्रकृति में संसाधनों का अभाव (resource depletion) और प्रदूषण होता है। इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि वर्तमान समय की जो मुख्य समस्यायें हैं, उनके बीज हमारे में, गलत मान्यताओं के रूप में है, चाहे वो स्वयं के बारे में हों अथवा शेष-प्रकृति के बारे में।

वर्तमान समस्याओं का समाधान
(Solution of Existing Problems)

यदि हम अपनी भागीदारी (मानवीय मूल्य) को समझकर, उसके अनुसार अपने जीने के सभी आयामों (स्वयं से लेकर, परिवार, समाज और संपूर्ण प्रकृति तक) में जीते हैं, तो यह हमारे लिये भी तृप्ति दायक होगा और आस-पास के लिये भी। समस्या और गलत मान्यता मुख्यतः इसलिये हैं क्योंकि, हमने इसे समझा नहीं है और समझने का पर्याप्त प्रयास भी नहीं कर रहे हैं।

एक बार अगर हमारे पास समग्र दृष्टि (holistic perspective) और वैसा जीने के कार्यक्रम की स्पष्टता हो जाये, तो हम ये समझ पायेंगे की अधिकांश समस्यायें हमारी गलत मान्यताओं के लक्षण और परिणाम हैं, तब कुछ समय में हम उनको जड़ से उखाड़ने के योग्य हो जायेंगे, न सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि परिवार के स्तर पर, अपने कार्यस्थल पर, समाज के स्तर पर और शेष-प्रकृति के साथ कार्य में भी। हम एक कार्यक्रम बना सकेंगे जो सभी की तृप्ति को सुनिश्चित कर सकेगा चाहे इसका स्तर छोटा हो या बड़ा। अंततः हम अपने समाज तथा आस-पास सभी की तृप्ति हेतु भागीदारी सुनिश्चित करने के योग्य हो पायेंगे।

नैतिक-योग्यता का विकास
(Development of Ethical Competence)

किसी व्यक्ति का व्यवहार, कार्य और बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी, जो निश्चित मानवीय आचरण के रूप में अभिव्यक्त होती है, वही नैतिकता (Ethics) है। विभिन्न व्यवसायों में अनैतिक आचरण लगभग सभी जगह एक बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है, मूल्य शिक्षा के माध्यम से नैतिक-योग्यता को विकसित करके इस समस्या को प्रभावशाली ढंग से हल किया जा सकता है।

मूल्य शिक्षा के लिये दिशा- निर्देश
(Guidelines for Value Education)

अब तक हमने मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और इसके आशय को चिन्हित कर लिया है, अब हम इसे निश्चित, प्रभावी और व्यापक स्तर पर स्वीकार्य दिशा निर्देशों को फिर से जान लेते हैं।

सार्वभौम
(Universal)

मूल्य शिक्षा के अंतर्गत हम जो कुछ भी पढ़ते हैं वह सार्वभौम रूप से स्वीकार हो अर्थात् हर व्यक्ति को, सभी स्थानों पर और हर समय एक जैसा स्वीकार हो।

तर्कसंगत
(Rational)

मूल्य शिक्षा तर्कसंगत हो न कि मान्यताओं या रूढ़ियों पर आधारित हो, एवं उससे जुड़े प्रश्नोत्तर के लिये अवसर हो।

स्वाभाविक और जाँचने योग्य
(Natural and Verifiable)

मूल्य शिक्षा में हम जिन बातों का अध्ययन करना चाहते हैं वह हमारे लिए स्वाभाविक हो और उसको जांचा जा सके। स्वाभाविक (natural) का अर्थ है कि यह हमें सहज स्वीकार्य हो और जब हम ऐसे मूल्यों के आधार पर जीये तो यह परस्पर-पूरक भी हो।

सर्व सम्मिलित
(All Encompassing)

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु में हमारे जीने के सभी आयाम (विचार, व्यवहार, कार्य, और समझ) और जीने के सभी स्तर (मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व) शामिल हों।

व्यवस्था को सुनिश्चित करने वाला
(Leading to Harmony)

मूल्य शिक्षा हमें स्वयं में व्यवस्था (harmony) तथा दूसरों के साथ भी व्यवस्था की स्थिति की ओर ले जाने में सहायक हो।

पिछली कक्षा में हमने विस्तार पूर्वक यह जाना था ।

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु
(Content of Value Education)

हमने यह देख लिया है कि मानव का मूल्य सम्पूर्ण अस्तित्व रुपी बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी है। अतः मानव मूल्यों को समझने के लिये अस्तित्व में जो भी है उन सभी का अध्ययन करने की आवश्यकता है। मानव की भागीदारी अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ उसका संबंध है। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्ययन की विषय-वस्तु में सब कुछ सम्मिलित हो अर्थात्- इसमें मानव के जीने के सभी आयाम सम्मिलित हों- विचार, व्यवहार, कार्य और अनुभव (realization)।

मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया : स्व-अन्वेषण
(Process of Value Education- Self -exploration)

मूल्य शिक्षा की विषयवस्तु में सब कुछ सम्मिलित हो, अर्थात् इसमें मानव के जीने के सभी आयाम विचार, व्यवहार, कार्य और अनुभव (realization) से लेकर मानव के जीने के सभी स्तर सम्मिलित हों- मानव से लेकर परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व।

मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया को समझने के लिये स्व-अन्वेषण एक उचित प्रक्रिया है, क्योंकि ये क्षमता के रूप में हर मानव में विद्यमान है। अतः मानवीय-मूल्य के अध्ययन के लिये एक ऐसी प्रक्रिया हो जिसके द्वारा आप में स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का विकास हो। सभी वक्तव्यों को एक प्रस्ताव के रूप में लेते हुए आप स्वयं में वास्तविकताओं की जांच करने के योग्य हो।

मूल्य शिक्षा, क्या करें या क्या ना करें जैसे कथन या उपदेशों के रूप में न हो, बल्कि यह स्व-अन्वेषण अर्थात् स्वयं में जांच (self-investigation) की एक प्रक्रिया हो।

उदाहरण के लिये अगर आप से पूछा जाए कि आपको क्या सहज स्वीकार्य है: अपने परिवार के सदस्यों के साथ संबंध का भाव या विरोध का भाव? उत्तर के लिये आप स्वयं में ही देखें। इसका स्वाभाविक उत्तर (natural response) आता है, संबंध का भाव। संबंध का भाव हमारे लिये मूल्य है।

इस तरह से हमने कक्षा 9 और 10 में मूल्य शिक्षा के परिचय भाग में मूल्य शिक्षा के बारे में विस्तारपूर्वक जाना था।

अध्याय-2

स्व-अन्वेषण : मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया
(Self-exploration as the Process for Value Education)

पिछली कक्षाओं में हमने देखा कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है। मानव के रूप में, जब हम अपनी भागीदारी या भूमिका का निर्वाह कर रहे होते हैं तो हम सुख के भाव में होते हैं। हम अपने मूल्य के अनुसार जीते हुये सुख के भाव में रहते हैं।अपने मूल्यों को समझना तथा उसके अनुसार जीना ही मूल्य शिक्षा है। हमने स्व-अन्वेषण को मूल्य शिक्षा के प्रक्रिया के रूप में पहचाना। स्व-अन्वेषण, स्वयं के अधिकार पर, स्वयं में निरीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण के द्वारा वास्तविकताओं को देखने की प्रक्रिया है।

कक्षा 9 -10 में हमने स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को विस्तार में समझा इसी प्रक्रिया को एक बार पुनः समझने का प्रयास निम्नलिखित प्रयोग से करेंगे ।

स्व-अन्वेषण : स्वयं में संवाद
(Self- exploration: The Dialogue Within)

स्व-अन्वेषण, स्वयं के अधिकार पर, स्वयं में निरीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण के द्वारा वास्तविकताओं को देखने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा अस्तित्व में जो वास्तविकताएं हैं, और उसके साथ हमारी जो भागीदारी है, उसको समझने की कोशिश करते हैं, जिसे हमने मूल्य (value) के रूप में पहचाना है। यह आपको ही तय करना है कि आपके लिये क्या मूल्यवान है और क्या मूल्यवान नहीं है। इस पुस्तक में जो भी दिया गया है वह केवल एक प्रस्ताव है, यह आपके स्वयं में जाँच (self-verification) के लिये है।
पिछली कक्षा 9 -10 में हमने स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को विस्तार में समझा इसी प्रक्रिया को एक बार फिर पुनः समझने का प्रयास करते हैं

स्वयं में संवाद
(The Dialogue Within)

आप स्वयं में चल रहे संवाद को देखें, यह संवाद **'जैसा मैं हूँ'** और **'जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है'** इसके बीच हो रहा है। (चित्र. 2-1 देखें)

चित्र. 2-1. स्वयं में संवाद

आपको अपनी सहज-स्वीकृति के प्रति स्पष्टता हैं, और यही आपका मार्गदर्शन कर रही है या, आपको अपनी सहज-स्वीकृति के प्रति पूरी तरह से स्पष्टता नहीं हैं, और आप किसी अन्य आधार पर निर्णय ले रहे हैं।

'जैसा मैं हूँ' (What I am?) इसका तात्पर्य है, मेरी इच्छा, विचार, आशा, मेरी कल्पनाशीलता और वह सभी कुछ जो मेरे अंदर ही चल रहा होता है कि मैं कैसा भाव रखता हूँ, कैसा महसूस करता हूँ; मैं क्या सोचता हूँ, मैं अपने निर्णय कैसे लेता हूँ और मैं दूसरों से क्या अपेक्षा रखता हूँ। यह मेरी वर्तमान योग्यता(competence) है, जिसके आधार पर मैं जीता हूँ।

सुविधा 'जैसा मुझे सहज स्वीकार्य है' ('What is naturally acceptable to me') यही मेरी सहज-स्वीकृति है, यही मेरी चाहना है। यह 'वास्तव में मैं जैसा होना चाहता हूँ' वही है ('What I really want to be') यह मूल वास्तविकता हर मानव में स्वाभाविक रूप से है। हम इसका संदर्भ लें या न लें लेकिन ये हम सभी में हमेशा रहता ही है। मैं अपनी सहज-स्वीकृति के अनुसार जी पाऊँ या न जी पाऊँ लेकिन मैं यह देख सकता हूँ कि "वास्तव में मैं क्या होना चाहता हूँ"।

एक बार जब यह संवाद आप में शुरू हो जाता है, तो आप स्वयं से यह प्रश्न पूछना शुरू करते हैं कि आपकी इच्छा, विचार, आशा आपकी सहज-स्वीकृति के अनुसार है या नहीं, इसमें संगीत है या अंतर्विरोध। हमने यह पहले ही देख लिया है कि जब हम अंतर्विरोध की स्थिति में होते हैं तो स्वयं में असहज महसूस करते हैं। इसके बाद हम यह भी देख चुकें हैं कि जब हम स्वयं में संगीत की स्थिति में होते हैं तो अपने आप में सहज महसूस करते हैं।

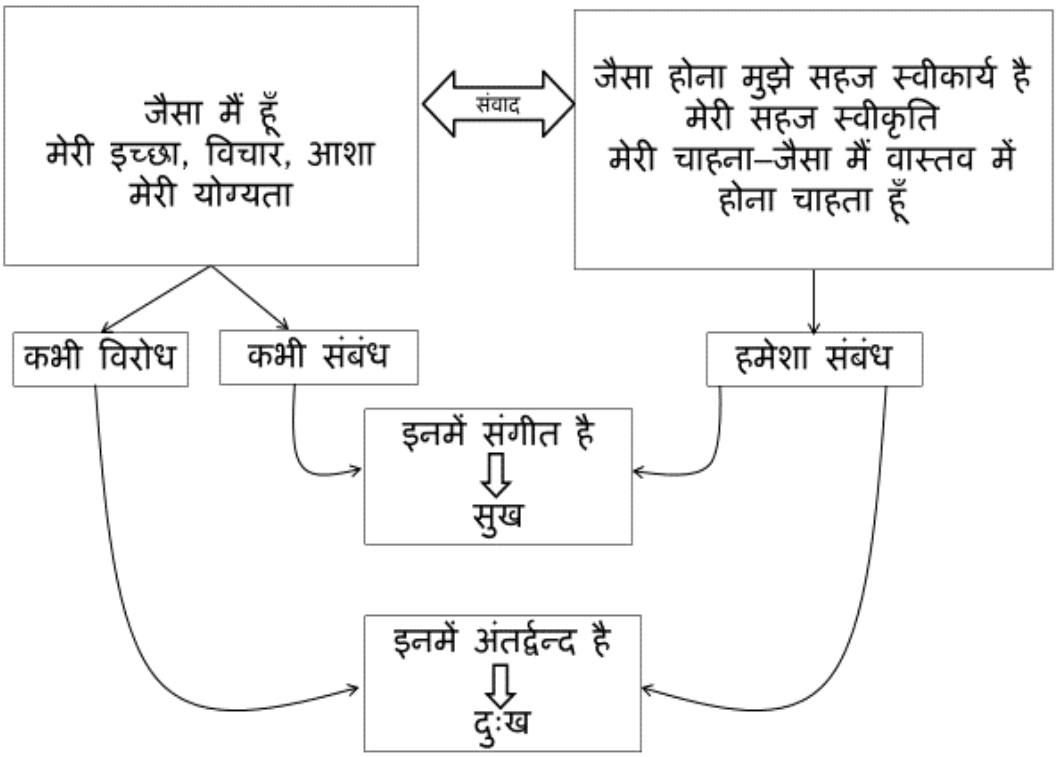

चित्र. 2-2. 'जैसा मैं हूँ' और 'जैसा मैं वास्तव में होना चाहता हूँ'

स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है।

(Happiness is to be in a state of harmony)

स्वयं में अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुःख है।

(Unhappiness is to be forced to be in a state of contradiction)

आइये अब स्व-अन्वेषण के विषय-वस्तु एवं इसकी प्रक्रिया को और अधिक विस्तार से समझते हैं।

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु

(Content for self-exploration)

स्वयं में तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये जो कुछ भी समझना आवश्यक है, वह स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु है।

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु मूलतः दो भाग में है:

चाहना - आपकी मूल चाहना क्या है?

कार्यक्रम - आपकी मूल चाहना को पूरा करने के लिये क्या करना है?

क्या ये दोनों प्रश्न आपके लिये महत्वपूर्ण हैं?

क्या आपके लिए आपकी मूल चाहना (basic aspiration) को जानना महत्वपूर्ण है?

आपके लिए आपकी मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम को जानना महत्वपूर्ण है?

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया

(Process of self-exploration)

हमने स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को पहले ही पहचानना शुरू कर दिया है। आइये अब हम इसे और विस्तार से देखते हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि जब हम यह कहते हैं कि यह एक प्रस्ताव है, तो इसे सच या झूठ, सही या गलत नहीं मानना है, इसे जाँचना है- अपने अधिकार पर, अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर।

यद्यपि, सहज-स्वीकृति के आधार पर जाँचना, इस प्रक्रिया का केवल एक भाग है। इससे अधिक और क्या है आगे देखेंगे। चित्र. 2-3. को देखिये, यह स्व-अन्वेषण की पूरी प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है।

जो भी कहा जा रहा है, वह एक प्रस्ताव है (इसे सही या गलत नहीं मानें)
जाँचे, स्वयं के अधिकार पर

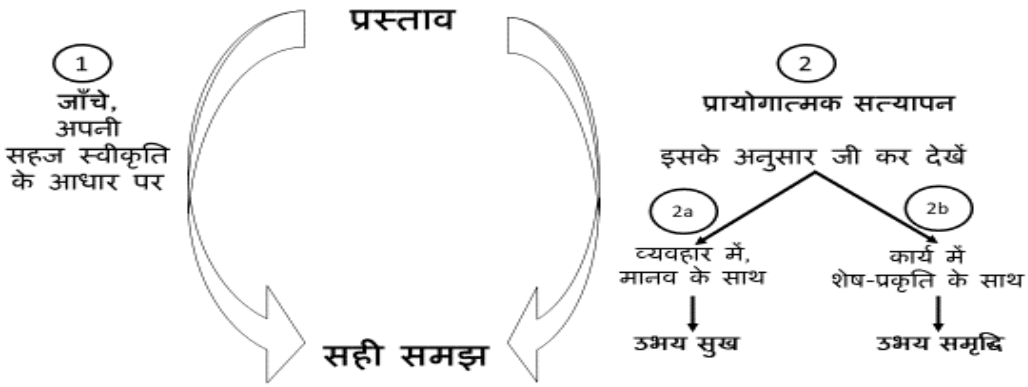

चित्र. 2-3. स्वान्वेषण की प्रक्रिया

स्व-अन्वेषण के पहले भाग में हम, प्रस्ताव को अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर जाँचते है। एक बार जब हम यह जाँच लेते है, कि प्रस्ताव हमको सहज स्वीकार्य हैं, तब हम आश्वस्त हो पाते हैं कि यह प्रस्ताव कुछ ऐसा ही है, जैसा हम जीना चाहते हैं।

स्व-अन्वेषण के दूसरे भाग में हम इसे जीने के स्तर पर सत्यापित (experiential validity) करके देखते हैं अर्थात् इस प्रस्ताव के आधार पर जी कर देखते हैं। जीने में भी दो भाग हैं- पहला मानव के साथ 'व्यवहार' और दूसरा शेष-प्रकृति के साथ 'कार्य'। जब हम दूसरे मानव के साथ इस प्रस्ताव के अनुसार व्यवहार करते हैं, तो हम यह जाँचते है कि उभय-सुख (mutual happiness) हो रहा है या नहीं। यदि उभय-सुख हो रहा है तो यह प्रस्ताव सही है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार जब हम इस प्रस्ताव के आधार पर, शेष-प्रकृति के साथ कार्य करते हैं, तो यह जाँचते हैं कि इससे उभय-समृद्धि हो रही है या नहीं। यदि हम उभय-समृद्धि की तरफ बढ़ रहे हैं तो यह प्रस्ताव सही है अन्यथा नहीं। सहज-स्वीकृति मौलिक होती है, यह हमारे लक्ष्य, हमारी मूल चाहना से संबंधित है और इसके आधार पर निश्चित उत्तर पाते हैं। उदाहरण के लिए _

सुखी होना सहज-स्वीकार्य है या दुखी होना सहज-स्वीकार्य है?

1. आपको संबंध के भाव में जीना सहज-स्वीकार्य है या विरोध के भाव में जीना सहज-स्वीकार्य है?
2. आपको क्या सहज-स्वीकार्य है- अपने शरीर के पोषण का भाव या शरीर के शोषण का भाव?

सहज-स्वीकृति को समझना - सही समझ का आधार

(Understanding Natural Acceptance- the Basis for Right Understanding)

जब आप इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने का प्रयत्न करते हैं कि 'आप को क्या सहज स्वीकार्य है – 'सुखी होना या दु:खी होना', इस प्रश्न का उत्तर आप क्षण भर में ही पा जाते हैं, ऐसा है, कि नहीं?

यह उत्तर कहाँ से आया है, इसका स्रोत क्या है? आइये इन संभावनाओं को तलाशने का प्रयत्न करते हैं:

1. क्या यह आपकी पसंद-नापसंद, मान्यताओं, पूर्वाग्रहों आदि के आधार पर आता है?
2. क्या यह आपकी सहज-स्वीकृति से आता है?

सहज-स्वीकृति मौलिक होती है, यह हमारे लक्ष्य, हमारी मूल चाहना से संबंधित है। जब हम इनसे जुड़े हुये प्रश्न पूछते हैं तो हम अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर निश्चित उत्तर पाते हैं। उदाहरण के लिये

1. सुखी होना सहज-स्वीकार्य है या दु:खी होना सहज-स्वीकार्य है?
2. आपको संबंध के भाव में जीना सहज-स्वीकार्य है या विरोध के भाव में जीना सहज-स्वीकार्य है?
3. आपको क्या सहज-स्वीकार्य है- अपने शरीर के पोषण का भाव या शरीर के शोषण का भाव?

सहज-स्वीकृति को हमने इस तरह से जाना कि यह समय, स्थान के साथ नहीं बदलता। व्यक्ति के आधार पर हमारी पसंद-नापसंद, मान्यताओं या पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं होता।सहज-स्वीकृति स्वभावतः एक आंतरिक शक्ति के रूप में हमारे भीतर रहती ही है, यह हमेशा हममें उपलब्ध रहती ही है। सहज-स्वीकृति संबंध, व्यवस्था, और सह-अस्तित्व के लिये है, जो कि सार्वभौमिक है।

स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय

(Important Implications of Self-exploration)

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया सीखना काफी शिक्षाप्रद होगा, इसके निम्नलिखित प्रमुख निहितार्थ सामने आते है जिसकी तृप्ति-पूर्वक जीने में अनुकूलता होती है।

1. यह प्रक्रिया स्वयं को जानने और उसके द्वारा, समग्र अस्तित्व को जानने की है (It is a process of knowing oneself and through that, knowing the entire existence.)

2. यह प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने और निर्वाह करने की है (It is a process of recognising one's relationship with every unit in existence and fulfilling this relationship)

3. यह प्रक्रिया मानवीय आचरण को जानने और उसके अनुसार जीने की है (It is a process of knowing human conduct and living accordingly)

4. यह प्रक्रिया 'स्वयं' में व्यवस्था और समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने की है (It is a Process of being in the harmony- within and with the entire existence)

5. यह प्रक्रिया अपने स्वत्व (सहज स्वीकृति) को पहचान कर स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक जीने की है (It is a process of identifying your innateness and moving towards self-organisation and self-expression)
6. यह प्रक्रिया 'स्व-अन्वेषण' के द्वारा 'स्वयं' में विकास (एक मानव के रूप में विकसित होना) की है (It is a process of self-evolution, evolving as a human being, through self-exploration)

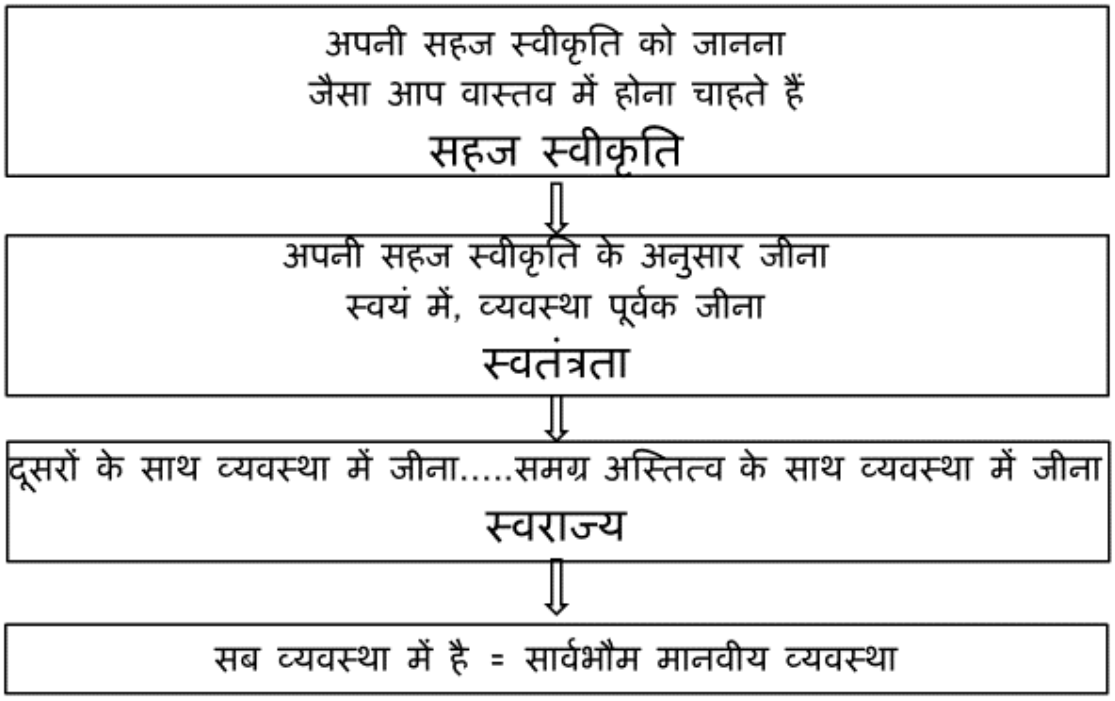

चित्र. 2-4. स्व–विकास और स्वराज्य

सही समझ की पहचान के लिये निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देते हैं:

1. इससे आश्वस्ति होती है (It is assuring)
2. इससे तृप्ति होती है (It is satisfying)
3. इसमें सार्वभौमिकता है (It is Universal): निम्नलिखित संदर्भों से, हम यह देख सकते हैं कि सही समझ निश्चित और अपरिवर्तनीय है:

I. **समय**: यह हर समय एक जैसी रहती है- भूत, भविष्य एवं वर्तमान।
II. **स्थान**: यह सभी स्थानों अथवा जगहों पर एक जैसी रहती है।
III. **व्यक्ति** : यह सभी व्यक्तियों के लिये एक समान रहती है।

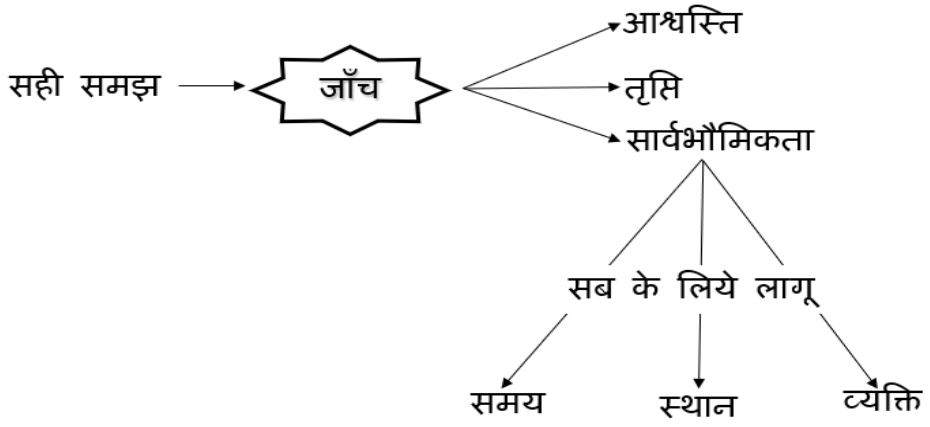

चित्र. 2-5. सही समझ की विशेषतायें

यह प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने और निर्वाह करने,मानवीय आचरण को जानने और उसके अनुरूप जीने की है। यह प्रक्रिया 'स्वयं' में व्यवस्था और समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने के साथ अपने स्वत्व को पहचान कर स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक जीने की है।

अंततोगत्वा, स्व-अन्वेषण के द्वारा समग्र अस्तित्व के बारे में सही समझ हो पाती है, अर्थात् "सह-अस्तित्व में अनुभव (realisation)", "व्यवस्था की समझ" और "संबंध" में भागीदारी का चिंतन (contemplation)"।

सही समझ के आधार पर हमारी कल्पनाशीलता पूर्णतः व्यवस्थित हो जाती है, और हम निरंतर सुख की स्थिति में पहुँच जाते हैं। यही सही समझ प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ हमारे व्यवहार, कार्य और भागीदारी में व्यवस्था पूर्ण ढंग से अभिव्यक्त होती है। अंततः यह, अखंड समाज (undivided society) और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) के लिये आधार बनता है। इससे भी आगे जब यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचता है और फिर पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर आगे बढ़ता रहता है, तो इसके द्वारा प्रत्येक मानव के लिये निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की मानवीय परम्परा (human tradition) बन जाती है, मूल्य-शिक्षा का यह प्रतिष्ठित परिणाम है।

इस अध्याय में हमने मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया पर पुनः ध्यान दिया।

अध्याय-3

मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति
(Basic Human Aspirations and their Fulfilment)

कक्षा 9-10 के अध्याय 3 में मानव के मूल चाहना और उसके पूर्ति के बारे में अध्ययन किया। उस अध्ययन में हमने यह देखा कि मानव का मूल चाहना सुख - समृद्धि एवं इसकी निरंतरता है, और इसकी पूर्ति सही समझ से होती है।मानव में जैसे -जैसे स्वयं से लेकर अस्तित्व तक व्यवस्था में जीने की समझ आती है, वैसे-वैसे वह सुख और समृद्धि पूर्वक जीने को जान पाता है। इस बात को हमने पिछली कक्षाओं में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया, अब इस कक्षा में इसकी संक्षिप्त पुनरावृति करेंगे।

मूल चाहना का क्या अर्थ है?
(What is meant by Basic Aspiration?)

हमारी मूल चाहना है, क्या स्कूल में की गई पढ़ाई, इंजीनियरिंग की पढ़ाई, नौकरी, वेतन या फिर सुविधाओं की खरीदारी? आइये अपने आप से पूछें कि हमें क्या तृप्त करेगा? आइये जाँच कर देखें कि क्या कोई ऐसा मूल उद्देश्य (end goal) है, जिसे हम इन सब के द्वारा पूरा करना चाहते हैं। क्या कोई ऐसा अंतिम लक्ष्य (बिंदु) है जहाँ पर हम पहुंचना चाहते हैं और उसी स्थिति में निरंतर बने रहना चाहते हैं? यह अंतिम लक्ष्य या स्थिति (end state) ही हमारी मूल चाहना (Basic Aspiration) है।

मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता
(Continuous Happiness and Prosperity as Basic Human Aspirations)

सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता मानव की मूल चाहना है। निःसंदेह सुख और समृद्धि के हमारे लिये अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं, लेकिन हम सुखी और समृद्ध होना चाहते ही हैं। कभी-कभी हम ऐसा सोचते हैं कि इसकी निरंतरता संभव नहीं हो सकती है उसके उपरांत भी हम निरंतर सुखी और समृद्ध होना चाहते हैं। ऐसा कोई भी क्षण नहीं होता, जब हम स्वयं को दुखी या दरिद्र करना चाहते हैं। अतः अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर यह देख सकते हैं कि हमारी मूल चाहना सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता है, यहाँ पहुँचने के लिये ही हम सब कुछ कर रहे हैं। यहाँ पहुँचने के बाद इसे बदलना नहीं चाहते हैं, बल्कि इसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।

मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकताएँ
(Basic Requirements for Fulfilment of Human Aspirations)

सुविधा पशुओं के लिये आवश्यक है और यह मानव के लिये भी आवश्यक है, जबकि;

- पशुओं के लिये सुविधा आवश्यक है और अधिकांश समय पूर्ण भी
- मानव के लिये सुविधा आवश्यक तो है परंतु पूर्ण नहीं

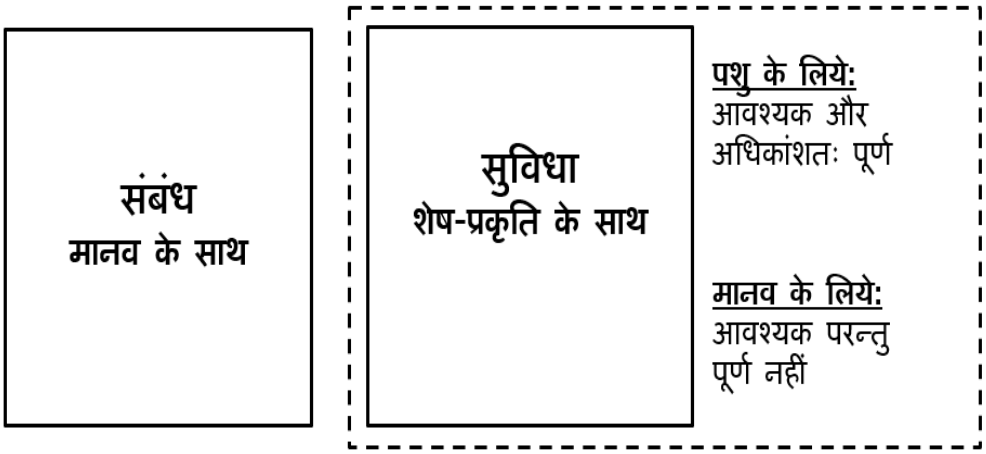

चित्र. 3-2. मानव के लिये सुविधा आवश्यक है, लेकिन संबंध भी आवश्यक है

संबंध के सही निर्वाह को सुनिश्चित करने के लिये, संबंध के बारे में सही समझ का होना आवश्यक है? इसके साथ ही अपने बारे में और शेष-प्रकृति के बारे में सही समझ का होना भी आवश्यक है, ताकि सुविधा की आवश्यकता का सही-सही आंकलन किया जा सके एवं इसकी उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिये सही तरीकों को भी अपनाया जा सके।

सही समझ, संबंध और सुविधा- यह तीनों ही मानव की तृप्ति के लिये आवश्यक हैं

(Right Understanding, Relationship and Physical Facility - All Three are required for Fulfilment of Human Beings)

सुविधा , संबंध और सही समझ तीनों अलग-अलग तरह की वास्तविकतायें हैं, जब इन्हें और विस्तार से समझते हैं तो हम देख सकते हैं कि:

- सही समझ (स्वयं में) से तात्पर्य, अपने आप को समझना है, उन सभी (समग्र अस्तित्व) को समझना है, जिनके साथ मैं जीता हूँ, और उनके साथ अपनी भागीदारी को समझना है अर्थात् स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व को समझना है।
- संबंध अर्थात् आवश्यक भाव जो अन्य व्यक्तियों के लिये मुझ में हैं (परिवार में, समाज में)।
- ओं में सभी भौतिक वस्तुएं सम्मिलित हैं।

मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये इन तीनों की ही आवश्यकता होती है। किसी एक को दूसरे की जगह नहीं रख सकते हैं।

वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा

(Priority - Right Understanding, Relationship and Physical Facility)

तीनों ही आवश्यक हैं। स्वयं में सही समझ प्रथम वरीयता पर है, क्योंकि हम सही समझ के साथ ही संबंध में ठीक निर्वाह को सुनिश्चित कर सकते हैं; और हम यह भी पता कर सकते हैं कि कितनी सुविधा की मूलतः आवश्यकता है। इसलिये सही समझ को प्रथम वरीयता पर रखा गया है। परिवार में ज्यादातर समस्यायें संबंध के ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण हैं, न कि

सुविधाओं की कमी के कारण। यह दर्शाता है कि सुविधा से संबंध अधिक महत्वपूर्ण है। यदि आप इस पूरे वरीयता क्रम को देखें, तो सही समझ पहली वरीयता पर है, मानव के साथ संबंध का निर्वाह दूसरी वरीयता पर और शेष-प्रकृति के साथ सुविधा सुनिश्चित करना तीसरी वरीयता पर है।

अब, यदि हम बताये गये वरीयता क्रम के अनुसार सही समझ, संबंध और सुविधा तीनों को सुनिश्चित कर लें तो देखते हैं कि क्या परिणाम आयेगा (चित्र. 3-5. देखे)

- संबंध में सही समझ पर आधारित सही भाव के द्वारा, हम उभय सुख सुनिश्चित कर सकते हैं- स्वयं के लिये सुख, साथ ही साथ दूसरों के लिये भी सुख।
- सही समझ के साथ, हम सुविधाओं की आवश्यकता को पहचान सकते हैं। हम यह भी सीख सकते हैं कि कैसे आवर्तनशील (mutually enriching) विधि से उत्पादन करें। एक बार जब हम आवश्यकता से अधिक सुविधाओं की उपलब्धता को सुनिश्चित कर लेते हैं तो हम समृद्धि का भाव महसूस करते हैं, क्या ऐसा नहीं है?

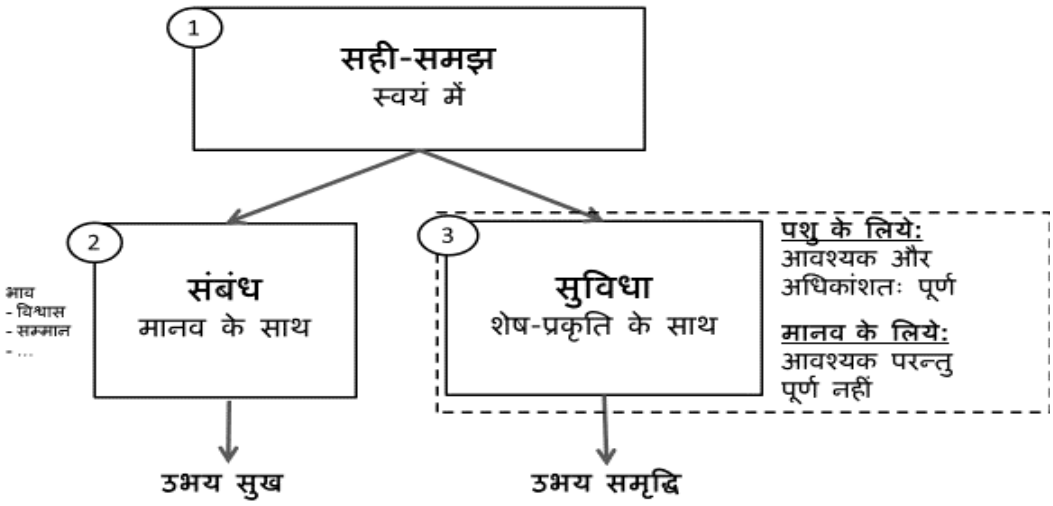

चित्र. 3-5. सही-समझ, संबंध और सुविधा के वरीयता क्रम में जीता हुआ मानव

सही समझ + संबंध → उभय सुख

सही समझ + सुविधा → उभय समृद्धि

इस तरह से, सही समझ और संबंध के ठीक-ठीक निर्वाह से हम उभय सुख सुनिश्चित कर सकते हैं। सही समझ और शेष-प्रकृति के साथ कार्य से प्राप्त पर्याप्त सुविधाओंके द्वारा हम उभय समृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं एवं प्रकृति के साथ परस्पर-संवर्धन (mutual enrichment) भी सुनिश्चित कर सकते हैं। इसलिये सही समझ, संबंध और सुविधा के द्वारा, हम स्वयं में सुख और समृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं तथा दूसरों के सुख और समृद्धि के लिये भी कार्य कर सकते हैं। क्या आप यह देख पाते हैं?

मानव चेतना का विकास

(Development of Human Consciousness)

मानव की मूल चाहना अर्थात् सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता की पूर्ति सही समझ, संबंध और सुविधा को सही वरीयता क्रम में रखते हुये की जा सकती है।

कोई भी मानव जो इन तीनों के लिये कार्य कर रहा है, वह तृप्त हो सकता है। अत: जो व्यक्ति इन तीनों के साथ जी रहा है वह **मानव चेतना (Human Consciousnesses)** में जी रहा है।

दूसरी तरफ, यदि कोई व्यक्ति केवल सुविधा संग्रह के लिये जी रहा है तो वह **जीव चेतना (Animal Consciousness)** में जी रहा है। क्योंकि केवल पशुओं के लिये तो पर्याप्त हो सकती है, लेकिन मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये पर्याप्त नहीं है।

समग्र विकास

(Holistic Development)

पशु चेतना से मानव चेतना में संक्रमण(परिमार्जन) (Transformation from Animal Consciousness to Human Consciousness)

इस पृष्ठभूमि के साथ चित्र. 3-6. का संदर्भ लेते हुये स्वयं से प्रश्न पूछिये:

1. आपको को क्या सहज स्वीकार्य है- जीव चेतना (अमानवीय-चेतना) में जीना या मानव-चेतना में जीना?
2. इस समय हम कहाँ जी रहे हैं? जीव चेतना में या मानव-चेतना में?
3. जीव चेतना से मानव-चेतना में यह संक्रमण(परिमार्जन) आवश्यक है या अनावश्यक?

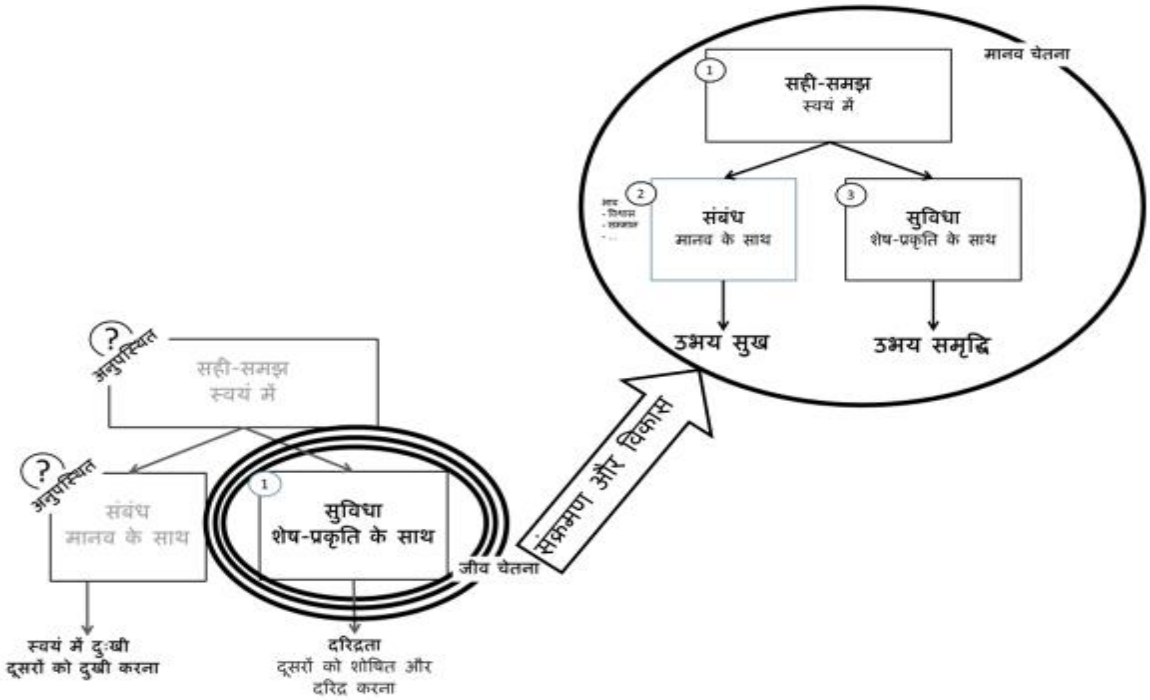

चित्र. 3-6. संक्रमण, विकास-क्रम, विकास

यदि हम वर्तमान में देखें तो पूरा विश्व प्रमुख तौर पर सुविधाओंपर ही केंद्रित है, और यही एक मुख्य पैमाना है, जिससे प्रगति और विकास (progress and development) को नापा जा रहा है। देश, सकल घरेलू उत्पाद (gross domestic product) (जीडीपी) को नापते हैं और इसमें हो रही वृद्धि दर को ही विकास का प्रमुख सूचक(Indicators) मानते हैं। परिवार और व्यक्ति भी इन्हीं आधारों को अपने शुभ का प्रतीक मानते हैं- वे नौकरियों में पद, संपदा, बैंक बैलेंस, घर, कार एवं अन्य सुविधाओंको प्रगति, विकास एवं सफलता के प्रतीक की तरह देखते हैं।

विकास के संबंध में गहरी मान्यता यह है कि सफलता और समृद्धि को ज्यादातर सुविधाओं के संग्रह के साथ ही जोड़कर देखा जाता है अर्थात् अधिक से अधिक सुविधा संग्रह कर पाने को ही सफलता माना जाता है। यही मान्यता समाज में है, शिक्षा व्यवस्था में है, यहाँ तक कि परिवारों में भी है। यह भी अवश्य देखें कि कहीं आप भी सफलता और समृद्धि के नाम पर इस सुविधा के दायरे को ही बड़ा, और बड़ा करने की कोशिश में तो नहीं लगे हैं? जैसे कि आप पहले दस हजार रुपये के वेतन के लिये, फिर पचास हजार, उसके बाद एक लाख रुपये वेतन के लिये ही प्रयास तो नहीं कर रहे हैं? यह भी जाँच कर देखें कि क्या ये सभी आपको मानव-चेतना में ले जा रहे हैं? क्या केवल सुविधा के दायरे को बड़ा करना ही सुख और समृद्धि की निरंतरता के लिये पर्याप्त है? यह भी जाँच कर देखना आवश्यक है कि केवल सुविधा की मात्रा और विविधता (quantity and variety) बढ़ाना ही विकास के लिये पर्याप्त है क्या?

सही-समझ के साथ, हम स्पष्ट रूप से समग्र विकास की परिकल्पना चेतना के संक्रमण(परिमार्जन) के रूप में कर सकते हैं- जीव चेतना से मानव-चेतना के संक्रमण(परिमार्जन) के रूप में। निःसंदेह तीनों पर कार्य करना होगा- सही-समझ, संबंध का निर्वाह और सुविधा ; वह भी इसी वरीयता क्रम में।

शिक्षा-संस्कार की भूमिका

(Role of Education-Sanskar)

शिक्षा की भूमिका, निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता का विकास अर्थात् मानव चेतना का विकास करना है। इसके लिये, शिक्षा-संस्कार से निम्न को सुनिश्चित करना होगा:

1. प्रत्येक बच्चे में सही समझ
2. दूसरे मानव के साथ संबंध पूर्वक जीने की योग्यता तथा
3. सुविधाओं की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता, जितनी आवश्यकता है उससे अधिक उत्पादन करने के लिये आवर्तन शील विधि का अभ्यास एवं कौशल, जिससे समृद्धि का भाव सुनिश्चित हो सके।

शिक्षा, व्यक्ति निर्माण के माध्यम से समाज को वैचारिक नेतृत्व व दिशा देती है। मानवीय शिक्षा-संस्कार की दीर्घकालिक क्षमतायें (long-term potential) निम्न हैं:

1. सही समझ हर बच्चे में- सही समझ में विकास की सहायता से मानव चेतना से जीने की योग्यता में विकास होगा।

2. संबंध पूर्वक जीने की योग्यता- दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध में उभय-सुख या न्याय से जीने की योग्यता विकसित करना, इससे परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और यह व्यवस्था, बड़े परिवार तक भी फैलेगी; अंततः विश्व परिवार तक फैलेगी, जो अखण्ड समाज (undivided society) की ओर बढ़ता है।

3. सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता विकसित करना, आवर्तन शील विधि के द्वारा आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन के लिये कौशल एवं अभ्यास को

विकसित करना, सुविधाओं के सदुपयोग एवं श्रम के माध्यम से उत्पादन करने की मानसिकता का विकास करना, जिससे समृद्धि का भाव सुनिश्चित होगा। इससे परिवार व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और इसका फैलाव परिवार के सदस्यों की भागीदारी के द्वारा बड़े समाज व्यवस्था तक होगा; अंततः यह सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) तक होगा।

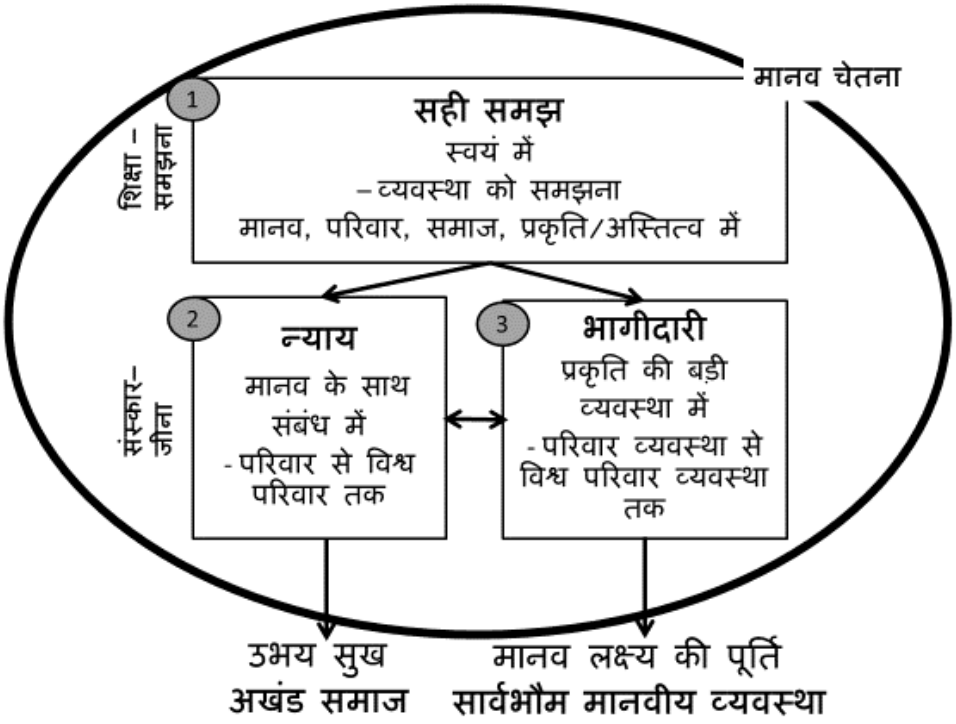

चित्र. 3-7. मानव चेतना में जीना

मानव का मानव चेतना में जीने के परिणामों को चित्र. 3-7. में दर्शाया गया है।

शिक्षा की भूमिका के बारे में यह एक प्रस्ताव है। यदि आप इसका अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि मूल्य शिक्षा का मूल उद्देश्य समग्रात्मक विकास को सुनिश्चित करना है,अर्थात् मानव चेतना की तरफ व्यक्ति का संक्रमण(परिमार्जन) (individual transformation) और साथ ही साथ सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की तरफ सामाजिक संक्रमण(परिमार्जन) (societal transformation)।

आशा है कि इस अध्याय में मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति पर ध्यान गया होगा।

अध्याय-4

सुख और समृद्धि को समझना- इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिये कार्यक्रम

(Understanding Happiness and Prosperity - Their Continuity and Program for Fulfilment)

कक्षा 9-10 के अध्याय 4 में हमने सुख और समृद्धि को समझा एवं इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिए कार्यक्रम का अध्ययन किया था। सुख के अर्थ को समझने का प्रयास विस्तार पूर्वक किया और इसके साथ सुख की प्रचलित मान्यता के बारे में जाना । अब हम सुख और समृद्धि को पुनः संक्षिप्त रूप में चर्चा करेंगे।

सुख के अर्थ को समझना

(Exploring the Meaning of Happiness)

"जिस स्थिति/परिस्थिति में, मैं हूँ, यदि उसमें संगीत/व्यवस्था है, तो उस स्थिति/परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य होता है"। ऐसी स्थिति/परिस्थिति में जीना, जो मुझे सहज स्वीकार्य है, यही सुख है। "ऐसी स्थिति/परिस्थिति में रहने के लिये बाध्य होना, जो मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है, यही दुख है"। अर्थात् अंतर्विरोध/अव्यवस्था की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुख है।

निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम

(Program for Continuity of Happiness)

सुख की निरंतरता के लिये हमें अपने जीने के पूरे फैलाव को देखना होगा। स्वयं में जीने के साथ-साथ हम कई स्तरों पर जीते हैं, जैसे दूसरे व्यक्तियों के साथ परिवार में, समाज में, और प्रकृति के साथ भी हमारा जुड़ाव है ही। हमारा जीना निम्नलिखित चार स्तरों पर होता ही है:

1. व्यक्ति के रूप में- मानव/व्यक्तिगत रूप में
2. परिवार के एक सदस्य के रूप में
3. समाज के एक सदस्य के रूप में
4. प्रकृति/अस्तित्व की एक इकाई के रूप में

सुख की निरंतरता के लिये सभी स्तरों पर व्यवस्था को सुनिश्चित करना आवश्यक है। यदि हमारे जीने में कहीं भी, किसी भी समय अंतर्विरोध या अव्यवस्था हो तो, यह हमें दुख की तरफ ही ले जायेगा, यह हमारी सुख की निरंतरता को बाधित कर देगा।

समृद्धि के अर्थ को समझना

(Exploring the Meaning of Prosperity)

आवश्यकता से अधिक सुविधाओं के उत्पादन या उपलब्धता का भाव समृद्धि है।

समृद्धि के लिये दो मूलभूत आवश्यकताएं हैं-

1. सुविधा की आवश्यकता की सही-सही पहचान।
2. आवश्यकता से अधिक सुविधा की उपलब्धता या उत्पादन को सुनिश्चित करना।

आवश्यकता से अधिक सुविधा उपलब्ध होने का भाव ही समृद्धि का भाव है ।जब आप में समृद्धि का भाव होता है तो आप स्वाभाविक रूप से दूसरों के पोषण और संवर्धन के बारे में ही सोचते हैं, दूसरी तरफ यदि आप में दरिद्रता का भाव हो तो आप दूसरों के शोषण और उन्हें दरिद्र बनाने के बारे में ही सोचते हैं।

सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि

(A Look at the Prevailing Notions of Happiness)

सुख की कुछ प्रचलित मान्यताओं में से एक मान्यता यह है कि सुख की निरंतरता सुविधा के उपभोग एवं इंद्रिय भोग से ही संभव है। लोग अपनी मनपसंद संवेदनाओं का स्वाद चखने के लिये किसी भी स्तर तक चले जाते हैं। संवेदनायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या गंध किसी भी प्रकार की हो सकती हैं।

सुख की निरंतरता सुविधाओं से ?

(Continuity of Happiness from Physical Facility?)

सुख की निरंतरता को सुविधा से मिलने वाली अनुकूल संवेदना के भोग से सुनिश्चित किया जाना संभव नहीं है।आप संवेदना से जो थोड़ा बहुत सुख पाते भी हैं, वह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये होता है, और यह निम्नलिखित स्थितियों से होकर गुजरता है-

रुचिकर-आवश्यक → रुचिकर-अनावश्यक → अरुचिकर-अनावश्यक →असहनीय

(Tasty-Necessary→Tasty-Unnecessary→Tasteless-Unnecessary→Intolerable)

अतः हम कह सकते हैं कि सुविधा, 'शरीर' के लिये आवश्यक है, परंतु यह सुख की निरंतरता को सुनिश्चित नहीं कर सकती है।

सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से?

(Continuity of Happiness from Favorable Feeling from Others?)

यदि आप किसी प्रकार का सुख, दूसरे व्यक्तियों के ध्यान या भाव के द्वारा प्राप्त करते हैं, तो यह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये रहता है।अतः हम कह सकते हैं कि दूसरे से मिलने वाले भाव से निरंतर सुख संभव नहीं है।

सुख, आवेश नहीं है

(Happiness is not Excitement)

आवेश एवं सुख (स्वयं के भीतर संगीत की स्थिति) के बीच एक भ्रम की स्थिति है। वास्तविकता यह है कि आवेश बहुत अल्पकालिक होती है, यह सतत् नहीं रहती, जबकि सुख अर्थात् स्वयं के अंदर संगीत की स्थिति निरंतर एवं सतत् हो सकती है।

सुख के लिये कार्यक्रम

(The Program for Happiness)

हमने देखा है कि स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है। और हमारे जीने का फैलाव चारों स्तरों पर है- मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/ अस्तित्व। सुख के लिये अब कार्यक्रम यह हैं कि हम इन चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझें और उसके अनुसार सभी चारों स्तरों पर व्यवस्था में जीने को सुनिश्चित करने का प्रयास करें। इसे चित्र. 4-4 और 4-5 में दिखाया गया है।

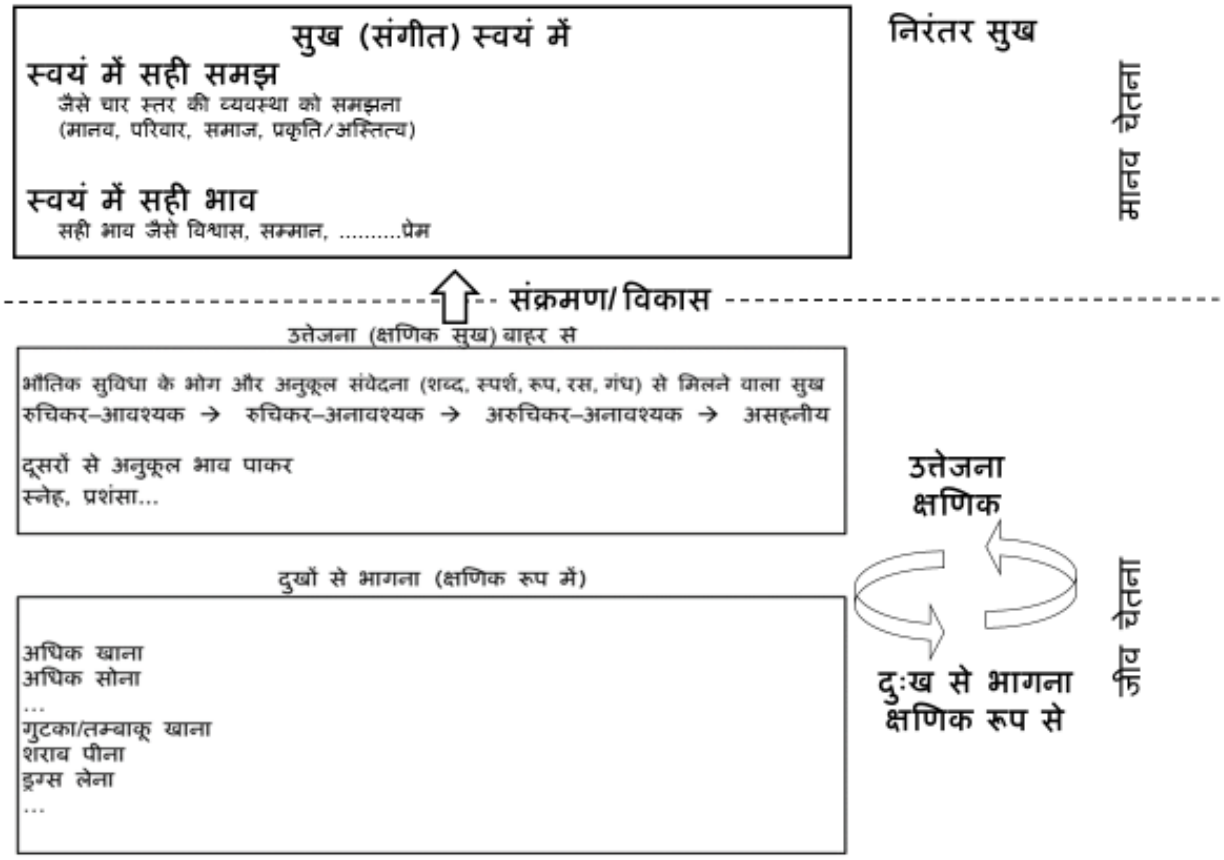

चित्र. 4-4. 'सुख', 'उत्तेजना' और 'दुखों से भागना'

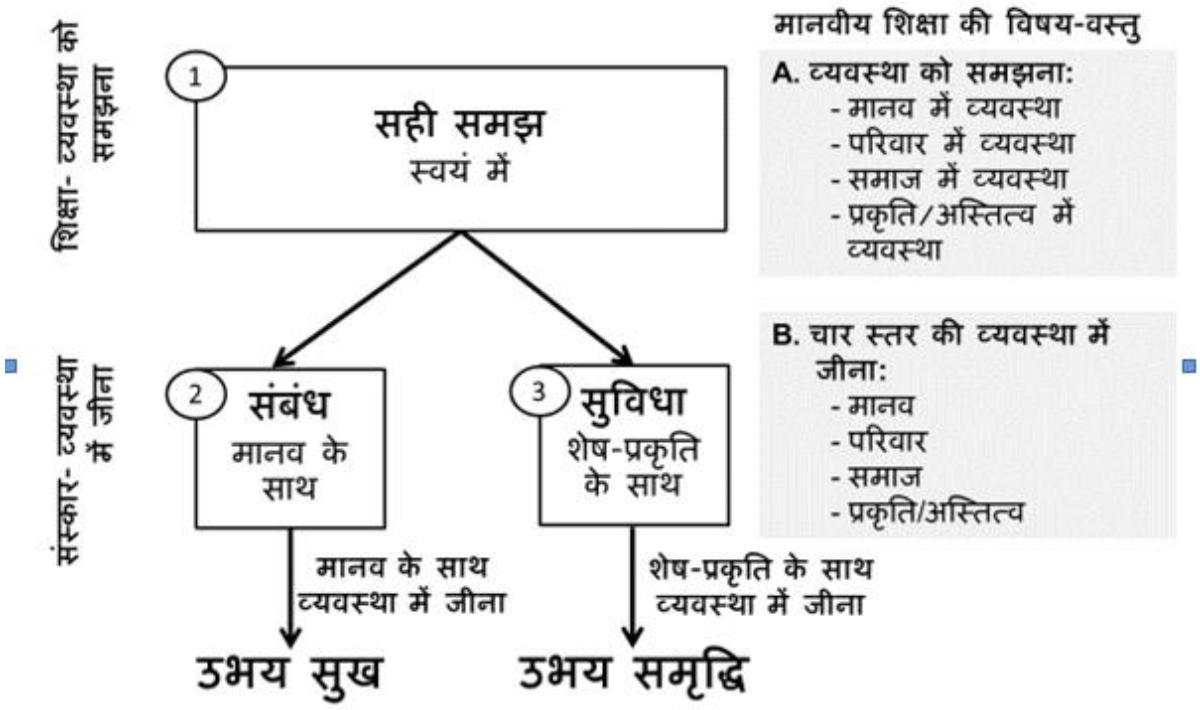

चित्र. 4-5. मानवीय शिक्षा की विषय-वस्तु

व्यवस्था को समझना ही स्वयं में सही समझ का होना है। व्यवस्था में जीने के दो भाग हैं, पहला मानव के साथ व्यवस्था में जीना, जिससे उभय-सुख होता है और दूसरा शेष-प्रकृति के साथ व्यवस्था में जीना, जिससे उभय-समृद्धि होती है। सुविधा शेष-प्रकृति से ही आती है और जब हम परस्पर-संवर्धन की प्रक्रिया के द्वारा पर्याप्त सुविधा को सुनिश्चित कर पाते हैं, तो उभय-समृद्धि होती है।

अब हम इसे सूक्ष्मता से इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम इस प्रकार है:

कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष

(Natural Outcome of the Program)

जैसा कि हमने सुख और समृद्धि को अपनी मूल चाहना के रूप में पहचाना है, अब हम इसको पूरा करने के लिये सहज रूप से निम्नलिखित प्रयास करेंगे:-

1. व्यवस्था को समझना
2. व्यवस्था में जीना

हम यह देख पाते हैं कि व्यवस्था में भागीदारी ही सुख है:

- स्वयं में हमारी भागीदारी होगी- मानव के रूप में व्यवस्था में होना।
- परिवार में हमारी भागीदारी होगी- परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करना।

- समाज में हमारी भागीदारी होगी- समाज में व्यवस्था के लिये प्रयास करना।
- प्रकृति/ अस्तित्व में हमारी भागीदारी होगी- प्रकृति/ अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ
व्यवस्था को बनाये रखना।

इस अध्याय में हमने सुख, समृद्धि और उसकी निरंतरता को समझने का पुनः प्रयास किया।

अध्याय-5

मानव को स्वयं(मैं) और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना

(Understanding the human being as Co-existence of the Self and Body)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞ मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

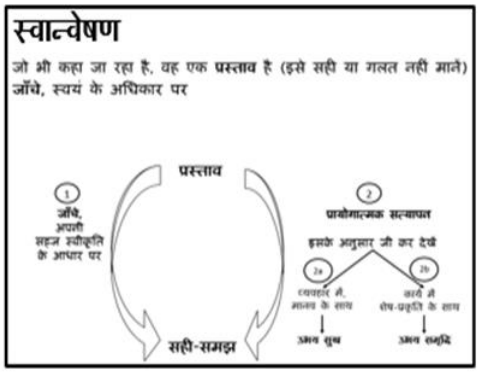

कक्षा 9-10 के अध्याय 5 में हमने देखा कि मानव स्वयं (मैं)और शरीर का सह-अस्तित्व है। हमने और शरीर की आवश्यकताओं एवं उसकी पूर्ति को समझने का प्रयास किया था। इसी अध्याय में हमने स्वयं (मैं) और शरीर की क्रियाओं एवं अनुक्रियाओं का भी अध्ययन किया साथ ही यह भी देखा कि स्वयं (मैं) चैतन्य इकाई और शरीर जड़ इकाई के रूप में है । हमने यह भी देखा कि मानव को केवल शरीर मानना मुख्य भ्रम है तथा यह भी जाना कि मानव के केंद्र में स्वयं (मैं) है। अब हम मानव के बारे में पुनः संक्षिप्त रूप से चर्चा करेंगे ।

स्वयं (मैं)और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मानव

(Human Being as Co-existence of the Self and the Body)

प्रस्ताव यह है कि मानव,स्वयं (मैं)और शरीर का सह-अस्तित्व है।

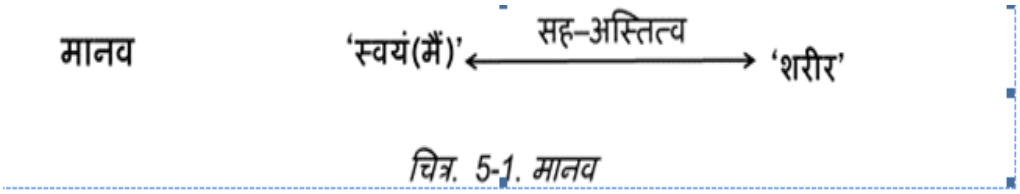

चित्र. 5-1. मानव

यहाँ 'मैं' का संदर्भ 'स्वयं' के लिये है न कि शरीर के लिये। मैं ही है जो संबंध को पहचानता है, जो निर्णय लेता है कि क्या करना है और यही सुख या दुख को भी महसूस करता है। जब हम कहते हैं कि 'मैंने स्वादिष्ट भोजन खाया', तो यह देख सकते हैं कि भोजन का उपयोग शरीर के लिये हुआ और स्वाद 'मैं' ने लिया।

मैं और शरीर की आवश्यकतायें

(Needs of the Self and the Body)

मैं और शरीर अलग-अलग इकाई हैं,इसे इनकी आवश्यकताओं के आधार पर समझा जा सकता है (चित्र. 5.2. देखिये)।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)

चित्र. 5-2. मानव की आवश्यकतायें

मैं की आवश्यकता सुख है। शरीर की आवश्यकता को देखें तो यह सुविधा है। ये दोनों अलग-अलग प्रकार की आवश्यकतायें हैं और ये दोनों ही आवश्यक हैं; इसलिये मानव के लिये इन दोनों की अलग-अलग पूर्ति आवश्यक है।

आवश्यकता- क्या ये सामयिक हैं या निरंतर?

(Needs – Are they Temporary or Continuous?)

'स्वयं (मैं)' से जुड़ी हुई आवश्यकतायें जैसे कि सम्मान, विश्वास, संबंध, सुख आदि, इन सभी की आवश्यकता समय के संदर्भ में निरंतर है। हम इनकी पूर्ति में क्षण भर की भी कोई बाधा नहीं चाहते।

दूसरी तरफ शरीर से जुड़ी आवश्यकतायें जैसे कि भोजन, आवास, गाड़ी इत्यादि, इन सब की आवश्यकता सीमित समय के लिये होती है। यदि इनकी निरंतरता हो तो, ये हमारे लिये समस्या हो सकती है।

आवश्यकतायें - मात्रात्मक और गुणात्मक

(Needs – Quantitative and Qualitative)

इन दोनों के बीच के अंतर को समझने का दूसरा तरीका मात्रात्मक एवं गुणात्मक आधार पर हो सकता है। भोजन की आवश्यकता मात्रात्मक है। दूसरी तरफ सम्मान और विश्वास का भाव मात्रात्मक नहीं है। इस तरह की आवश्यकतायें गुणात्मक हैं। सुविधा की आवश्यकता शरीर से और सुख की आवश्यकता मैं से संबंधित है।

मैं और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति

(Fulfilment of the Needs of the Self and the Body)

शरीर से जुड़ी हुई सभी आवश्यकताएं,सुविधा के रूप में हैं, जिनकी पूर्ति किन्हीं भौतिक-रासायनिक वस्तुओं के द्वारा ही हो सकती है। मैं से जुड़ी हुई सभी आवश्यकताएं भाव के रूप में हैं, जिनकी पूर्ति सही समझ और सही-भाव के द्वारा ही हो सकती है।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान....)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन....)
पूर्ति	सही-समझ और सही-भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु

चित्र. 5-3. मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति

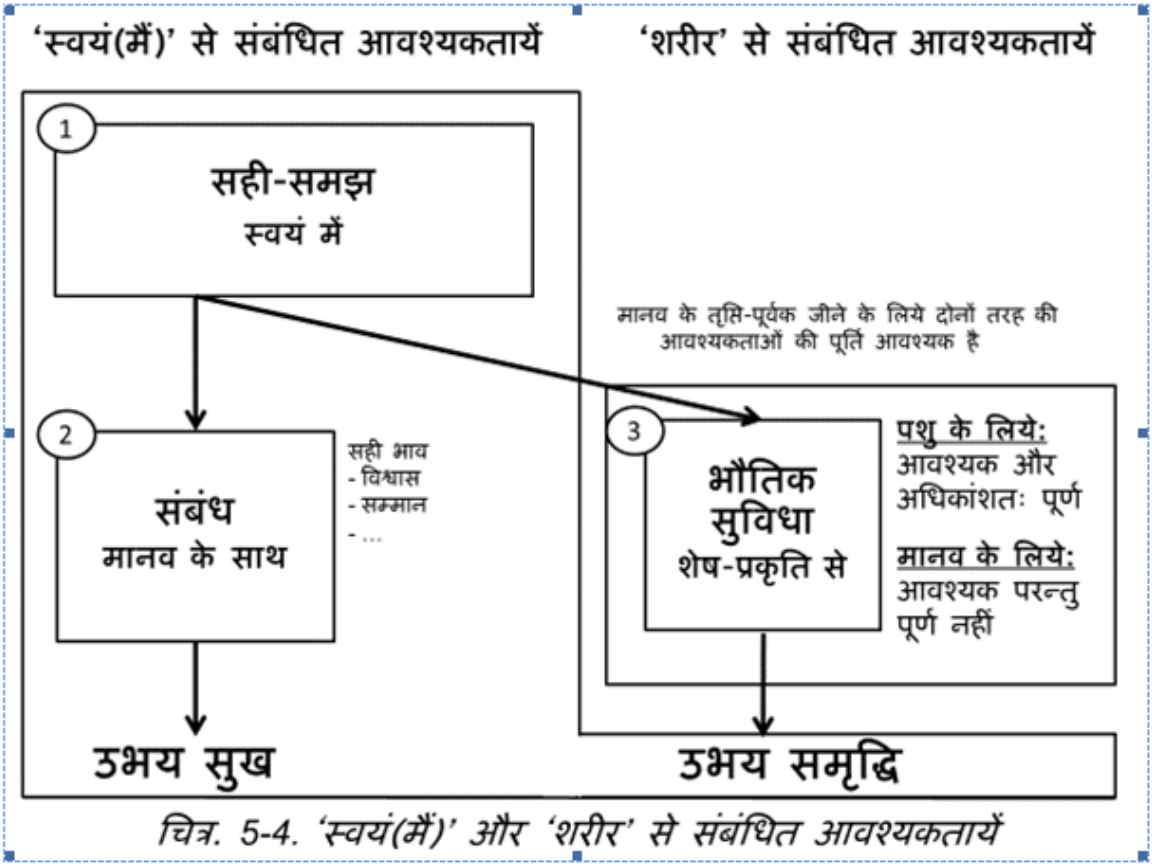

चित्र. 5-4. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' से संबंधित आवश्यकतायें

स्वयं(मैं) की आवश्यकताएं निश्चित हैं

(Needs of the Self are Definite)

मैं की आवश्यकतायें निश्चित होती हैं। एक बच्चे के लिये सुख वैसे ही आवश्यक है जैसे कि किसी बूढ़े व्यक्ति के लिये। दूसरे शब्दों में प्रत्येक को सही-भाव और सही समझ की आवश्यकता है। यह शरीर की स्थिति या अवस्थाओं पर निर्भर नहीं करता है।

स्वयं (मैं) और शरीर की क्रियायें

(The Activities of the Self and the Body)

जब मानव को और गहराई से देखते हैं, तो हम मानव में चल रही क्रियाओं को भी देख पाते हैं। चित्र. 5-5. को देखें।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक

चित्र. 5-5. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की क्रियायें

मैं की क्रियायें इच्छा, विचार और आशा हैं। ये क्रियायें 'काल में निरंतर हैं। दूसरी तरफ, शरीर के द्वारा जो भी कार्य हम करते हैं जैसे खाना, चलना इत्यादि; ये सब काल में सामयिक हैं। हम इनको निरंतर नहीं कर सकते हैं।

'स्वयं (मैं)' और शरीर की अनुक्रिया

(The Response of the Self and the Body)

शरीर की अनुक्रिया, पहचानने और निर्वाह-करने पर आधारित है जबकि मैं की अनुक्रिया; जानने, मानने , पहचानने और निर्वाह-करने पर आधारित है।

जैसी वास्तविकता है, उसको संपूर्णता में वैसा ही समझना 'जानना' है। क्योंकि वास्तविकता निश्चित है, इसलिये 'जानना' भी निश्चित होगा।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह अस्तित्व → 'शरीर'	
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना

चित्र. 5-6. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की अनुक्रिया

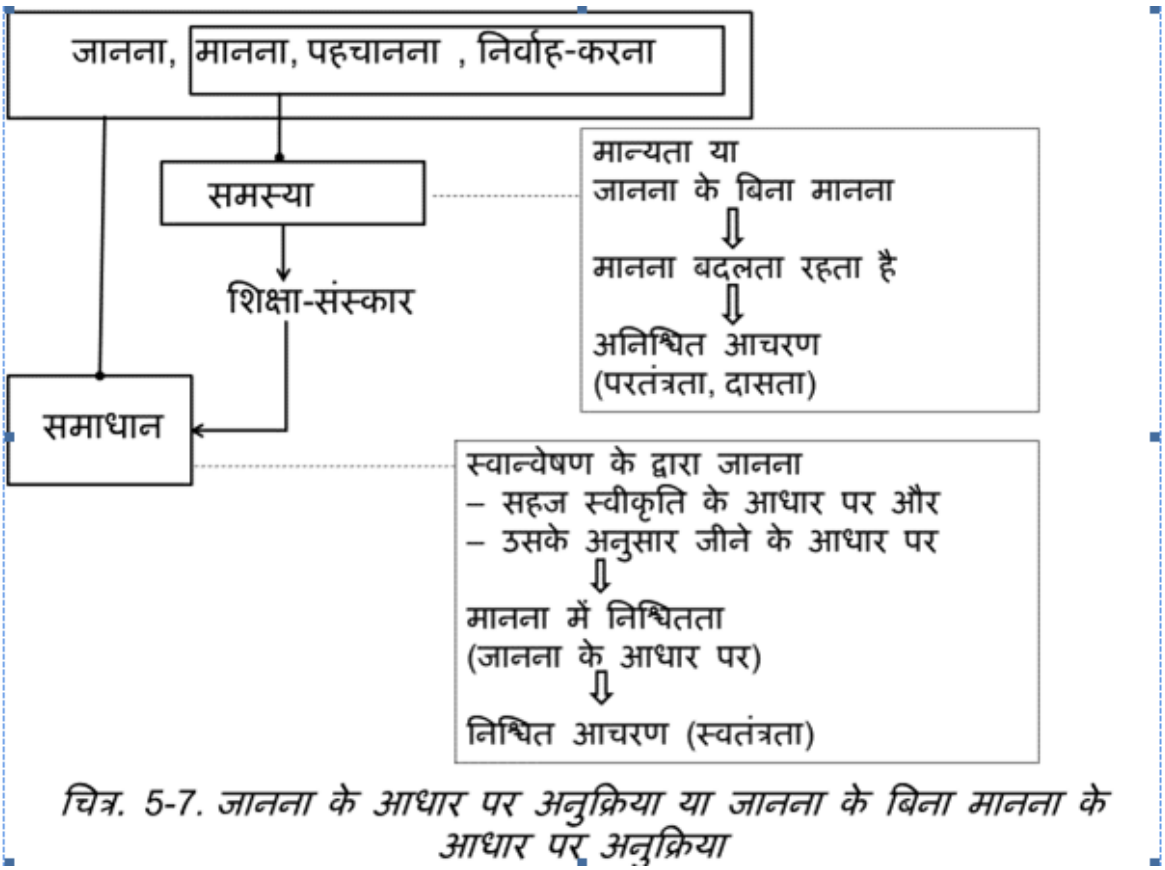

चित्र. 5-7. जानना के आधार पर अनुक्रिया या जानना के बिना मानना के आधार पर अनुक्रिया

मैं , चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में

(The Self as the Consciousness Entity, the Body as the Material Entity)

मैं और शरीर की आवश्यकता, पूर्ति, क्रिया एवं अनुक्रिया पूर्णतः अलग-अलग हैं। अतः ये दो अलग प्रकार की वास्तविकतायें हैं। , जिसे जीवन भी कहते हैं, जो कि चैतन्य का क्षेत्र है जबकि शरीर, जड़ का क्षेत्र है।

मानव	'स्वयं (मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)
पूर्ति	सही समझ और सही भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना
	↓ चैतन्य	↓ जड़

चित्र. 5-8. मानव – 'स्वयं' (चैतन्य क्षेत्र) और 'शरीर' (जड़ क्षेत्र) का सह-अस्तित्व

मुख्य भ्रम - मानव को केवल शरीर मानना

(Gross Misunderstanding – Assuming Human Being to be only the Body)

मानव को केवल शरीर मानना ही मुख्य भ्रम है और इसी कारण सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास केवल सुविधाओं से करते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इससे मानव के जीने के विभिन्न स्तरों पर कई प्रकार के दुष्परिणाम आते हैं। जैसे एक तरफ तो अधिक से अधिक सुविधाओं के संग्रह के लिये प्राकृतिक स्रोतों का शोषण होता है, और दूसरी तरफ इस प्रक्रिया में मानव का भी शोषण होता है,क्योंकि उन्हें सीमित भौतिक आवश्यकताओं के लिये प्रतिस्पर्धा करने हेतु तैयार किया जाता है।

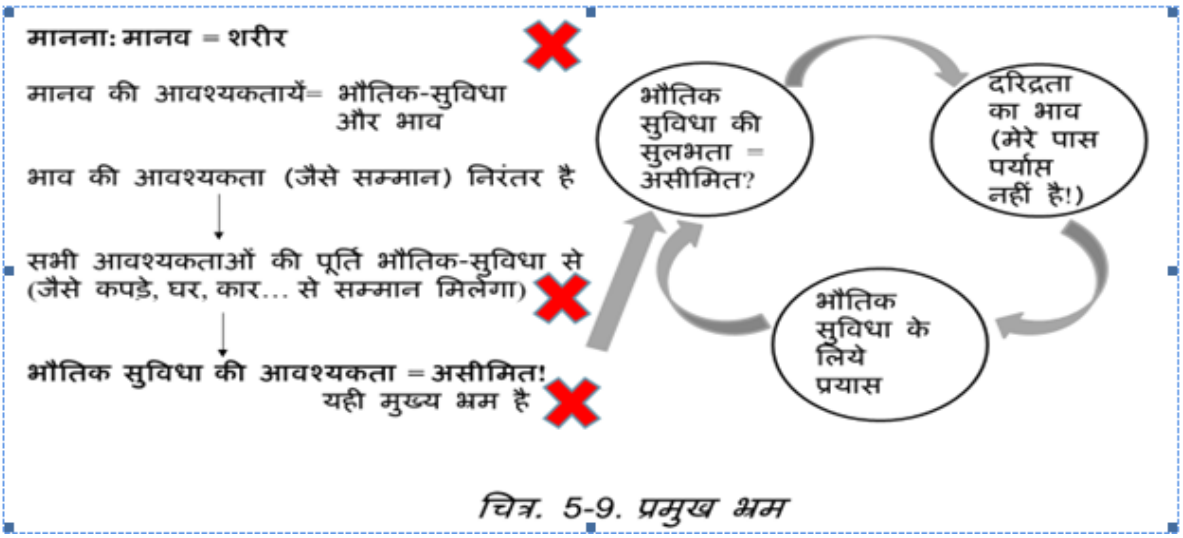

चित्र. 5-9. प्रमुख भ्रम

मानव के केंद्र में मैं है

(The Self is Central to the Human Being)

मानव को देखें तो इसमें स्वयं (चैतन्य) है, शरीर (जड़) है और दोनों का सह-अस्तित्व है।

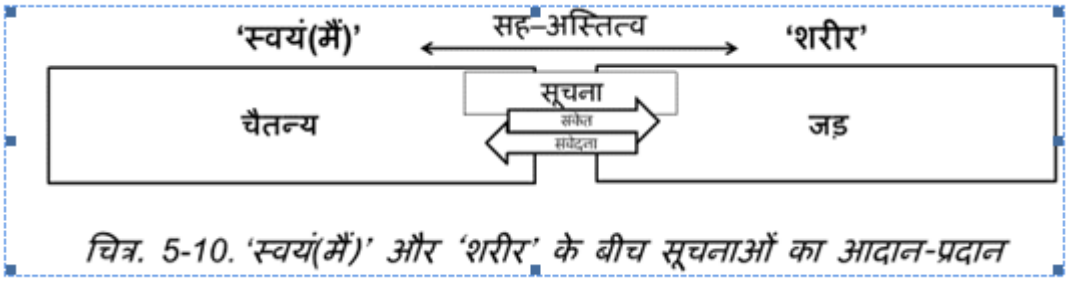

चित्र. 5-10. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान

आगे यह मैं ही है जिसमें वास्तविकताओं को जानने की आवश्यकता और संभावना दोनों हैं- यह (जानने वाला) है।

जब भी शरीर को सम्मिलित करने की आवश्यकता होती है तो ,मैं शरीर को निर्देश देता है और शरीर से संवेदनाओं को भी पढ़ता है ।अतः मैं ही निर्धारित करता है कि क्या करना है- यह कर्ता (निर्णय लेने वाला) है। मैं ही सुख या दुख भोगता है- यह भोक्ता है।इस तरह हम यह देख सकते हैं कि मानव के केंद्र में मैं है। शरीर का उपयोग तो एक यंत्र के रूप में होता है।

आशा है इस पूरी चर्चा के बाद आपका ध्यान स्वयं और शरीर के सह अस्तित्व की ओर बारीकी से गया होगा।

अध्याय-6

स्वयं में व्यवस्था- को समझना

(Harmony in the Self – Understanding Myself)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞ मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

स्वान्वेषण

जो भी कहा जा रहा है, वह एक **प्रस्ताव** है (इसे सही या गलत नहीं मानें)
जाँचे, स्वयं के अधिकार पर

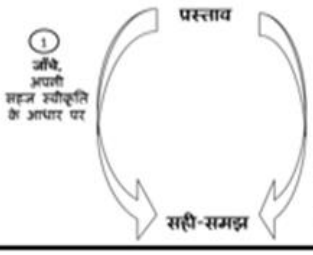

कक्षा 9-10 के अध्याय 6 "स्वयं में व्यवस्था- को समझना" में हमने स्वयं (मैं) की क्रियाओं के बारे में विस्तार से अध्ययन किया और पाया कि स्वयं (मैं) की क्रियायें निरंतर हैं तथा इन क्रियाओं को संयुक्त रूप से कल्पनाशीलता कहा गया तथा यह भी देखा कि कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत मान्यता, संवेदना और सहज स्वीकृति है। हम यह भी देख पाए कि जब -जब कल्पनाशीलता मान्यता व संवेदना से प्रेरित होती है तो यह एक परतंत्रता की स्थिति है ,परंतु जब हमारी कल्पनाशीलता सहज स्वीकृति से प्रेरित होती है तब यह स्वतंत्रता की स्थिति है ।इस अध्याय में हम स्वयं की व्यवस्था पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

मैं की क्रियायें

(Activities of the self)

मैं की क्रियाओं से आशय हमारी कल्पनाशीलता, हमारी निर्णय लेने की क्रिया, हमारी इच्छा, हमारे विचार, हमारी आशा इत्यादि से है।

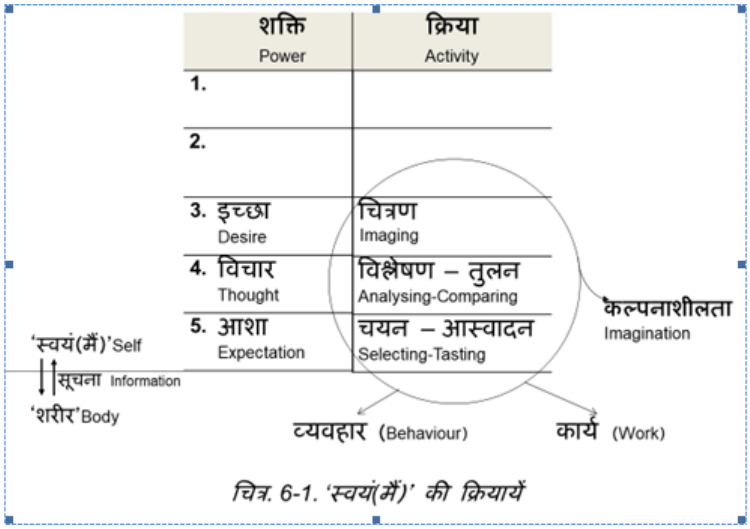

चित्र. 6-1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

इच्छा से तात्पर्य है 'जैसा आप होना चाहते हैं' उसका चित्रण। विचार इसके बारे में है कि इस इच्छा की पूर्ति कैसे करना है।आशा, आपके आस्वादन के आधार पर चयन करने की क्रिया है।

मैं की क्रियायें निरंतर हैं

(Activities of the self are continuous)

स्वयं(मैं), में इच्छा की शक्ति है अर्थात् मैं में चित्रण-क्रिया है, इसलिये चित्रण कर पाते हैं। मैं में विचार की शक्ति है अर्थात् मैं में विश्लेषण-क्रिया की क्षमता है, इसलिये विश्लेषण कर पाते हैं। मैं में आशा की शक्ति है अर्थात् मैं में चयन-क्रिया की क्षमता है, इसलिये चयन कर पाते हैं। यह शक्तियां मैं में कभी भी समाप्त नहीं होती हैं, इसीलिये ये क्रियाएँ निरंतर हैं।आप में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन की क्रियायें सदैव चलती रहती हैं; भले ही आप इनके बारे में जागरूक हो या न हो; ये निरंतर हैं।

क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता

(Activities Together Constitute Imagination)

जब आप इन क्रियाओं को एक साथ देखते हैं तो इसे कल्पनाशीलता कहते हैं। मैं में जो कुछ भी चल रहा है; उसे संयुक्त रूप में आसानी से देख सकते हैं; जिसे कल्पनाशीलता कह रहे हैं। कोई न कोई कल्पनाशीलता तो हर समय हम में चलती ही रहती है।

कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में

(Imagination gets Expressed in Behaviour and Work)

सभी इच्छायें, सभी निर्णय, सभी चयन, कल्पनाशीलता में ही होते हैं। यह मानव के साथ व्यवहार के रूप में और शेष-प्रकृति के साथ कार्य के रूप में व्यक्त होते हैं, जिसमें 'शरीर' का यंत्र के रूप में उपयोग होता है। कल्पनाशीलता, व्यवहार और कार्य से जुड़ती है। इस दृष्टि से कल्पनाशीलता (संग्रहित संस्कार) के केंद्र में है।

कल्पनाशीलता की स्थिति

(State of Imagination)

चित्र 6-2 में कल्पनाशीलता कैसे चलती है, इसका एक उदाहरण दिखाया गया है।यह कल्पनाशीलता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे सभी निर्णय यहीं पर लिये जाते हैं। जो भी हम महसूस करते हैं, जो भी हम सोचते हैं, जो भी हम करते हैं, वह सब यहीं निर्धारित होता है। कल्पनाशीलता की स्थिति से हमें अपने जीवन के बारे में बहुत बारीकी से पता चल पाता है। यदि कल्पनाशीलता सुव्यवस्थित और संगीत में है, तो जीने में भी व्यवस्था होगी, अर्थात् जीना सुखमय होगा। दूसरी तरफ यदि कल्पनाशीलता अव्यवस्थित है तो जीना भी वैसा ही अव्यवस्थित होगा अर्थात् कभी सुख होगा और कभी दुख होगा (चित्र 6-3 देखें)।

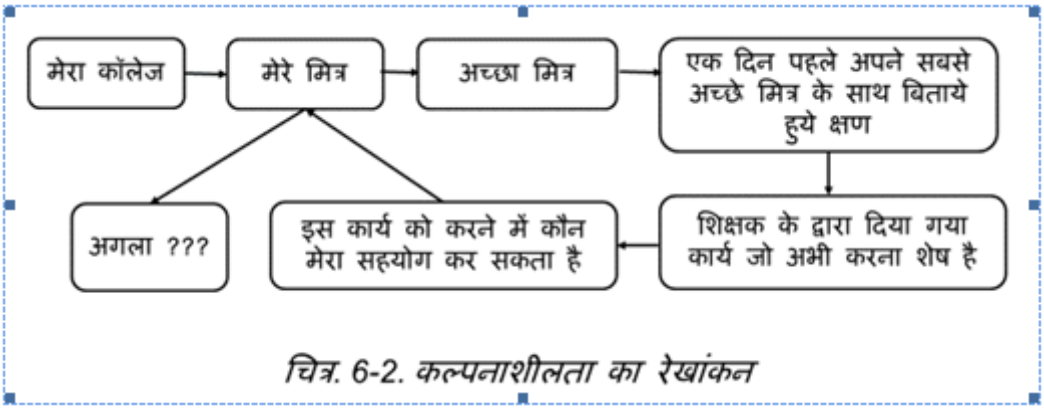

चित्र. 6-2. कल्पनाशीलता का रेखांकन

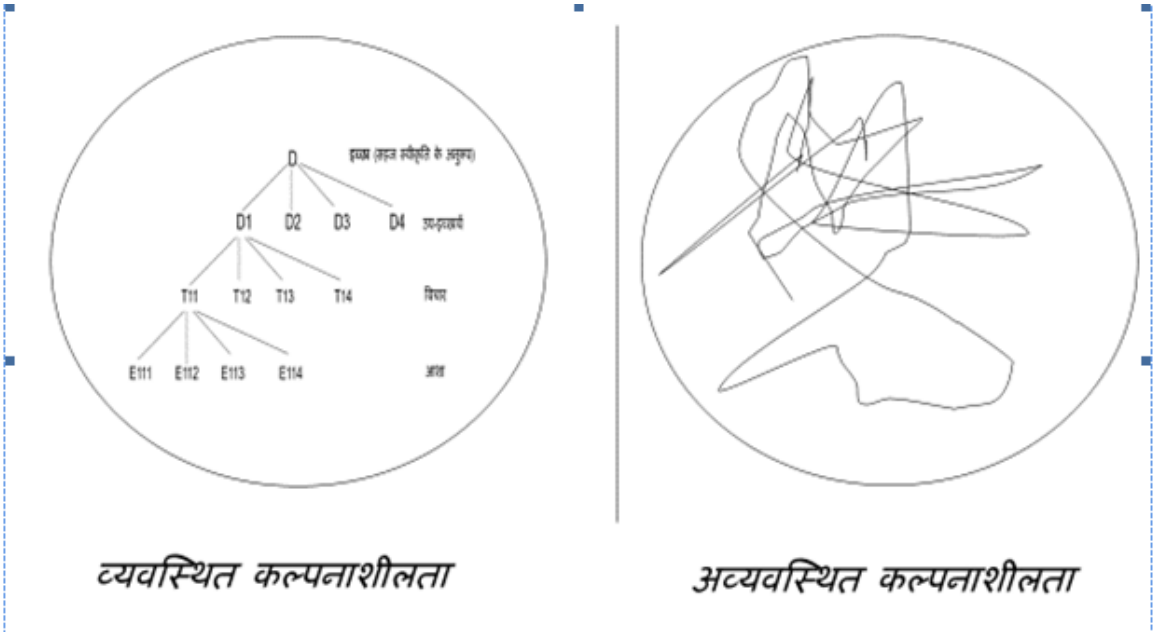

चित्र 6.3 कल्पनाशीलता की स्थिति – व्यवस्था में अथवा अव्यवस्था में.

कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति

(Possible sources of Imagination - Preconditioning, Sensation and Natural Acceptance)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यता, संवेदनायें और सहज-स्वीकृतियाँ।

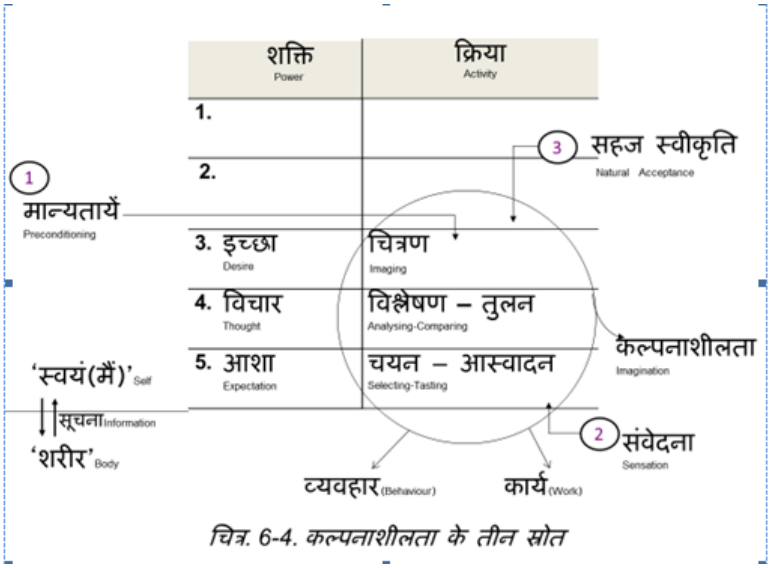

चित्र. 6-4. कल्पनाशीलता के तीन स्रोत

कल्पनाशीलता के प्रेरणा -स्रोत के रूप में मान्यतायें

(Preconditioning as a Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला एक प्रभावशाली स्रोत मान्यता है। मान्यता का अर्थ पूर्वाग्रह, सोच, अवधारणा, रीति-रिवाज, दृष्टि, कहावतें इत्यादि से है। इन्हें कोई व्यक्ति स्वयं

चुनता है या परिवार, समाज में ये प्रचलित होती हैं और इनसे हमारी कल्पनाशीलतायें प्रभावित होती रहती हैं।

कल्पनाशीलता के दूसरे प्रेरणा-स्रोत के रूप में संवेदना (Sensation as Another Source of Motivation for Imagination)

हमारी इच्छा और हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत संवेदना है। संवेदना एक तरह की सूचना है जिसे हमारा , हमारे 'शरीर' के पाँचों संवेदी तंत्र, जैसे ध्वनि (कानों के द्वारा), स्पर्श (त्वचा के द्वारा), रूप (आँखों के द्वारा), रस (जीभ के द्वारा), और गंध (नाक के द्वारा) से प्राप्त करता है।

कल्पनाशीलता के सर्वाधिक प्रामाणिक प्रेरणा-स्रोत के रूप में सहज-स्वीकृति (Natural Acceptance as the Most Authentic Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने का तीसरा स्रोत हमारी सहज-स्वीकृति है। कुछ लोग इसे अपनी अंतरात्मा की आवाज या अंतःकरण भी कहते हैं। अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-सत्यापन करना तीसरा संभावित स्रोत है। वर्तमान में यह स्रोत, आप में कल्पनाशीलता को प्रेरित करने के सर्वाधिक प्रभावकारी स्रोत के रूप में हो भी सकता है या नहीं भी। लेकिन यही हमारी इच्छाओं और हमारी कल्पनाओं को सही रूप में प्रेरित करने वाला एक प्रामाणिक स्रोत है, जो हमेशा हम सभी में प्राकृतिक रूप से बना ही रहता है, चाहे हम इसका संदर्भ लें या न लें।

तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता? (Consequences of Imagination from the three Sources- Self-organisation or Enslavement?)

जब कल्पनाशीलता, मान्यता या संवेदना के द्वारा प्रेरित होती है तो यह किसी बाह्य स्रोत के अधीन रहती है, यही परतंत्रता है। जब कल्पनाशीलता, सहज-स्वीकृति के द्वारा निर्देशित होती है तो यही में संगीत (व्यवस्था) की स्थिति है, यही स्वतंत्रता है।

जब कल्पनाशीलता सहज-स्वीकृति के अनुरूप होती है, केवल तभी इसमें निश्चितता होती है और यह संगीत की तरफ बढ़ती है और जब यह मान्यताओं या संवेदनाओं के द्वारा प्रेरित होती है, तो इसमें अनिश्चितता होती है और अंतर्विरोध या अव्यवस्था की तरफ बढ़ती है।

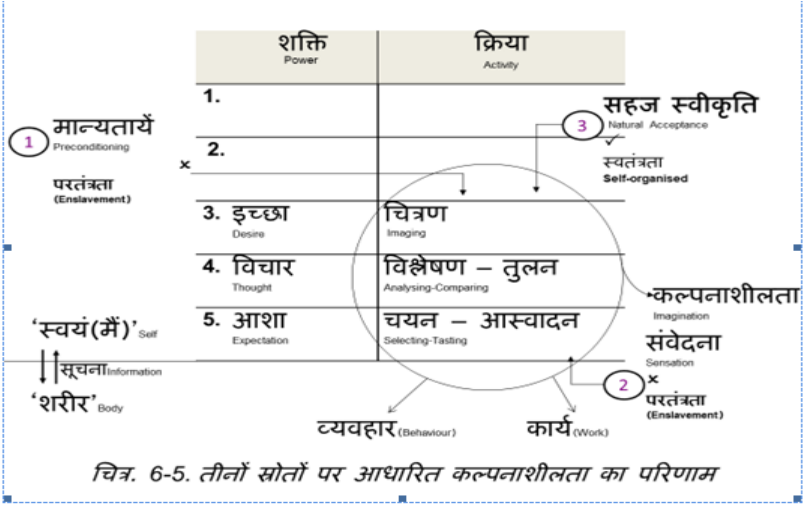

चित्र. 6-5. तीनों स्रोतों पर आधारित कल्पनाशीलता का परिणाम

आगे का मार्ग - स्व-अन्वेषण के माध्यम से मैं में व्यवस्था सुनिश्चित करना

(The Way Ahead – Ensuring Harmony in the Self by way of Self-exploration)

चूंकि सहज-स्वीकृति, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के लिये है, अतः जब कल्पनाशीलता (अर्थात् इच्छा, विचार, आशा) संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व से निर्देशित होती है तो मैं में संगीत होता है और यही मैं में सुख की स्थिति है। यदि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हमारी कल्पनाशीलता संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व से ही निर्देशित हो तो मैं में निरंतर संगीत होगा और ,मैं निरंतर सुख की स्थिति में रहेगा।

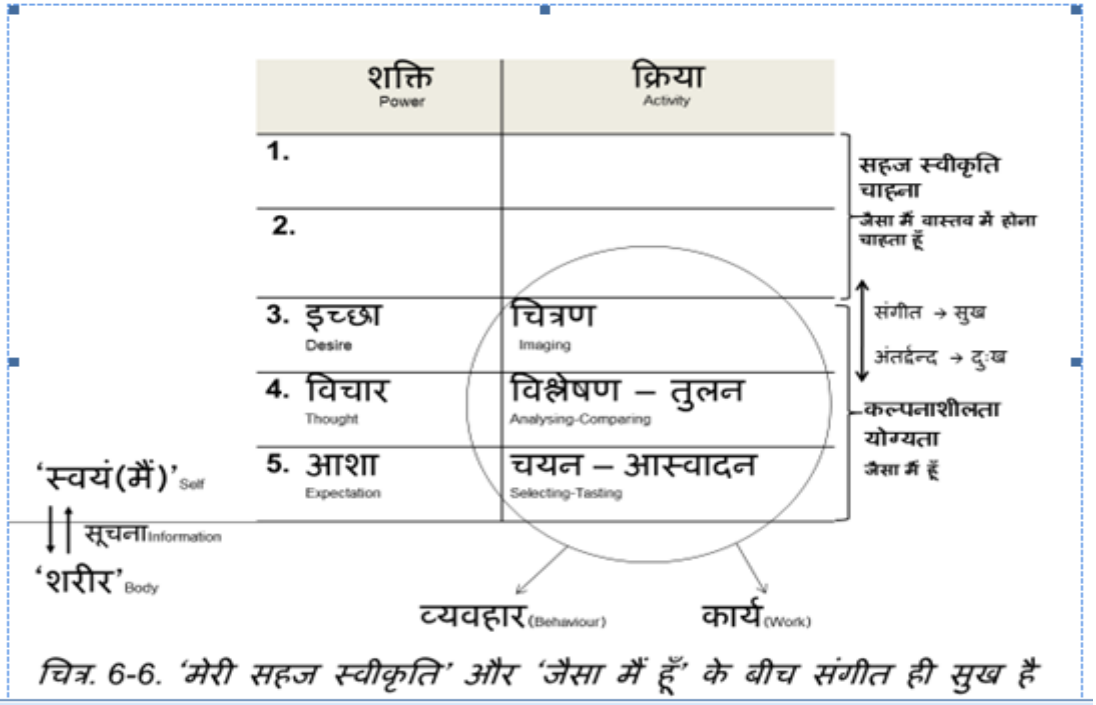

चित्र. 6-6. 'मेरी सहज स्वीकृति' और 'जैसा मैं हूँ' के बीच संगीत ही सुख है

स्वयं (मैं) में व्यवस्था को विस्तार से समझना

(Understanding Harmony in the Self in Detail)

संस्कार वो 'स्वीकृतियां' हैं जो हमारी सभी कल्पनाओं के योगफल से नि:श्रित होती हैं।

संस्कार= सभी कल्पनाओं**(इच्छा विचार आशा)** के योगफल से नि:श्रित स्वीकृतियां

समय के साथ इनमें नवीनीकरण होता रहता है किसी क्षण (**t**) पर एक तरह का संस्कार रहता है और अगले क्षण (**t+**1) पर हमारे संस्कारों में निम्नलिखित आधार पर परिवर्तन होता है:

संस्कार(t+1) = संस्कार(t)+ वातावरण(t)+ अध्ययन(t)

अगले क्षण के संस्कार सहज-स्वीकृति के अनुरूप हो भी सकते हैं और नहीं भी। यदि हम अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-अन्वेषण कर रहे हैं, तो इससे नवनिर्मित संस्कार सौहार्द पूर्ण होंगे अर्थात् संगीत में होंगे और व्यवस्था में होंगे।

आशा है इस पूरी चर्चा के बाद आपका ध्यान स्वयं की व्यवस्था की ओर बारीकी से गया होगा।

अध्याय-7

'शरीर' के साथ 'स्वयं (मैं)' की व्यवस्था - संयम और स्वास्थ्य को समझना

(Harmony of the self with the Body - Understanding Self-regulation and Health)

कक्षा 10 के अध्याय 7 में हमने यह समझने का प्रयास किया कि मानव स्वयं (मैं) और शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं (मैं)' ही है।शरीर' एक स्व-व्यवस्थित, जड़ इकाई है, जिसका उपयोग 'स्वयं (मैं)' यंत्र या उपकरण के रूप में करता है। इस स्पष्टता के साथ 'स्वयं (मैं)', 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी को स्वीकारता है। जिम्मेदारी का यह भाव, संयम का भाव कहलाता है। इसका अध्ययन करने से यह भी पता चलता है कि सुविधा 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) के लिए सीमित मात्रा में आवश्यक है, इस स्पष्टता के साथ अब हम समृद्धि का अर्थ समझ सकते हैं।

यदि हम मानव को देखें तो इसमें 'स्वयं' (चैतन्य) है, 'शरीर' (जड़) है। यह 'स्वयं (मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। 'स्वयं (मैं)', अपनी और 'शरीर' दोनों की आवश्यकता पूर्ति का उत्तरदायित्व निभाता है। दोनों इकाईयों के बीच सह-अस्तित्व स्वीकार्य रहता है।

'स्वयं (मैं)' में निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा है, जो कि इसकी आवश्यकता भी है। इसकी पूर्ति 'स्वयं (मैं)' में व्यवस्था को सुनिश्चित करके होती है। इसके लिये 'स्वयं (मैं)' में सही समझ और सही-भाव को विकसित करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया में 'स्वयं (मैं)', 'शरीर' का आवश्यकतानुसार यंत्र की तरह प्रयोग करता है।

पिछले अध्याय में हमने 'स्वयं (मैं)' में व्यवस्था के बारे में चर्चा की थी। 'स्वयं (मैं)' में व्यवस्था के साथ ही यह, 'शरीर' के साथ व्यवस्था को बनाए रख पाता है। इस अध्याय में हम 'स्वयं (मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था पर चर्चा करेंगे। इससे समृद्धि को भी विस्तार पूर्वक समझने में सहायता मिलेगी।

'स्वयं (मैं)' द्रष्टा-कर्ता-भोक्ता के रूप में ('शरीर' एक यंत्र के रूप में)

(The Self as the Seer-Doer-Enjoyer (Body as an Instrument))

मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं (मैं)' ही है। यही द्रष्टा है (देखने,समझने वाला) , यही कर्ता है (निर्णय लेने वाला) , यही भोक्ता है (भोगने वाला) / सुख या दुख महसूस करने वाला । 'स्वयं (मैं)' की आवश्यकता निरंतर सुख के रूप में सभी स्तरों पर अर्थात् मानव, परिवार, समाज, और प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था को समझने और व्यवस्था में जीने से सुनिश्चित होता है।

मैं द्रष्टा हूँ

(I am the Seer)

मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं (मैं)' ही है। यही द्रष्टा है अर्थात् जो देखने,समझने वाला है।

मैं कर्ता हूँ

(I am the Doer)

मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं (मैं)' ही है। यही कर्ता है अर्थात् जो निर्णय लेने वाला है।

मैं भोक्ता हूँ (भोगने वाला)

(I am the Enjoyer (Experiencer))

मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं (मैं)' ही है। यही भोक्ता है या भोगने वाला है अर्थात् जो सुख या दुख महसूस
करता है।

'स्वयं (मैं)' द्रष्टा, कर्ता, भोक्ता है

(Self is the Seer-Doer-Enjoyer)

मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं (मैं)' ही है। यही द्रष्टा है अर्थात् जो समझने वाला है; यही कर्ता है अर्थात् जो निर्णय लेने वाला है; यही भोक्ता है या भोगने वाला है अर्थात् जो सुख या दुख महसूस करता है। 'स्वयं (मैं)' की आवश्यकता निरंतर सुख है, जो कि सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज, और प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था को समझने और व्यवस्था में जीने से सुनिश्चित होता है।

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित प्रणाली और 'स्वयं (मैं)' के एक यंत्र के रूप में

(Body as a Self-organised System and an Instrument of the Self)

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित, जड़ इकाई है, जिसका उपयोग 'स्वयं (मैं)' यंत्र या उपकरण के रूप में करता है। इस स्पष्टता के साथ 'स्वयं (मैं)', 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी को स्वीकारता है। जिम्मेदारी का यही भाव, संयम का भाव कहलाता है।

'स्वयं (मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था

(Harmony of the Self with the Body)

संयम के भाव के साथ 'स्वयं (मैं)', 'शरीर' के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करने के योग्य हो पाता है जिससे 'शरीर' में स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है, अर्थात् 'शरीर' 'स्वयं (मैं)' के अनुसार कार्य कर पाता है और 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी रह पाती है।

संयम एवं स्वास्थ्य के लिये कार्यक्रम

(Programme for self-regulation and Health)

'शरीर' का पोषण
(Nurturing the Body)
'शरीर' की सुरक्षा
(Protecting the Body)
'शरीर' का सदुपयोग
(Right Utilization of the Body)
संयम और स्वास्थ्य के लिये निम्नलिखित कार्यक्रम हैं-

1a. आहार	1b. विहार

2a. श्रम	2b. व्यायाम
3a. आसन	3b. प्राणायाम
4a. औषधि	4b .चिकित्सा

'स्वयं (मैं)' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था के प्रकाश में समृद्धि की पुनरावृत्ति

(Revisiting Prosperity in the Light of the Harmony between the Self and the Body)

सुविधा 'शरीर' की आवश्यकता है, इसलिये सुविधा का उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) मानव के कार्यक्रम का एक भाग है।

सुविधा 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) के लिये सीमित मात्रा में आवश्यक है, इस स्पष्टता के साथ अब हम समृद्धि का अर्थ समझ सकते हैं।

आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने का भाव ही समृद्धि है ('शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये)।हम यह भी समझ सकते हैं कि समृद्धि के लिये निम्नलिखित की आवश्यकता है:

1.आवश्यक सुविधा की मात्रा की पहचान- सही समझ के द्वारा
2.आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना- सही कौशल के द्वारा

'स्वयं (मैं)' और मेरे 'शरीर' के प्रति मेरी भागीदारी (मूल्य)

(My Participation (Value) Regarding Self and my Body)

वैश्विक खाद्यान्न उत्पादन आंकड़े इंगित करते हैं कि पृथ्वी पर लोगों के लिये उनकी वास्तविक आवश्यकता से कई गुना अधिक उत्पादन हो रहा है। इसलिये जहाँ तक भोजन का संबंध है सभी के लिये समृद्धि संभव लगती है। इसके लिये हमें सही समझ और संबंध में सही-भाव की आवश्यकता है।

अध्याय-8

परिवार मे व्यवस्था- मानव-मानव संबंध में मूल्य को समझना

(Harmony in the Family – Understanding Values in Human-Human Relationship)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
☞ **परिवार में व्यवस्था**	**अध्याय 8**
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

स्वान्वेषण

जो भी कहा जा रहा है, वह एक **प्रस्ताव** है (इसे सही या गलत नहीं मानें)
जाँचे, स्वयं के अधिकार पर

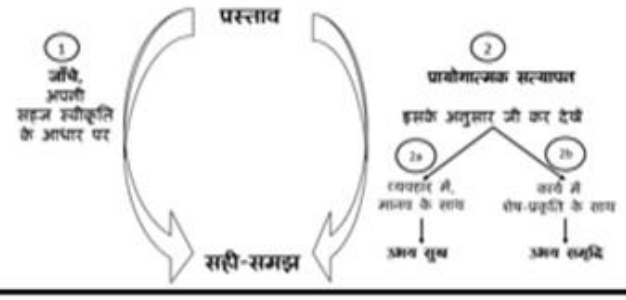

कक्षा 9 के अध्याय 8 में हमने परिवार में व्यवस्था और सम्बन्ध में सहज स्वीकृत के भावों को समझना शुरू किया था। इस क्रम में हमने विश्वास, सम्मान और स्नेह के भाव का अध्ययन किया था। यह दिखता है कि विश्वास का भाव हर सम्बन्ध का आधार है। जब मैं यह देख पाता हूँ कि दूसरा सहज रूप से मुझे सुखी करना चाहता है तो मैं दूसरे का सम्मान कर पाता हूँ, उसका सही आंकलन कर पाता हूँ। विश्वास और सम्मान के भाव के साथ ही दूसरे को

**आंकलन- मूल्यांकन

सम्बन्धी के रूप में स्वीकार पाता हूँ, अर्थात् स्नेह के भाव के साथ जुड़ पाता हूँ।कक्षा 10 में अध्याय 8 में हमने अन्य भाव ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता तथा प्रेम (पूर्णमूल्य) का अध्ययन किया। हमने देखा कि प्रेम,सभी के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव है।यह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से जुड़े होने की पहचान से और उनके बीच संबंध की स्वीकृति से प्रारंभ होता है, जो सहज रूप से सभी मानव तक और फिर प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक विस्तारित होता चला जाता है।जब हम सम्बन्धों में जीते हुए इन भावों का निर्वाह करते हैं तो न्याय होता है और हम देख सकते हैं कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण, हर पल संबंध में न्याय चाहता ही है कक्षा 11 में हम इन भावों की पुनरावृत्ति कर रहे है।

मानव-मानव परस्परता में जीने की मूल इकाई-परिवार

(Family as the Basic Unit of Human Interaction)

हमारे संबंधपूर्वक जीने की योग्यता का विकास परिवार में ही शुरू होता है। हमारे जीवन के प्रारंभिक कुछ वर्ष, जिन्हें हम अपने जीवन के निर्माणाधीन वर्ष कहते हैं, परिवार में ही बीतता है। परिवार वह जगह है जहाँ पर जीते हुये हम परिवार के बड़े-बुजुर्गों, भाई-बहनों, पड़ोसियों और मित्रों के द्वारा, अपने संस्कारों का महत्वपूर्ण भाग ग्रहण करते हैं। परिवार हमारी समझ के सत्यापन के लिये भी एक उपयुक्त स्थान है।परिवार, मानव संगठन की मूल इकाई है। यह व्यवस्था एवं संबंध में जीने के लिये एक अभ्यास स्थली भी है।

परिवार में व्यवस्था का आधार - संबंध में भाव

(Feeling of Relationship as the Basis for Harmony in the Family)

परिवार में व्यवस्था का प्राथमिक रूप, एक सदस्य का दूसरे सदस्य के साथ संबंध मे निर्वाह है। संबंध में निर्वाह के लिये हमें संबंध को समझना आवश्यक है।

संबंध को समझना

(Understanding Relationship)

- संबंधहै- एक' स्वयं (मैं 1)' और दूसरे 'स्वयं (मैं 2)' के बीच है।
- संबंध में भाव है- एक' स्वयं(मैं 1)' में दूसरे 'स्वयं(मैं 2)' के लिये
- इन भावों को पहचाना जा सकता है–ये निश्चित हैं
- इन भावों के निर्वाह और इनके सही-मूल्यांकनसे उभय-सुख होता है

संबंध में सहज-स्वीकार्य भाव (मूल्य) – उभय-सुख की प्राप्ति हेतु भावों के निर्वाह और इनके सही मूल्यांकन

(Fulfilment of feelings in a relationship and their evaluation leads to mutual happiness)

नौ भाव इस प्रकार हैं-

- विश्वास (आधार मूल्य)
- सम्मान
- स्नेह
- ममता
- वात्सल्य
- श्रद्धा
- गौरव
- कृतज्ञता
- प्रेम (पूर्ण मूल्य)

संबंध के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दु

(Salient Points regarding Relationship)

संबंध और व्यवस्था में जीने के लिये 'परिवार' मानवीय संगठन की मूल इकाई है।

- संबंध में सही-सही निर्वाह के लिये संबंध को समझना आवश्यक है। संबंध को बिना समझे सिर्फ मानना के आधार पर इसका ठीक-ठीक निर्वाह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता।

- संबंध पहले से हैं ही। संबंध एक स्वयं(मैं1) और दूसरे स्वयं(मैं2) के बीच होता है। हम संबंध में जुड़े हुये ही रहते हैं चाहे हम इन्हें पहचान पायें या न पहचान पायें। जब हम संबंध को पहचान पाते हैं तो इनको स्वीकार भी पाते हैं और इनके निर्वाह के बारे में सोच भी पाते हैं। जब हम संबंधको नहीं समझते तब भी संबंध तो रहता ही हैं बस हम इन्हें देख नहीं पाते और न ही स्वीकार पाते हैं, अतः हम संबंध के निर्वाह में सफल नहीं हो पाते।

- परिवार में ज्यादातर दुख संबंध में ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण है; सुविधाओं की कमी के कारण कम है। संबंध में मूल समस्या भावों के अभाव के कारण अधिक हैं, न कि सुविधाओं की कमी के कारण। कोई भी सुविधा ,भाव के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती।

- संबंध का आधार भाव है- एक स्वयं(मै1) में दूसरे स्वयं(मैं2) के लिये। भाव 'स्वयं (मैं)' में होते हैं न कि 'शरीर' में। संबंध के निर्वाह में भाव ही मौलिक हैं।

- ये भाव निश्चित होते हैं। अतः इन्हें समझ सकते हैं। संबंध में कुल नौ सहज-स्वीकार्य भाव हैं। विश्वास (आधार मूल्य) से लेकर प्रेम (पूर्ण मूल्य) तक।

- जब हम 'स्वयं (मैं)' में इन सहज-स्वीकार्य भावों को सुनिश्चित कर पाते हैं; दूसरे से साझा कर पाते हैं;और इन भावों का सही-सही मूल्यांकन कर पाते हैं तब उभय-सुख सुनिश्चित होता है।

मानव-मानव संबंध में आधार मूल्य- विश्वास

Foundation Values in Human-Human Relationship- Trust

विश्वास- आधार मूल्य
(Trust as the Foundation Value)

विश्वास का आशय है आश्वस्त होना अर्थात् दूसरा मेरे सुख और समृद्धि के अर्थ में है, ऐसा स्पष्ट होना। जब आप में इस बात की स्पष्टता होती है कि दूसरा आपको सुखी और समृद्ध करना चाहता है तो क्या आप उसके प्रति आश्वस्त महसूस करते हैं?

विश्वास से संबंधित मुख्य बिंदु
(Salient Points regarding Trust)

- विश्वास का अर्थ है,आश्वस्त होना अर्थात् यह स्पष्टता होना कि दूसरे की चाहना (सहज-स्वीकृति) मुझे सुखी और समृद्ध करने के अर्थ में है।जब मैं स्पष्ट रूप से यह देख पाता हूँ कि मेरी चाहना (सहज-स्वीकृति) स्वयं को सुखी और समृद्ध करने के साथ-साथ दूसरों को भी सुखी और समृद्ध करने की है तब मैं यह निष्कर्ष निकाल पाता हूँ कि स्वयं के स्तर पर दूसरा भी मेरे जैसा ही है और उसकी चाहना (सहज-स्वीकृति) भी मेरे जैसी ही है।
- मैं दूसरे को अपने जैसा स्वीकार पाता हूँ। दूसरा मेरे जैसा ही है - हमारी चाहना एक जैसी है, मेरी ही तरह उसकी योग्यता में भी कमी हो सकती है।
- चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों के साथ संबंध महसूस कर पाता हूँ और इसके आधार पर दोनों की वर्तमान योग्यता का आंकलन कर कार्यक्रम बना पाता हूँ। चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों को आश्वस्त करने का प्रयास भी कर पाता हूँ। चाहना पर विश्वास संबंध में परस्पर-विकास का प्रारंभिक बिंदु भी है।
- संबंध का आधार विश्वास का भाव है। इस भाव के अभाव में हम एक दूसरे के साथ संबंध महसूस नहीं कर पाते जिससे संबंध बनते-बिगड़ते हैं। संबंध में सामान्यतः यह गलती होती रहती है कि हम अपना आंकलन अपनी चाहना (सहज-स्वीकृति) के आधार पर करते हैं और दूसरों का आंकलन उनकी योग्यता के आधार पर करते हैं।ऐसा करते हुये हम यह मान लेते हैं कि हम अच्छे व्यक्ति हैं और समस्यायें तो दूसरों में है।

मानव-मानव संबंध में मूल्य- सम्मान

(Human-Human Relationship- Respect)

सम्मान- सही आंकलन
(Respect as Right Evaluation)

विश्वास के भाव की स्पष्टता के बाद, हमने सम्मान के भाव को समझा था हम ने यह भी देखा कि हम स्वयं में सम्मान का भाव कब महसूस करते हैं और दूसरों का सम्मान किस प्रकार से करते हैं

सही आंकलन ही सम्मान है।

गलत आंकलन --अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन अपमान है।

(Over Evaluation, Under Evaluation and Otherwise Evaluation Leading to Disrespect)

अधिमूल्यन-वास्तविकता जैसी है उससे अधिक आंकलन करना

अवमूल्यन-वास्तविकता जैसी है उससे कम आंकलन करना

अमूल्यन-वास्तविकता जैसी है उससे अन्यथा आंकलन करना

सम्मान की संपूर्ण विषय-वस्तु - हमारी परस्पर-पूरकता है

(Complete Content of Respect – We are Complementary to Each Other)

यदि हम 'स्वयं (मैं)' में देखें तो लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता के साथ-साथ हममें योग्यता भी है।योग्यता का अर्थ है कि हमने अपनी क्षमता को कितना क्रियान्वित कर लिया है।ऐसा हो सकता है कि कोई एक व्यक्ति अपनी क्षमता को अधिक क्रियान्वित कर पाया हो, जबकि दूसरा व्यक्ति उसकी तुलना में कम कर पाया हो। अतः योग्यता के अर्थ में हम सभी एक समान ही हो यह आवश्यक नहीं है; योग्यता हम सब की अलग-अलग हो सकती है।

हमारा लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता एक जैसी है यह समझने के बाद हम अपनी योग्यताओं के इस अंतर का उपयोग एक दूसरे के विकास के अर्थ में कर सकते हैं। इस तरह से हम एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं।इसलिये अब यह देख सकते हैं कि "दूसरा मेरे जैसा है और हम एक दूसरे के परस्पर-पूरक हैं" यही सम्मान की संपूर्ण विषय-वस्तु है।

हम एक दूसरे के विकास के लिये संयुक्त कार्यक्रम बना कर अपनी इस परस्पर-पूरकता को परिभाषित कर सकते हैं और इसका निर्वाह भी कर सकते हैं,जैसे कि यदि मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है और किसी दूसरे व्यक्ति ने उसे समझ लिया है तो मैं वह समझने के लिये दूसरे की मदद ले सकता हूँ। इसी तरह से यदि मैंने कुछ समझ लिया है और दूसरा नहीं समझ पा रहा है तो मैं समझने में उसका सहयोग कर सकता हूँ। इस प्रकार, योग्यता का यह अंतर आपस में भेद का कारण न बनकर हमारे लिये परस्पर-पूरकता का अवसर बन जाता है।

आइये इस परस्पर-पूरकता को विस्तार से समझते हैं:

- यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार और जिम्मेदार है तो मैं उससे समझने के लिये तत्पर रहता हूँ।
- यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार, जिम्मेदार हूँ तो बिना किसी शर्त उसके व्यवहार से आहत हुये बिना, अपनी समझ के आधार पर उसके साथ जिम्मेदारी पूर्वक जीता हूँ और जब दूसरा मेरे जिम्मेदारी पूर्वक जीने से आश्वस्त हो जाता है और मुझसे समझने को तत्पर होता है तब मैं उसका समझने में सहयोग करता हूँ। जब तक दूसरा संबंध में मेरे जीने से आश्वस्त नहीं हो पाता मैं उसे समझाने का प्रयास नहीं करता।

सम्मान से संबंधित मुख्य बिंदु

(Salient Points regarding Respect)

- सम्मान का आशय,सही मूल्यांकन है (स्वयं के आधार पर लक्ष्य, कार्यक्रम, क्षमता एवं योग्यता का)।हम लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता में एक जैसे हैं एवं योग्यता के स्तर पर एक दूसरे के पूरक हैं।मैं अपनी इस परस्पर पूरकता को, निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर पाता हूँ:

- यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार, जिम्मेदार है तो मैं उससे समझने के लिये तत्पर रहता हूँ और अपनी तरफ से इसी अर्थ में प्रयास करता हूँ।
- यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार, जिम्मेदार हूँ तो मैं दूसरे के साथ बिना किसी शर्त उसके व्यवहार में होने वाली गलतियों से विचलित हुये बिना ही, उसके साथ जिम्मेदारी से जीता हूँ। जिससे दूसरा मेरे साथ संबंध में सहज हो पाता है और समझने को तत्पर हो पाता है। कई बार इसमें लम्बा समय भी लग सकता है।
- मैं दूसरे को समझने में सहायता करने के लिये प्रतिबद्ध हूँ (जब दूसरा संबंध में आश्वस्त हो जाता है तभी समझाने में सहयोग करता हूँ न कि इससे पहले)। संवाद केवल तभी संभव है, जब दूसरा संबंध में आश्वस्त हो और मुझे सुनने के लिये तैयार हो।
- अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन अपमान है और शरीरगत (आयु, लिंग, वंश, शारीरिक बल), सुविधागत (धन, पद) और मान्यतागत (वाद, संप्रदाय, सूचना) भेद भी अपमान है। अपमान की छोटी-छोटी घटनाओं के परिणाम बहुत दीर्घकालिक हो सकते हैं, जैसे एक दूसरे से बात न करने से शुरू होकर विरोध, संघर्ष, संबंध-विच्छेद, तलाक, और यहाँ तक की युद्ध के कारण भी बन सकते हैं।
- जब मैं 'स्वयं (मैं)' की केन्द्रीय भूमिका को देख पाता हूँ, तो अपने साथ-साथ दूसरे का भी मूल्यांकन 'स्वयं' के आधार पर ही करता हूँ, न कि शरीर, सुविधा या मान्यता के आधार पर।

मानव-मानव संबंध में मूल्य- स्नेह, ममता और वात्सल्य

(Human-Human Relationship- Affection, Care and Guidance)

स्नेह
(Affection)

दूसरों को संबंधी के रूप में स्वीकार कर पाने का भाव **'स्नेह'** है।
जब मैं यह देख पाता हूँ, कि दूसरे की सहज-स्वीकृति भी मेरे सुख और समृद्धि के अर्थ में ही है तब
मैं दूसरे के प्रति आश्वस्त हो पाता हूँ। इस आश्वस्ति के भाव को स्नेह कहते है (Affection is the feeling of being related to the other)

ममता और वात्सल्य
(Care and Guidance)

अब हम यह देख सकते हैं कि जब हम में स्नेह का भाव होता है, तो संबंध में निर्वाह के लिये स्वयं में जिम्मेदारी और निष्ठा सहज ही आ जाती है।यही ममता और वात्सल्य के भाव के रूप में दिखाई देती है।ये ममता और वात्सल्य के भाव वास्तव में स्नेह के भाव के ही सहज परिणाम हैं।ममता, अपने संबंधी के शरीर के पोषण, संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है।वात्सल्य, अपने संबंधी के 'स्वयं (मैं)' में सही समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है। वात्सल्य का भाव सभी के लिये आवश्यक है, न कि केवल परिवार के बच्चों के प्रति।

स्नेह, ममता और वात्सल्य से संबंधित मूल बिन्दु:
(Salient Points regarding Affection, Care and Guidance)

- स्नेह,दूसरे के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव है। यदि किसी व्यक्ति में दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान का भाव है तो सहज रूप से ही उस व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव भी होता ही है। ईर्ष्या या विरोध का भाव मूलतः स्नेह के भाव का अभाव है।स्नेह का भाव संबंध में परस्पर निर्वाह के अर्थ में जिम्मेदारी और निष्ठा के रूप में व्यक्त होता है।
- ममता, अपने संबंधियों के शरीर के पोषण एवं संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी एवं निष्ठा का भाव है।सीमित मात्रा में सुविधा ममता के भाव की पूर्ति के लिये आवश्यकहै।
- वात्सल्य, अपने संबंधियों के स्वयं(मैं)' में सही समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है।
- मानव को सिर्फ शरीर मानने का परिणाम यह होता है कि हमारा अधिकतर ध्यान शरीर के अर्थ में ममता के भाव के निर्वाह पर ही बना रहता है जबकि दूसरे के 'स्वयं (मैं)' के लिये आवश्यक वात्सल्य के भाव के निर्वाह पर कम रहता है।

मानव-मानव संबंध में मूल्य-श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता
(Human-Human Relationship- Reverence, Glory and Gratitude)

श्रद्धा
(Reverence)

श्रेष्ठता की स्वीकृति का भाव 'श्रद्धा' है। (Reverence is the feeling of acceptance for excellence.)

गौरव और कृतज्ञता
(Glory and Gratitude)

जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है, उनके प्रति स्वीकृति का भाव 'गौरव' है।

जिन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया हैं, उनके प्रति स्वीकृति का भाव 'कृतज्ञता' है।

श्रद्धा, कृतज्ञता और गौरव से संबंधित मूल बिन्दु:
(Salient Points regarding Reverence, Gratitude and Glory)

- श्रद्धा, श्रेष्ठ की स्वीकृति का भाव है। श्रेष्ठता का अर्थ है जीने के सभी स्तरों (मानव, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व) में व्यवस्था को समझना एवं व्यवस्था में जीना अर्थात् निरंतर सुखपूर्वक जीना।
- गौरव, जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया उनके प्रति भाव। भले ही ये व्यक्ति पूर्ण रूप में श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकते हों।

- कृतज्ञता, उन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है उनके प्रति भाव। इस प्रक्रिया में उन्होंने मेरे साथ सही समझ का प्रस्ताव साझा किया हो या सही-भाव मुझ तक संचारित किया हो या आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराई हो।
- यदि आप उन लोगों की सूची बनायें जिन्होंने आप को सही समझ, सही-भाव और सुविधा यें उपलब्ध करवाई हो तो यह सूची बहुत लंबी बन सकती है। इस सूची में किसी न किसी रूप में सभी व्यक्ति सम्मिलित होंगे,जो इस धरती पर हैं। इस प्रकार से आप अन्य व्यक्तियों के साथ आपसी-जुड़ाव और आपसी-संबंध को देख पाने के योग्य हो पाते हैं। जिससे धीरे-धीरे संपूर्ण समाज के लिये ही कृतज्ञता का भाव विकसित हो पाता है।

मानव-मानव संबंध में पूर्णमूल्य-प्रेम

(Human-Human Relationship-Love)

प्रेम- पूर्ण मूल्य

(Love as the Complete Value)

पहले आठ मूल्यों पर चर्चा कर लेने के उपरांत अब हम प्रेम मूल्य की बात कर सकते हैं जिसमें अन्य सभी मूल्य सम्मिलित होते हैं, इसलिये इसे पूर्ण-मूल्य भी कहते हैं।

हर एक के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव 'प्रेम' है।

सही भाव- स्वयं के आधार पर या दूसरे से ?

(Right Feeling- Within Myself or from the Other?)

निःसंदेह, जब हम यह प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर बहुत स्पष्ट दिखाई देता है कि स्वयं में सही-भाव की निरंतरता तभी हो सकती है, जब यह हमारी सही समझ पर आधारित हो। केवल तभी ये सही भाव मेरे में निरंतर सुनिश्चित हो पाते हैं। और जब हम दूसरे से सही-भाव पाने की अपेक्षा रखते हैं, तो ये भाव कभी हमें मिल पाते हैं और कभी नहीं अतः दूसरे से मिलने वाले भाव में निश्चितता या निरंतरता नहीं हो पाती है।

संबंध के निर्वाह में सुविधाओं की भूमिका

(Role of Physical Facility in Fulfilment of Relationship)

अब आप यह देख सकते हैं कि मानव-मानव संबंध में भाव के निर्वाह के लिये सुविधाओं की भूमिका बहुत ही सीमित है। सिर्फ ममता के भाव के निर्वाह के लिये ही सुविधा अनिवार्य है क्योंकि आपके या आपके परिवार के सदस्यों के शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये सीमित मात्रा में सुविधाओं की आवश्यकता तो है ही।
ममता के भाव के अतिरिक्त, अन्य भावों के निर्वाह में सुविधा की भूमिका केवल सांकेतिक है।

न्याय की समझ

(Understanding Justice)

इस पृष्ठ भूमि के साथ अब हम संबंध में न्याय के बारे में बात कर सकते हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण, हर पल संबंध में न्याय चाहता ही है;आपको क्या लगता है, ऐसा है अथवा नहीं ? अब हम न्याय के प्रस्ताव पर चर्चा के साथ-साथ परिवार व्यवस्था की इस पूरी चर्चा का भी निष्कर्ष निकलने का प्रयास करेंगे न्याय, मानव-मानव संबंध की पहचान, उसका निर्वाह एवं मूल्यांकन है जिससे उभय-सुख सुनिश्चित होता है।

प्रेम एवं न्याय की समझ से संबंधित मूल बिन्दु:

(Salient Points regarding Love as the Complete Value and Understanding Justice)

- प्रेम,सभी के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव है।यह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से जुड़े होने की पहचान से और उनके बीच संबंध की स्वीकृति से प्रारंभ होता है, जो धीरे-धीरे सभी मानव तक और फिर प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक फैलता चला जाता है। प्रेम का भाव सभी के लिये स्वयं में बना रहता है और करुणा के रूप में उन सभी के साथ व्यक्त होता है जो हमारे संपर्क में आते हैं।यह बिना किसी शर्त के निरंतरता में बना रहता है। प्रेम का भाव वह अंतिम बिंदु है जहाँ प्रत्येक मानव पहुँचना ही चाहता है और वहाँ पहुँच कर निरंतरता में बने रहना चाहता है।इस दृष्टि से, प्रेम पूर्ण मूल्य है।
- प्रेम के बारे में सामान्य भ्रम यह है कि ये संवेदना अर्थात् इंद्रिय सुख पर आधारित है; और वास्तव में यह केवल मोह अर्थात् आसक्ति है।
- प्रेम का भाव अखंड-समाज का आधार है।प्रेम के भाव के साथ ही परिवार में न्याय सुनिश्चित हो पाता है एवं यही न्याय परिवार से शुरू होकर विश्व परिवार की तरफ अग्रसर हो पाता है जो अंततः अखंड-समाज के रूप में अभिव्यक्त होगा।

आशा है इस पूरी चर्चा के बाद आपका ध्यान मानव- मानव संबंध के सभी(नौ) मूल्यों की ओर बारीकी से गया होगा।

अध्याय-9

समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना

Harmony in the Society – Understanding Universal Human Order

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
☞ **समाज में व्यवस्था**	**अध्याय 9**
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

स्वान्वेषण

जो भी कहा जा रहा है, वह एक **प्रस्ताव** है (इसे सही या गलत नहीं मानें)
जाँचे, स्वयं के अधिकार पर

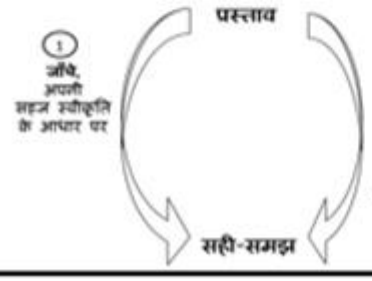

कक्षा 9 और 10 में हमने देखा कि समाज एक साथ जीने वाले परिवारों का समूह है, जिनके लक्ष्य (मानव लक्ष्य) एक समान होते हैं। व्यवस्थित समाज का आधार परिवार में व्यवस्था है, जिसका आधार मानव में व्यवस्था है।

समाज में रहने वाले मानव के लक्ष्य हैं:

1. प्रत्येक व्यक्ति में सही समझ और सही-भाव (सुख)।
2. प्रत्येक परिवार में समृद्धि ।
3. समाज में अभय (विश्वास)।
4. प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता)।

जिससे इन लक्ष्यों की पूर्ति होती है, वह सही वरीयता क्रम 1 से 4 है। बिना सही समझ और सही-भाव के सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना संभव नहीं है, अत: समृद्धि से पूर्व सही समझ और सही-भाव होना आवश्यक है। इसी प्रकार से संबंध की स्वीकार्यता और प्रत्येक परिवार में समृद्धि के साथ ही अभय हो पाता है। चौथे लक्ष्य की पूर्ति तो इन पहले तीनों लक्ष्यों की पूर्ति के परिणाम स्वरूप एक सहज प्रतिफल के रूप में होती है।

चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति के लिये ये पाँच व्यवस्थायें या आयाम आवश्यक हैं:

1. शिक्षा-संस्कार
2. स्वास्थ्य-संयम
3. उत्पादन-कार्य
4. न्याय-सुरक्षा
5. विनिमय-कोष

अब हम प्रत्येक आयाम या प्रणाली का अध्ययन विस्तार से करेंगे; एक-एक करके अब हम इनका और अधिक विस्तार करेंगे।

शिक्षा-संस्कार

(Education-Sanskar)

शिक्षा का उद्देश्य मानव के जीने के सभी स्तरों अर्थात् व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व तक में व्यवस्था की सही समझ को विकसित करना है। संस्कार का अर्थ मानव के जीने के विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था में जीने की मूल स्वीकृतियों को विकसित करना है। ये स्वीकार्यतायें सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीने की निष्ठा को बढ़ाती हैं। यह सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीने की तैयारी और अभ्यास का आधार भी प्रदान करती हैं। व्यवस्था में जीने के लिये तकनीकी और कौशल को सिखाने की तैयारी भी इसमें शामिल है। हमारा जीना हमारे संस्कार की एक अभिव्यक्ति है। हमारी दृष्टि, रवैया, प्रवृत्तियां इत्यादि हमारे संस्कारों की अभिव्यक्ति के ही मुख्य अंग हैं। जैसा कि अध्याय-3 में प्रस्ताव दिया गया था कि शिक्षा-संस्कार की भूमिका निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता को विकसित करने में सहायता करना है, जिसके लिये निम्नलिखित तीनों को सुनिश्चित करना आवश्यक है:

1. सही समझ अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था की समझ होना, अर्थात् इस बात की सही समझ होना कि इन सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीने के लिये मानव को क्या करना है।

2. सही-भाव, दूसरे मानवों के साथ परिवार में और समाज में संबंध पूर्वक रहने की योग्यता है।
3. समृद्धि के लिये सही कौशल, जैसे:

- सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता
- आवश्यकता से अधिक का आवर्तनशील विधि से उत्पादन करने का अभ्यास एवं कौशल (श्रम के माध्यम से चक्रीय एवं परस्पर-संवर्धन की प्रक्रिया)
- समृद्धि का भाव

शिक्षा-संस्कार के ये तीन प्रमुख परिणाम हैं। यह प्रक्रिया तभी घटित होती है, जब शिक्षक में छात्रों के प्रति स्नेह और वात्सल्य का भाव हो तथा छात्रों में शिक्षक के प्रति कृतज्ञता और गौरव का भाव हो। एक व्यक्ति को मानवीय शिक्षा देने से उसमें सही समझ और सही-भाव की सुनिश्चितता होगी, जिससे वह निरंतर सुख के साथ जी पायेगा। सही समझ के आधार पर व्यक्ति आवश्यक सुविधा की सही पहचान और आवश्यकता से अधिक का उत्पादन करके, परिवार में समृद्धि सुनिश्चित कर पायेगा। सही-भाव से मानव का दूसरे मानवों के साथ संबंध पूर्वक जीना सुनिश्चित हो पायेगा, जिससे अंततः समाज में अभय होगा। और यदि चक्रीय और परस्पर-संवर्धन उत्पादन विधि से परिवार में समृद्धि सुनिश्चित होगी, तो प्रकृति में सह-अस्तित्व भी सुनिश्चित होगा।

वर्तमान शिक्षा में सही समझ और मूल्यों के स्थान पर मुख्य रूप से कौशल पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। सही-भाव के स्थान पर प्रतिस्पर्धा (विरोध का भाव) को बढ़ावा दिया जा रहा है। समृद्धि के लिये कौशल की जगह शोषण के लिये कौशल को बढ़ावा दिया जा रहा है। वर्तमान शिक्षा का मुख्य केंद्र सुविधा-संग्रह हो गया है, चाहे वह किसी भी माध्यम से ही क्यों न हो।

छोटे बच्चे मुख्य रूप से अवलोकन और अभ्यास से सीखते हैं। इसलिये, सीखने हेतु, शब्दों से कहीं ज्यादा घर, विद्यालय और समाज के वातावरण की भूमिका महत्वपूर्ण है। दस वर्ष से अधिक के बच्चे भी अवलोकन और अभ्यास विधि से सीखना जारी रखते हैं, लेकिन उनमें स्व-अन्वेषण और अपनी समझ के आधार पर स्व-सत्यापन की प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है। इसलिये उनके स्व-अन्वेषण हेतु मार्गदर्शन महत्वपूर्ण हो जाता है । चूंकि यह पुस्तक मूल रूप से वयस्कों एवं बड़े बच्चों के लिये लिखी गई है। इसलिये स्व-अन्वेषण की विधि को लिया गया है। हम प्रस्तावों को आपके स्व-सत्यापन के लिये रख रहे हैं।

अब अध्याय-3 को याद करें जिसमें हमने यह चर्चा की थी कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को जीव चेतना से निकालकर मानव चेतना में जीने योग्य बनाना है।आप देख सकते हैं कि जीव चेतना में जीने का अर्थ है, कि केवल सुविधाओं को ही प्राथमिकता में लेकर जीना, इस मान्यता के साथ व्यक्तियों का जीना अमानवीय समाज को बढ़ावा देता है।

दूसरी तरफ, जो शिक्षा मानव चेतना में जीने के अर्थ में होती है, वह शिक्षा तीनों वास्तविकताओं को अर्थात् 'स्वयं (मैं)' में सही समझ, मानव के साथ संबंध और शेष-प्रकृति के साथ सुविधा को सुनिश्चित करती है। परिणामस्वरूप एक ऐसा समाज बनता है जिसमें सभी चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति सुनिश्चित हो पाती है।

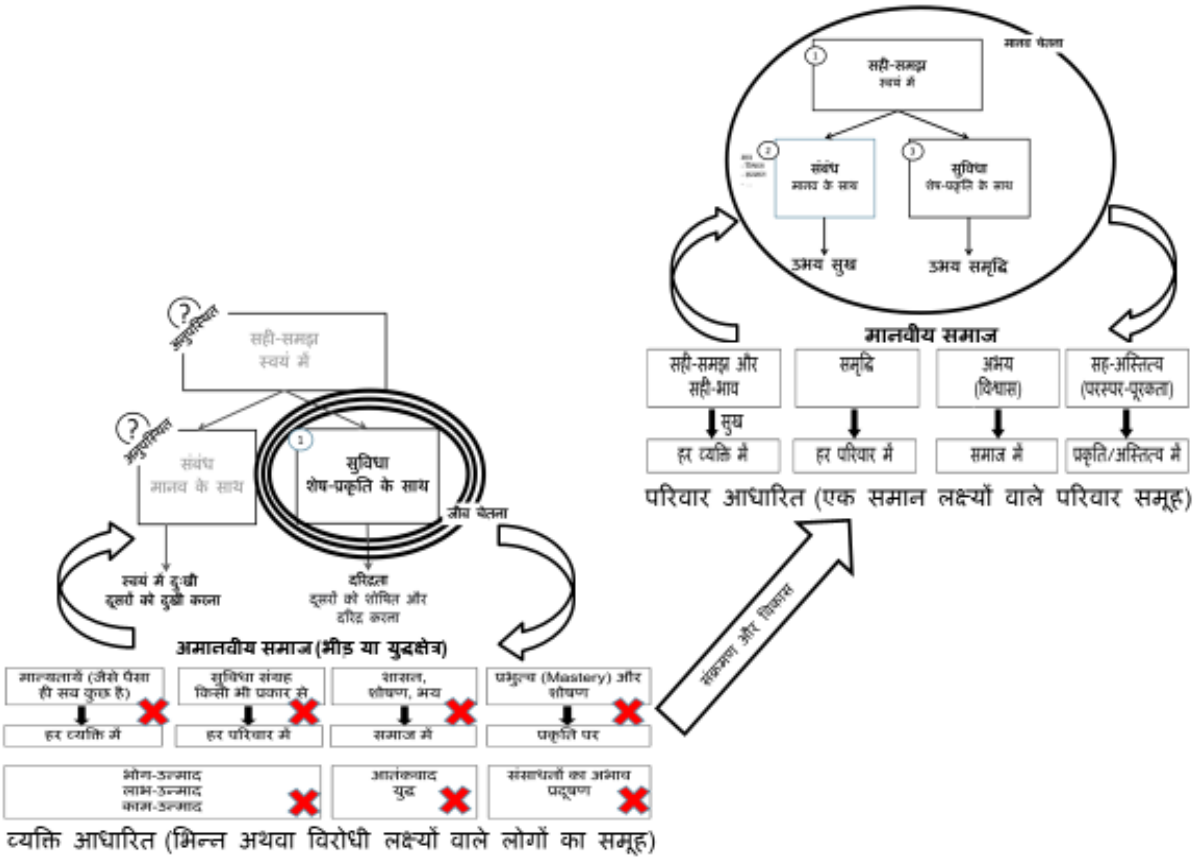

चित्र. 9-5. मानवीय शिक्षा संस्कार की भूमिका- संक्रमण

शिक्षा व्यवस्था की मुख्य जिम्मेदारी यह है, कि वह ऐसे लोगों को और समाज को मानवीय समाज के जीवित आदर्श के रूप में विकसित करे। यह एक सतत् प्रक्रिया है। एक बार जब मानवीय समाज की समझ हो जाती है और यह समझ हममें स्थापित हो जाती है, तो यह अगली पीढ़ी के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार सुनिश्चित करने में सक्षम हो पाती है; और यदि मानवीय शिक्षा-संस्कार की स्थापना हो जाये तो यह उन लोगों को तैयार करने में सक्षम होता है, जिनके पास मानवीय समाज में रहने की योग्यता हो; और वे मानवीय समाज के विकास में निरंतर योगदान करने में सक्षम भी हों।

निःसंदेह, औपचारिक शिक्षा, शिक्षा-संस्कार आयाम का एक महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षा-संस्कार की इस प्रक्रिया में परिवार और समाज की महत्वपूर्ण भूमिका इसलिये है, क्योंकि बच्चा बहुत सारी जानकारियाँ परिवार और समाज से ही ग्रहण करता है। परिवार में व्यवहार और जीने के तरीके, समाचार पत्रों, मीडिया के माध्यम से प्राप्त संदेश, विभिन्न त्योहार, उत्सव और महत्वपूर्ण घटनायें जैसे जन्म, विवाह, मृत्यु इत्यादि, व्यक्ति के संस्कार को बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

संयम और स्वास्थ्य

(Self-regulation and Health)

हमने अध्याय-7 में इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की थी। इससे संबंधित सामाजिक व्यवस्था के बारे में चर्चा करने से पूर्व हम उनमें से कुछ बातों को दोहराना आवश्यक समझते हैं।

संयम 'स्वयं (मैं)' में, 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग करने की जिम्मेदारी का भाव है। 'शरीर' का स्वास्थ्य इस तथ्य से इंगित होता है कि 'शरीर', 'स्वयं (मैं)' के निर्देशों के अनुसार कार्य करने में सक्षम है और इसके विभिन्न अंग व्यवस्था में हैं।

संयम के भाव का अर्थ रोकना या नियंत्रण करना नहीं है बल्कि 'स्वयं (मैं)' में 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी को पहचानने और शरीर के लिये निम्न भावों को सुनिश्चित करने की निष्ठा है:

- शरीर का पोषण
- शरीर का संरक्षण
- शरीर का सदुपयोग

समाज के स्तर पर, हम ऐसी सामाजिक प्रणालियों के बारे में सोच सकते हैं जो हमारे पारिवारिक और सामाजिक प्रयासों का सहयोग, संरक्षण और संवर्धन कर सकें। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

1. **शिक्षा व्यवस्था** - यह आवश्यक है, कि बच्चों को स्वास्थ्य के सभी आयामों के लिये तैयार किया जाए जिससे कि वे अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक अभ्यास कर सकें और 'स्वयं (मैं)' में संयम के भाव को विकसित कर सकें।
2. **परिवार व्यवस्था** – समाज में परिवार व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान है । परिवार में व्यवस्था अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। परिवार व्यवस्था के सहज भाग के रूप में उपयुक्त आहार, दैनिक दिनचर्या, अभ्यास और श्रम इत्यादि शामिल हैं। जिसमें छोटी-छोटी बीमारियों को घरेलू उपचार से ठीक करने का कौशल भी शामिल है। इन क्षेत्रों में परिवार व्यवस्था अपने पड़ोस, परिवार समूहों और इससे बाहर भी अर्थपूर्ण ढंग से भागीदारी करती है।
3. **सामाजिक स्तर पर स्वास्थ्य व्यवस्था**- सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख भाग मुख्य धारा की शिक्षा है। जिसे हमने बिंदु एक में चिन्हित किया है। स्वास्थ्य प्रणाली में केवल बीमारी के उपचार की बजाय स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने और रोगों की रोकथाम सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना आवश्यक है। जो कि श्रम और व्यायाम के साथ-साथ ऐसी अन्य क्रियाओं को भी बढ़ावा देगा, जिससे शरीर और श्वसन क्रियाये संतुलन में रहें। यह सभी स्तरों पर अच्छी जीवन शैली का अभ्यास करने, विशेषकर आहार-विहार, श्रम में, और छोटी बीमारियों का घरेलू उपचार करने में सहायक है।
4. **सामाजिक स्तर पर औषधि एवं चिकित्सा व्यवस्था** - चिकित्सा और औषधि की समग्र व्यवस्था को विकसित करना आवश्यक है, जो कि वर्तमान में प्रचलित विभिन्न औषधियों और चिकित्सा व्यवस्थाओं के निचोड़ पर आधारित हो और इसको व्यावसायिक लाभ की जगह परस्पर–पूरकता के भाव से संचालित किये जाने को सुनिश्चित किया जा सके।

इसके साथ, यदि हम वर्तमान स्वास्थ्य प्रणाली को देखें, तो इसके बोझ में काफी कमी आ सकती है। लगभग *80%* बीमारियाँ जो जीवनशैली से ही संबंधित हैं, जिसको व्यक्ति, परिवार, परिवार समूहों, स्कूलों और कॉलेजों के स्तर पर रोका जा सकता है। शेष लगभग 10% को घरेलू उपचार द्वारा संभाला जा सकता है; संक्रामक बीमारियों (communicable illnesses), दुर्घटनाओं और आनुवांशिक विकारों का एक बहुत छोटा प्रतिशत शेष बचेगा, जिसके लिये औषधि और चिकित्सा की आवश्यकता होगी। इस बुनियादी समझ के साथ, अपने आस पास देखने पर एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकता है। संयम और स्वास्थ्य के इस अध्ययन का एक आवश्यक

परिणाम यह होगा कि हम निश्चित सुविधा की आवश्यकता की पहचान कर पाने में सक्षम होंगे। हम यह भी पता लगाने में सक्षम होंगे कि शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये क्या आवश्यक है और कितना आवश्यक है। हम समृद्धि के बारे में अध्याय-4 और अध्याय-7 में संक्षिप्त रूप से अध्ययन कर चुके हैं। उत्पादन व्यवस्था को तय करने के लिये यह आवश्यक है कि परिवार, गाँव, राष्ट्र और विश्व स्तर पर कुल मिलाकर कितनी सुविधा की आवश्यकता है, इसकी पहचान की जाये।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए समग्र स्वास्थ्य के सन्दर्भ में निम्नलिखित बातें की जा सकती हैं-

समग्र मानव स्वास्थ्य

(Holistic Human Health)

जब हमने मैं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मनुष्य की वास्तविकता के प्रस्ताव को समझ लिया है और स्वयं में सामंजस्य और स्वयं के शरीर के साथ सामंजस्य को भी समझ लिया है, तो आइए अब देखें कि समग्र स्वास्थ्य के स्वरूप के प्रति दृष्टिकोण किस प्रकार का होगा।

समग्र स्वास्थ्य का क्या अर्थ है? आपके लिए अन्वेषण करने का एक प्रस्ताव यहां दिया गया है –

समग्र मानव स्वास्थ्य, स्वास्थ्य पर एक समग्र दृष्टिकोण को संदर्भित करता है जिसमें आपके स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली हर वस्तु की समझ शामिल है। मनुष्य इस अस्तित्व की ही एक इकाई है जो अपने परिवेश में अंतर्निहित है – यह इस अस्तित्व से पृथक् इकाई नहीं है। इसलिए मनुष्य का स्वास्थ्य उसके वातावरण में हर चीज से प्रभावित होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वास्थ्य को समग्र में देखने के लिए आपको निम्नलिखित चार पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है:

1. मानव (Human)- आपने पढ़ा है कि मनुष्य केवल शरीर ही नहीं, बल्कि स्वयं (मैं) और शरीर का सह-अस्तित्व है। इसलिए, जब आप स्वास्थ्य को देखते हैं, तो आपको दोनों - स्वयं के स्वास्थ्य और शरीर के स्वास्थ्य को देखने की आवश्यकता होती है। आप मैं (स्वयं) में जो इच्छाएँ/भावनाएँ, विचार और आशायें (कल्पनाशीलता) लगातार चल रही हैं, उनका भी आपके शरीर के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है।

2. सम्बन्ध (Relationship)- अन्य मनुष्यों के साथ आपके संबंध का भी आपके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है - जब आप अपने संबन्धों का ठीक-ठीक निर्वाह करते हैं तो आप अपने में सुखी होते हैं और इसका आपके स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, जब आप अपने संबन्धों का ठीक से निर्वाह नहीं कर पाते तो आप दुखी होते हैं और यह आपके स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

3. समाज में व्यवस्था (Harmony in Society)- यदि समाज में विश्वास का भाव हो तो समाज में निर्भयता होती है; ऐसे समाज में आप अपने में शान्ति और सहजता का अनुभव करते हैं जिसका आपके शरीर और उसके स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यदि समाज में अविश्वास हो तो आप लगातार चिन्ता और विरोध की भावनाओं के साथ जीते हैं और इसका आपके और आपके शरीर के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

4. प्रकृति/अस्तित्व (Nature/Existence)- जब आप प्रकृति/अस्तित्व में अंतर्निहित सामंजस्य को समझते है और वैसे जीते है (बिना उस सामंजस्य को बिगाड़े, बिना प्रकृति मे वायु, जल इत्यादि को खराब किये), तो आपका शरीर भी स्वस्थ रहता है ।

जब आप इन चारों के सामंजस्य को समझते हुये चारों स्तरों पर सामंजस्य में जीते हैं और अपने में सही भाव रखते हैं, तो आप संयम) स्व-नियन्त्रण के भाव (के साथ अपने शरीर का उत्तरदायित्व लेते हैं ,उसकी जिम्मेदारी लेते हैं और उसका पोषण, संरक्षण और सही उपयोग करते हैं; शरीर का स्वास्थ्य इसका एक स्वाभाविक परिणाम है।

तो मनुष्य के स्वास्थ्य में दोनों शामिल होने चाहिए –

स्वयं का स्वास्थ्य

और

शरीर का स्वास्थ्य

इसके अलावा, मनुष्य का स्वास्थ्य हर उस वस्तु से प्रभावित होता है जिससे उसका जीवन जुड़ा हुआ

है। इसलिए, स्वास्थ्य के समग्र दृष्टिकोण में पर्यावरण के स्वास्थ्य को भी शामिल करना चाहिए।

इस आधार पर समग्र मानव स्वास्थ्य कैसा होगा यह देखते हैं –

1. स्वयं का स्वास्थ्य या मानसिक स्वास्थ्य
मनुष्य को समझना
स्वयं को समझना
—> स्वयं में सामंजस्य - स्वस्थ स्व (मैं) (1)

2. शारीरिक स्वास्थ्य या शरीर का स्वास्थ्य
शरीर को समझना
—> शरीर में सामंजस्य - स्वस्थ शरीर (2)

3.परिस्थितियां जिनसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता हो
अर्थात् पर्यावरण को समझना-
परिवार में सामंजस्य
समाज में सामंजस्य - स्वस्थ पर्यावरण (3)
प्रकृति/अस्तित्व में सामंजस्य

इस प्रकार, संपूर्ण स्वास्थ्य को समग्र रूप से सुनिश्चित करने में तीन प्रमुख चरण शामिल हैं:

1. सार्वभौमिक स्वास्थ्य सिद्धान्त (Universal Health Principles)- (वास्तविकता को समझना - चीजें जैसी हैं उन्हें वैसे देखा पाना) जब हम सिद्धांतों को समझते हैं, तो हम देख पाते हैं कि स्वस्थ रहने के लिए हमें जो कुछ भी करना है वह क्यों करना है ("क्यों करें"?, प्रश्न का उत्तर)
2. स्वास्थ्य के लिए अनुशंसा/सुझाव (Recommendations for Health) - ये वास्तविकता/सिद्धांतों पर आधारित हैं (स्वस्थ रहने के लिए क्या करना है - ये इस प्रश्न का उत्तर देते हैं) और
3. अनुशंसाओं का कार्यान्वयन (Compliance of Recommendations)- (स्वस्थ रहने के लिए क्या अभ्यास और कौन सी प्रक्रियाएं हों - "कैसे करें"? प्रश्न का उत्तर)

सार्वभौमिक/मूलभूत स्वास्थ्य सिद्धान्त
(Universal/Basic Health Principles)

'सार्वभौमिक या मूलभूत सिद्धान्तों' से क्या तात्पर्य है?

मूलभूत सिद्धान्त यथार्थ पर आधारित सिद्धान्त हैं – अर्थात् जिस तरह से वस्तुयें हैं। वास्तविकता एक है (भले ही अलग-अलग व्यक्ति इसे अपने अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखते हों)। चूँकि वास्तविकता एक है, उस पर आधारित सिद्धान्त सभी के लिए समान हैं।

पहला मूलभूत सिद्धान्त जो सभी मनुष्यों के लिए समान है (सार्वभौमिक है) यह है कि, प्रत्येक मनुष्य स्व (चैतन्य इकाई) और शरीर (भौतिक इकाई) का सह-अस्तित्व है।

दूसरा मूलभूत सिद्धान्त यह है कि मानव के अस्तित्व का केंद्र चैतन्य इकाई है; शरीर केवल मैं का एक साधन/उपकरण है।

तीसरा मूलभूत सिद्धांत यह है कि शरीर, एक भौतिक इकाई होने के कारण, प्रकृति के भौतिक नियमों का पालन करता है - इसकी आवश्यकतायें भौतिक-रासायनिक हैं जैसे कि भोजन। यदि ग्रहण किया गया भोजन शरीर के लिये पोषक हो, तो यह शरीर को बढ़ने, स्वस्थ रहने और मजबूत होने में सहायता करता है, लेकिन यदि ग्रहण किया गया भोजन शरीर के लिये पोषक ना हो तो यह शरीर को कमजोर और इसे रोगग्रस्त बना सकता है।

चौथा मूलभूत सिद्धान्त यह है कि शरीर एक स्व-संगठित इकाई है...।

स्वास्थ्य के लिए अनुशंसाएँ
(Recommendations for Health)

(सार्वभौमिक स्वास्थ्य सिद्धांतों पर आधारित)

स्वास्थ्य के लिए अनुशंसाएँ सार्वभौमिक स्वास्थ्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं (जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर किया गया है)। ये अनुशंसाएँ स्वस्थ रहने के लिए **'क्या करें'** इस विषय में हमारा मार्गदर्शन करती हैं। इन सुझावों का पालन करके आप शरीर को स्वस्थ रख सकते हैं।

जबकि मूलभूत सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं और सभी मनुष्यों के लिए सभी समय पर समान रूप से लागू होते हैं, वहीं स्वास्थ्य के लिए अनुशंसाएँ अलग-अलग उम्र , लिङ्ग, स्थान, समय आदि के आधार पर भिन्न हो सकती हैं क्योंकि शरीर के स्तर पर हममें भिन्नतायें हो सकती हैं - एक युवा हो सकता है, दूसरा बूढ़ा हो सकता है; एक पुरुष हो सकता है, दूसरी महिला हो सकती है, हमारे शरीर के अलग-अलग गठन हो सकते हैं इत्यादि।

इस प्रकार, जबकि सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं और सभी के लिए समान हैं, अनुशंसाएँ विशिष्ट हो सकती हैं और अलग-अलग लोगों के लिए भिन्न हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए शरीर से संबंधित एक सार्वभौमिक सिद्धान्त जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है कि शरीर भौतिक है और प्रकृति के भौतिक नियमों का पालन करता है - इसकी आवश्यकतायें भौतिक-रासायनिक हैं, जैसे कि - भोजन । यदि ग्रहण किया गया भोजन शरीर को पोषण दे रहा है, तो यह शरीर के बढ़ने, स्वस्थ और मजबूत बनने में मदद करता है, लेकिन

यदि खाया गया भोजन शरीर को पोषण नहीं दे रहा है तो यह शरीर को कमजोर कर सकता है और बीमार बना सकता है। यह सभी मनुष्यों के लिए सत्य है।

इसके आधार पर, एक अनुशंसा है कि मनुष्य वही भोजन ग्रहण करे जो शरीर के लिये पोषक हो (जैसे फल, सब्जियां, अनाज इत्यादि) जिससे उसका शरीर स्वस्थ और मजबूत रहे; साथ ही मनुष्य ऐसे खाद्य पदार्थों को ना ग्रहण करे जो मानव शरीर के लिए पोषक ना हों (जैसे तली हुई, मीठा या प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ) – ये खाद्य पदार्थ शरीर को कमजोर करते हैं, जिससे मनुष्य सर्दी, खांसी और अन्य गम्भीर व्याधियों से आसानी से ग्रसित हो जाता है। आप देख सकते हैं कि यह एक अनुशंसा है जो आपकी कक्षा के सभी छात्रों के लिए समान होगी।

अब यदि हम शरीर के बदलते स्वरूप को ध्यान में रखें तो क्या होगा, आइये देखते हैं। एक भौतिक इकाई होने के कारण हमारा शरीर, सभी भौतिक इकाइयों की तरह, अनेक परिवर्तनों से गुजरता है; शरीर एक नवजात शिशु से एक बच्चे, एक किशोर, एक वयस्क और फिर एक वृद्ध की अवस्था वाले व्यक्ति के रूप में विकसित होता है। हम पाते है कि सभी मनुष्यों को शरीर के लिए पोषण करने वाले भोजन की आवश्यकता होती है, ऐसा होने पर भी आप एक नवजात शिशु को फल, सब्जियां, अनाज आदि नहीं देंगे, है ना? एक नवजात शिशु के दाँत नहीं होते हैं और इसलिए वह इन सभी खाद्य पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकता है। इसलिए, जब नवजात शिशुओं के लिए भोजन की बात आती है, तो यह बहुत विशिष्ट है - उनके आहार में केवल दूध शामिल होगा; कोई ठोस भोजन नहीं।

इस तरह सिद्धान्त सभी के लिए समान हैं, अनुशंसाएँ भिन्न हो सकती हैं और विशिष्ट व्यक्तियों के लिए विशिष्ट हो सकती हैं। इसी तरह अनुशंसाएँ दिन के विशिष्ट समय, विशिष्ट मौसम आदि के लिए भी विशिष्ट हो सकती हैं।

शरीर को स्वस्थ रखने वाली विभिन्न अभ्यासों को अपनाकर इन अनुशंसाओं को शरीर में लागू किया जा सकता है। तो आइए अब देखें कि इन अनुशंसाओं को कैसे लागू किया जाए ताकि हम चिकित्सकों, अस्पतालों आदि पर निर्भर हुए बिना अपने शरीर के स्वास्थ्य को सुनिश्चित कर सकें।

अनुशंसाओं का कार्यान्वयन

(Compliance of Recommendations)-

स्वस्थ रहने के लिए अभ्यास और प्रक्रियाएं - "कैसे करें?"

स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रम

व्यक्तिगत स्तर पर स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए, हम स्वास्थ्य के लिए एक कार्यक्रम बना सकते हैं जिसमें अनुशंसाओं को लागू करने के लिए विभिन्न अभ्यासों को शामिल किया गया है। इसके लिए ध्यान देने योग्य कुछ प्रमुख क्षेत्रों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं –

- आहार (Intake),
- विहार या दैनिक दिनचर्या (Daily Upkeep)
- श्रम और व्यायाम (Labour and Excercise)
- आसन से आन्तरिक अङ्गो का नियमन (जैसे योग से) और श्वास-प्रश्वास का नियमन (जैसे प्राणायाम से)
- घरेलू उपचार का उपयोग करना (दवा और उपचार का सहारा लेने से पहले)

इन सभी पर पहले ही संक्षेप में चर्चा की जा चुकी है; अब यहां पर हम इनमें से कुछ विषयों को थोड़ा और विस्तार से देखेंगे (जैसे कि आहार और विहार)।

आहार

(Intake)

यह हमने पूर्व में चर्चा की है कि आहार में न केवल हम भोजन लेते हैं, बल्कि जल, वायु, सूर्य का प्रकाश/धूप इत्यादि भी आहार में सम्मिलित हैं। देखा जाये तो, हम शरीर की पांच इन्द्रियों के माध्यम से जो कुछ भी लेते हैं वे सभी हमारे आहार के अन्तर्गत आते हैं।

यहां हम केवल भोजन के सेवन के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

भोजन - भोजन शरीर के लिए उपयोगी हो इसके लिए भोजन सही गुणवत्ता और सही मात्रा में होना चाहिए।

भोजन में निम्नलिखित चार गुण होने चाहिए - पौष्टिक, सुपाच्य, उत्सर्जक/निष्कासक और स्वादिष्ट ये गुण होने चाहिए

पौष्टिक – भोजन शरीर का पोषण करने वाला होना चाहिए न कि इसे नुकसान पहुंचाने वाला।

पौष्टिक भोजन का एक उदाहरण है - संतुलित भोजन जिसमें कार्बोहाइड्रेट या 'ऊर्जा प्रदान करने वाले धान्य' (जैसे चावल/गेहूं इत्यादि जैसे अनाज), प्रोटीन या 'ऊतक/मांसपेशियों को बनाने वाले' पदार्थ (जैसे दालें), विटामिन युक्त खाद्य पदार्थ, शरीर के लिये शोधक खाद्य पदार्थ (जैसे फल और सब्जियां), 'हड्डियों को मजबूत करने वाले' (जैसे दूध और दूध के उत्पाद) और कम मात्रा में वसा युक्त पदार्थ सम्मिलित हैं।

हम इन सभी खाद्य पदार्थों को किस रूप में लेते हैं यह भी बहुत महत्वपूर्ण है। एक सामान्य नियम के रूप में, प्रकृति के सबसे निकट के रूप में खाए जाने वाले खाद्य पदार्थ (यानी कम प्रसंस्कृत/ कम संसाधित- प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ) शरीर के लिए सबसे अधिक पौष्टिक होते हैं क्योंकि वे विटामिन, खनिज आदि जैसे अधिकतम पोषक तत्वों को बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए – अनाज जैसे गेहूं –

दलिया या टूटा हुआ गेहूं' 'आटा' की तुलना में अधिक (>) पौष्टिक है।

इसी प्रकार दलिया, आटा,'सूजी, 'मैदा', (ये सभी एक ही अनाज से प्राप्त होते हैं लेकिन जब गेहूं को मैदा में परिवर्तित कर दिया जाता है तो इसमें कोई पोषण नहीं बचता, केवल स्वाद शेष होता है!

इसी तरह भूरा चावल सफेद चावल की तुलना में अधिक पौष्टिक है।

'दाल' - साबुत (बिना टूटी हुई) छिल्का के साथ वाली दाल बिना छिल्का वाली धुली दाल की तुलना में अधिक पौष्टिक होती हैं।

फल - इन्हें प्राकृतिक रूप में सेवन करना सबसे अच्छा है

सब्जियां - कम आंच पर ठीक से पकी सब्जियां (ज्यादा पकी नहीं) शरीर के लिए अधिक पौष्टिक हैं।

दूध – ए-2 दूध (अर्थात् देशी नस्ल के गाय का दुग्ध) शरीर के लिए पौष्टिक है जबकि अन्य नस्लों (ए-1) के दूध को हृदय रोग जैसी समस्याओं के कारण के रूप मे पाया गया है।

वसा – बीजों से प्राप्त तैल जो शीत-पीडन प्रक्रिया (कोल्ड प्रेसिङ्ग) से प्राप्त होते हैं, अपने पोषक तत्वों को बनाए रखते हैं जबकि 'रिफाइंड' तैल (जिन्हें रसायनों के द्वारा या जिनको अधिक गर्म करके निर्मित किया जाता) इनका उपयोग शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

मिष्ठान - इनका सेवन कम से कम करना चाहिए। यहां भी, कम संसाधित उत्तम है। इस प्रकार, मिठास के लिये परिष्कृत सफेद चीनी के स्थान पर गुड़/शहद/खजूर आदि का उपयोग किया जा सकता है।

सुपाच्य - भोजन के उपयोगी होने के लिए उसका शरीर में पाचन भी होना चाहिए -

जैसे 'उड़द' की दाल पचने में मुश्किल होती है जबकि 'मूंग' की दाल हल्की और पचने में आसान होती है। इसलिए कमजोर पाचन शक्ति वाला व्यक्ति उन खाद्य पदार्थों को पचा नहीं पाएगा जिन्हें पचाना कठिन है।

हम खाना कैसे बनाते हैं इसका असर उसकी पाचनशक्ति पर भी पड़ता है। विशिष्ट प्राकृत पाचक मसालों का प्रयोग भोजन निर्माण में करने से भारी और कठिनता से पचने वाले खाद्य पदार्थों को भी आसानी से पचने योग्य खाद्य पदार्थों में बदला जा सकता है। इसका उल्टा भी सच हो सकता है - खाना पकाने के कुछ तरीकों के कारण हल्के खाद्य पदार्थ भी भारी हो सकते हैं और पचने में मुश्किल हो सकते हैं, उदाहरणार्थ लौकी जैसे हल्के भोजन को तेल में तल कर पकाने से शरीर के लिए इसे पचाना कठिन हो जाएगा।

इस प्रकार, किसी की पाचन शक्ति के आधार पर सही प्रकार के भोजन का चयन करना और इसे पकाने की सही विधि का उपयोग करना भोजन को अधिक सुपाच्य बनाने में मदद करता है और इस प्रकार से निर्मित भोजन शरीर के लिए अधिक पौष्टिक होता है।

उत्सर्जन/निष्कासन योग्य - एक बार भोजन से आवश्यक तत्व शरीर द्वारा ग्रहण कर लिये जाने के बाद, अपशिष्ट पदार्थ (वह हिस्सा जिसकी शरीर को आवश्यकता नहीं है) को समय से शरीर से बाहर निकाल दिया जाना चाहिए।

यदि अपशिष्ट पदार्थ पूरी तरह से या समय पर (जल्दी से) उत्सर्जित नहीं होता है, तो यह हमारी आंतों में जमा हो जाता है और सूजन, पेट में भारीपन, उदर में वायु का सञ्चय, उदर पीडा आदि का कारण हो सकता है। यदि ऐसा बार-बार और लम्बे समय तक होता है तो समय बीतने के साथ-साथ यह अपशिष्ट पदार्थ और दूषित हो जाता है और इससे विषाक्त पदार्थों का निर्माण होता है जो शरीर में संचारित होते रहते हैं जिससे शरीर में सामंजस्य बिगड़ जाता है और अंततः स्थायी अस्वस्थता या व्याधि हो जाती है।

अत्यधिक प्रसंस्कृत और परिष्कृत खाद्य पदार्थ जो पूरी तरह से आहारीय रेशे (फाइबर) से रहित होते हैं (जैसे मैदे से बने खाद्य पदार्थ जैसे ब्रेड आदि) इनका सेवन स्वास्थ्य समस्याएं पैदा कर सकते हैं। यदि ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन किया जाता है, तो उनका अपशिष्ट आंतों की दीवारों से चिपक जाता है और आंतों से समय पर नीचे नहीं जाता है, जिससे उचित मल का त्याग नहीं होता है और मल बद्धता (constipation कान्स्टिपेशन) होता है। आंत की दीवारों से चिपका हुआ ऐसा अपशिष्ट पदार्थ वहीं रहता है और अंततः सड़ जाता है या विघटित हो जाता है और ऊपर बताए अनुसार स्वास्थ्य में व्यवधान उत्पन्न करता है।

आहारीय रेशे की कमी वाले खाद्य पदार्थों जो आसानी से उत्सर्जित नहीं होते हैं और मल बद्धता पैदा करते हैं - इनके उदाहरण :

• प्रसंस्कृत अनाज जैसे सफेद/परिष्कृत चावल, अत्यधिक प्रसंस्कृत गेहूं के आटे से बने खाद्य पदार्थ उदा। मैदे या गेहूँ की बारीक सूजी से बनी सफेद ब्रेड, नूडल्स, पास्ता आदि।

• तला हुआ, संग्रहित किये हुए या फास्ट फूड - आहारीय रेशे की कमी के अलावा, ये खाद्य पदार्थ प्रायः अस्वास्थ्यकर वसा, शर्करा या लवण से भरे होते हैं जो पाचन प्रक्रिया को मन्द कर देते हैं। चिप्स, केक, पेस्ट्री, संग्रहित किये हुए खाद्य पदार्थ आदि।

• मांस और सभी प्रकार के मांसाहारी खाद्य पदार्थ - इनमें शून्य फाइबर होता है।

• दूध, शरीर के लिए पौष्टिक होते हुए भी, इसमें फाइबर नहीं होता है और यदि पर्याप्त मात्रा में पानी, फल और सब्जियों का सेवन किए बिना अधिक मात्रा में लिया जाए, तो यह शरीर के लिए हानिकारक भी हो सकता है (मलबद्धता के अतिरिक्त इस प्रकार सेवन करने से रक्ताल्पता भी हो सकती है)।

• शराब - शराब न केवल हानिकारक है (यह शरीर को भी पोषण नहीं देती है), यह निर्जलीकरण (डिहाईड्रेशन dehydration) भी करती है और पाचन प्रक्रिया को धीमा कर सकती है तथा आंत्र मे बाधा उत्पन्न कर सकती है, जिससे मल बद्धता इत्यादि हो सकता है।

• कैफीन - कैफीन शरीर में निर्जलीकरण करता है इसलिए कॉफी, चाय, कोला आदि में उपस्थित कैफीन भी मल बद्धता पैदा कर सकता है।

• चॉकलेट - इसमें फाइबर की कमी होती है और इसे प्रायः अत्यधिक संसाधित किया जाता है, चॉकलेट में बड़ी मात्रा में प्रयुक्त वसा पाचन प्रक्रिया को बाधित कर सकता है जिससे मल बद्धता हो सकती है।

यद्यपि आहारीय रेशे (फाइबर) की कमी मल बद्धता का प्राथमिक कारण है, इसके साथ निम्न कारण भी हो सकते हैं –

- कम मात्रा में जल का सेवन,
- भोजन को पूरी तरह और ठीक से न चबाना,
- असमय मे भोजन ग्रहण करना (दैनिक दिनचर्या में देंखे) और
- असमय नींद (दैनिक दिनचर्या में वर्णित है)।

मल बद्धता को बहुत आसानी से और बिना दवा के उपाय करने के लिए, आप अधिक मात्रा में फाइबर युक्त सामग्री वाले खाद्य पदार्थों का सेवन शुरू कर सकते हैं, जैसे - सभी फल और सब्जियां।

तेल जो प्राकृतिक रूप से शीत पीडन प्रक्रिया द्वारा निकाले जाते हैं और ए-२ दूध से बना घी, इसमें बहुत अधिक वसा होता है, यह चिकना होता है और आंतों को चिकनाई देता है, सूखापन कम करता है और आंतों की गतिशीलता को बढ़ाता है जिससे अपशिष्ट पदार्थ को आसानी से बाहर निकालने में मदद मिलती है।

भोजन और पारंपरिक ज्ञान –
(Food And Traditional Knowledge)

खाद्य संयोजन (Food Combination)- कुछ खाद्य पदार्थों में शरीर के लिए आवश्यक अवयवों की कमी हो सकती है। पारंपरिक ज्ञान ने इसका उत्तर खाद्य पदार्थों के संयोजन के रूप में पाया - उदा। हम परंपरागत रूप से अनाज और दालों (जैसे चावल और दाल) का एक साथ उपभोग करते हैं - ऐसे संयोजन भोजन को एक संपूर्ण भोजन बनाते हैं क्योंकि एक भोजन में अमीनो एसिड की कमी की पूर्ति दूसरे में इन अमीनो एसिड की उपस्थिति से होती है। पारंपरिक ज्ञान के ऐसे कई उदाहरण हैं जिन्हें अभ्यास के रूप में अपनाया गया है जिनका हम आज भी पालन करते हैं, हालांकि हम उनके पीछे के तर्क और ज्ञान से सम्यक् रूप से अवगत नहीं हैं।

घी (Ghee)- यह पारंपरिक ज्ञान का एक और उदाहरण है। हालांकि हमने सुना है कि संतृप्त वसा (सेचुरेटेड फैट - saturated fat) स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है और घी संतृप्त वसा का एक रूप है (वसा जो समान तापमान में ठोस होता है), ए-२ दूध से बना घी अन्य संतृप्त वसा से भिन्न व्यवहार करता है। इसलिए जबकि अधिकांश संतृप्त वसा शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, घी एक संतृप्त वसा है जिस पर यह नियम लागू नहीं होता। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी अब यह स्वीकार लिया है कि घी सबसे अच्छे वसा वाले माध्यमों में से एक है जिसका उपयोग भोजन पकाने के लिए किया जा सकता है! इसका कारण यह है कि जहां अधिकांश तेल उच्च ताप पर रखने पर क्षतिग्रस्त और विकृत (शरीर के लिये हानिकारक) हो जाते हैं, यह समस्या घी के साथ उत्पन्न नहीं होती है, भले ही घी दही वाले दूध से निकाले गए मक्खन को गर्म करके बनाया जाता है क्योंकि घी का धूमांकन बिन्दु (स्मोक पाइन्ट -smoke point) बहुत अधिक होता है और इसलिए यह उच्च तापमान पर भी विकृत नहीं होता है। (इसलिए यह एक आदर्श आहार पाक का माध्यम स्वीकारा गया है)।

जड़ी-बूटियाँ और मसाले - मसालों के प्रयोग की भी बहुत निश्चित भूमिका है। खाना पकाते समय भोजन में कम मात्रा में पारंपरिक मसालों का प्रयोग केवल भोजन में स्वाद और सुगंध जोड़ने के लिए नहीं है; इन मसालों का चिकित्सीय महत्व भी है। 'गिलोय' की बेल शरीर की प्रतिरोधक क्षमता (immunity) को प्राकृतिक तरीके से बढ़ाने में मदद करती हैं जबकि 'धनिया' जैसे मसाले शरीर में पाचन प्रक्रिया में सहायता करते हैं ताकि खाद्य पदार्थों से पोषक तत्वों का अवशोषण और आत्मसात अधिक कुशल तरीके से हो सके। इसी तरह, 'हल्दी' में संक्रमण(परिमार्जन) रोधी (anti-infective) गुण है। हमारे द्वारा खाए जाने वाले भोजन में प्रयुक्त प्रत्येक मसाले की एक भूमिका है जबकि आज हम उनका बड़े पैमाने पर स्वाद के लिए उपयोग कर रहे हैं। इनके उपयोग के पीछे पारंपरिक ज्ञान के प्रति जागरूकता हमें शरीर में होने वाली छोटी-मोटी बीमारियों को ठीक करने में मदद कर सकती है और उनसे छुटकारा दिला सकती है।

और अब, शाकाहारी या मांसाहारी भोजन का सेवन करने के बारे में कुछ शब्द: (and now, few words related to consumption of vegetarian or Non vegetarian Food)

स्वास्थ्य के लिए कौन सा आहार उपयुक्त है, शाकाहारी भोजन या मांसाहारी भोजन? यह प्रश्न प्रायः सामने आता है और अंतहीन विवादों में परिणत होता है। जबकि हम सभी अपनी पसंद बनाने के लिए स्वतंत्र हैं, किन्तु कुछ बिन्दु ध्यान देने योग्य हैं - मानव का पाचन तंत्र (digestive system) शारीरिक और क्रियात्मक रूप से जानवरों की उत्पत्ति के खाद्य पदार्थों के बजाय पौधों पर आधारित खाद्य पदार्थों के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है जैसा कि हम निम्नलिखित तथ्य देख सकते हैं।:

• लार (saliva) में एमाइलेज की उपस्थिति। यह एक पाचक एंजाइम है जो मनुष्यों और शाकाहारी जीवों की लार में मौजूद होता है। भोजन के मुंह में प्रवेश करते ही लार एमाइलेज भोजन में कार्बोहाइड्रेट पर कार्य करना शुरू कर देता है और हम जानते है कि वनस्पति आधारित खाद्य पदार्थ निश्चित रूप से जटिल कार्बोहाइड्रेट से भरपूर होते हैं। इसके विपरीत, पशु मूल के खाद्य पदार्थ ज्यादातर मांसल और प्रोटीन युक्त होते हैं और इनमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक नहीं होती है। तो मुंह में लार एमाइलेज की उपस्थिति कार्बोहाइड्रेट से भरपूर खाद्य पदार्थों के लिए शरीर के प्राकृतिक संरचना का एक संकेतक है।

• लम्बी और घुमावदार आंतें - मानव पाचन तंत्र लम्बी और घुमावदार आंतों से सुसज्जित है जैसे कि शाकाहारी जानवरों में पाया जाता है - यह पौधों पर आधारित खाद्य पदार्थों के लिए अच्छी तरह से काम करता है जो आहारीय रेशों (फाइबर) से भरपूर होते हैं - भोजन की फाइबर सामग्री अपचनीय होती है और अपशिष्ट पदार्थ का हिस्सा बनाती है, यह लम्बे पाचन तंत्र के माध्यम से अपशिष्ट पदार्थ को नीचे ले जाने के लिए अर्थात् निष्कासन में मदद करती है । इसके विपरीत, मांसाहारी जानवर जो बिना रेशे वाले पशु मूल के खाद्य पदार्थों पर जीवित रहते हैं, संरचना के अनुसार उनकी आंतें बहुत छोटी होती हैं –

इससे ये सुनिश्चित होता है कि इन खाद्य पदार्थों का अपशिष्ट पशु की आंत में अधिक समय तक नहीं रहता है। अगर उनकी आंतें मनुष्य या अन्य शाकाहारी जानवरों की तरह लम्बी होतीं, तो अपशिष्ट शरीर में अधिक समय तक रहता और इस तरह दूषित हो जाता, जिससे स्वास्थ्य खराब होता।

• छोटे कैनाइन दांत होना (मांसाहारी प्राणियों की तुलना में), पेट का पीएच मांसाहारियों कि तुलना में उनसे कम होना और ऐसी कई शारीरिक रचना और क्रियात्मक विशेषताओं से संकेत मिलता है कि मानव शरीर को पौधों/वनस्पतियों पर आधारित खाद्य पदार्थों के लिए रचित किया गया है।

उपरोक्त विशेषताओं के अलावा, यह एक सर्वविदित तथ्य है कि शाकाहारी भोजन पशु मूल के खाद्य पदार्थों की तुलना में उनके शून्य कोलेस्ट्रॉल और उच्च फाइबर सामग्री के कारण स्वास्थ्यवर्धक होता है।

याद रखने वाली एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि वयस्क मानव शरीर को बहुत कम प्रोटीन (शरीर के वजन का मात्र 0.5 ग्राम/किलोग्राम) की आवश्यकता होती है, जो कि पौधों पर आधारित खाद्य पदार्थों द्वारा (जैसे कि दाल) आसानी से और पर्याप्त रूप से मिल सकता है। कुछ दालों मे जैसे 'राजमा', 'काले चने', 'सफेद चने', लोबिया, 'साबुत मूंग' आदि में अंडे की तुलना अधिक मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होता है!)।

इसलिए यदि हम मांसाहारी खाद्य पदार्थों का सेवन करने का चयन करते हैं तो हमें इस जागरूकता के साथ ऐसा करने की आवश्यकता है कि हम शायद उनका सेवन बड़े पैमाने पर स्वाद के लिए कर रहे हैं न कि शरीर की पोषण के आवश्यकता को पूरा करने के लिए।

रूचि / स्वाद बढ़ाने वाले रसायन

स्वाद बढ़ाने वाले रसायन प्रायः रंगहीन, गंधहीन, सस्ते पाउडर या तरल पदार्थ होते हैं जिन्हें बहुत ही कम मात्रा में खाद्य पदार्थों में मिलाया जाता है ताकि भोजन के प्रति रूचि और स्वाद

को बढ़ाया जा सके। खाद्य पदार्थों में मिलाये जाने, अल्प मूल्य और पहचानने में मुश्किल होने के कारण, रसोइयों और खाद्य निर्माताओं के लिए इन स्वाद बढ़ाने वाले रसायनों के साथ वास्तविक सामग्री को बदलना बहुत आसान और लाभदायक है।अनेक देशों द्वारा ऐसे कई स्वाद बढ़ाने वाले पदार्थों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है क्योंकि वे शरीर में गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं के उत्पत्ति का कारण पाए गए हैं।

इस तरह के स्वाद बढ़ाने वाले रसायनों के सेवन से कुछ लोगों में असामान्य संवेदनशीलता या एलर्जी और यहां तक कि विशेष खाद्य पदार्थों की लत और लालसा भी पैदा होती है। मोनो सोडियम ग्लूटामेट (एमएसजी) आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले स्वाद बढ़ाने वाले रसायनिक द्रव्यों का एक उदाहरण है जिसका उपयोग अक्सर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और यहां तक कि कई छोटे रेस्तरां और खाद्य व्यवसायों में भी किया जाता है।अनुसंधानों द्वारा न केवल जानवरों के लिए बल्कि मनुष्यों के लिए भी (एमएसजी) विषाक्त साबित हुआ है। शायद ऐसी सामग्री के सेवन से बचने का एकमात्र उपाय है संरक्षित तथा बाहर के भोजन को पूरी तरह से बन्द कर देना।

हमारे द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भोजन की मात्रा कितनी होनी चाहिए?

सेवन करने के लिए भोजन की मात्रा का मुख्य नियम: जब व्यक्ति को अभी भी थोड़ी भूख शेष हो तो भोजन का ग्रहण करना बंद कर देना चाहिए और जब तक कि पेट पूरी तरह से भर न जाए तब तक भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सलाह दी जाती है कि पेट की कुल क्षमता का आधा भाग ठोस भोजन से भरा होना चाहिए, एक चौथाई तरल से भरा होना चाहिए और वायु आदि के लिए एक चौथाई भाग छोड़ दिया जाना चाहिए। आसान पाचन सुनिश्चित करने के लिए आहार ग्रहण करने की सामान्य रूप से यह योजना हो सकती है कि आहार में ठोस और तरल दोनों खाद्य पदार्थों को शामिल करें और तब खाना बंद कर दें जब पेट में थोड़ा और भोजन करने के लिए अभी भी कुछ जगह बची हो।

दिनचर्या

(Daily Upkeep)

सूर्योदय से पहले उठना

आपको शायद याद आता हो कि बचपन में आपकी माँ या दादी आपसे सुबह जल्दी जागने का आग्रह करती हैं। आपने यह कथन भी सुना होगा कि 'जल्दी सोने और जल्दी उठने से मनुष्य स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनता है'?

क्या जल्दी उठने का यथार्थ में कोई लाभ है?

क्या आपने कभी गौर किया है कि जैसे ही प्रातः सूर्य उदय होता है, पेड़ों और पौधों के पत्ते 'खुलने लगते हैं और सूरज ढलने पर बंद हो जाते हैं; कि पक्षी सूर्य उदय होने से पहले ही जाग जाते हैं और भोर होने पर चहकने लगते हैं। वास्तव में, यदि आप चारों ओर देखें, तो पायेंगे कि आपके आस-पास, मानव को छोड़ प्रकृति की हर इकाई दिन या रात के किसी विशेष समय पर एक निश्चित तरीके से व्यवहार करती है। आपके शरीर में भी दिन के अलग-अलग समय पर, सूर्य की गर्मी के समयऔर रात के अंधेरे में अलग-अलग तरह की क्रियायें चलती है क्योंकि मानव शरीर प्रकृति की एक भौतिक (जड़) इकाई है जो प्रकृति के भौतिक नियमों का पालन करती है।

आइए जानते हैं सुबह जल्दी (सूर्योदय से पहले)उठने के लाभों के बारे में। केवल हमारी कही गयी बात को ही न स्वीकारें , बल्कि कुछ दिन स्वयं इसका प्रयास करें और प्रयोग कर, अपने निष्कर्ष पर स्वयं पहुँचे | सूर्योदय से पहले उठने के लाभ:

1. आप ऊर्जायुक्त और सतर्क जागते हैं (यदि आप पिछली रात समय पर और अच्छी तरह सोये तभी) (नींद के बारे में अधिक जानकारी के लिए आगे 'निद्रा' देखें) लगातार दो या तीन दिनों के लिए प्रातः जल्दी उठने का प्रयास करें (यह सुनिश्चित करें कि आप पिछली रात को जल्दी सो जायें)। क्या आप कुछ परिवर्तन अनुभव कर रहे हैं ? आप पायेंगे कि जब आप जल्दी उठते हैं, तो आप ऊर्जावान और सतर्क रहते हैं जबकि जब आप देर से सोकर उठते हैं तो आप सुस्त, आलस्य पूर्ण और थका हुआ अनुभव करते हैं।

2. आपको सरलता से एवं पूर्ण मलप्रवृत्ति हो जाती है (साथ ही अन्य सभी प्राकृतिक वेगों का निष्कासन भी) एक बार जब आप जल्दी उठना और जल्दी मल त्याग करना शुरू कर देते हैं, तो आप यह देख पाएंगे कि आप कितना अधिक हल्का और सक्रिय महसूस करते हैं। आप उन दिनों से शीघ्र परिवर्तन को भी देख पाएंगे जब आपको जल्दी मल त्याग नहीं होता था और आप भारीपन, सुस्त और थका हुआ अनुभव करते थे। प्रकृति भी दिन में पहले मल त्याग करने का समर्थन करती है – सूर्योदय पूर्व; प्रातः 5 से 6 के मध्य, सहज रूप से, आंतों में रक्त परिसंचरण बढ़ जाता है और इससे व्यक्ति को आसान और पूर्ण मल त्याग करने में सहायता मिलती है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया में सहायता करने के लिए आप उस समय एक लीटर तक उष्ण जल का सेवन भी कर सकते हैं।

3. आप दिन भर अधिक सतर्क और सक्रिय रहते हैं। सुबह जल्दी उठने पर आप जो सतर्कता और
   प्रफुल्लता का अनुभव करते हैं, वह पूरे दिन के लिए आपके साथ बनी रहती है, जिससे आप अधिक
   सक्रिय या क्रियाशील हो जाते हैं और ऐसा होने से दिन के अन्त तक भी कम थकान का अनुभव करते हैं।

4. बिलकुल शान्त और शान्तिपूर्ण समय - आत्मनिरीक्षण करने के लिए और अध्ययन के लिए भी यह आदर्श समय है। यदि आपको देर रात तक पढ़ने का अभ्यास है, तो हो सकता है आपको लगता हो कि वही एकमात्र समय है जब आप बिना किसी बाधा के अध्ययन करने में सक्षम होते हैं। लेकिन, यदि आप प्रातः काल में अध्ययन करने का प्रयत्न करें तो शायद आप अनुभव करें कि इस समय न केवल आप अबाधित हैं (क्योंकि अधिकांश लोग इस समय नींद में होते हैं) बल्कि यह भी कि आप जो पढ़ते हैं उसे शीघ्रता से और बेहतर तरीके से समझते हैं और स्मृति में बनाए रखते हैं। दिन के इस समय को उत्तम एकाग्रता और स्मरण शक्ति से जोड़ा गया है। साथ ही, यह आपका अपना समय है - दिन की योजना बनाने, अध्ययन करने, ध्यान करने, चिंतन करने और आत्मनिरीक्षण करने का समय। इस समय का सुखद वातावरण और शांत वायु ऐसे अभ्यास के लिए अत्यन्त अनुकूल है। ऐसा अभ्यास आपको अपने दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों से सरलता से निपटने में सहायता करता है – ऐसी परिस्थितियां जो कदाचित् वर्तमान में आपके भीतर तनाव का कारण बनी हुई हैं।

5. प्रातःकाल जल्दी जागने से शरीर की आंतरिक क्रियात्मकताओं का समकालन होता है (सर्कैडियन लय Circadian Rhythm- दिन और रात की प्राकृतिक लय के साथ समन्वयन होता है)
    a. जब आप हर दिन सूर्योदय पूर्व उठते हैं, तो आपका शरीर प्राकृतिक दिन और रात की लय के साथ तालमेल बिठाने लगता है। यह दिन के दौरान सक्रिय रहने में मदद करता है, रात में जब मनुष्य थक जाता है तो रात में बेहतर नींद लाता है। जब शरीर इस प्रकार प्राकृतिक दिन और रात की लय से जुड़ा होता है, तो शरीर की सभी प्रक्रियाएं जैसे पाचन, उत्सर्जन/उन्मूलन, पुनर्जनन(regeneration) आदि सुचारू रूप से और कुशलता से चलती हैं।
6. शरीर का उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन काल
    a. जब शरीर की सभी प्रक्रियाएं इस प्रकार अधिक कुशलता से कार्य करती हैं, तो इसका एक स्वाभाविक परिणाम बेहतर स्वास्थ्य और दीर्घायु होता है।
7. सम्यक मानसिक स्वास्थ्य
    a. प्रातः जल्दी उठना, शरीर के स्वास्थ्य पर इन सभी लाभकारी प्रभावों के अलावा, व्यक्ति के मन/मानसिक स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है। यह आपकी दिनचर्या का पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम है जो आपकी ऊर्जा को अनुकूलित करने में आपकी सहायता कर सकता है और इस प्रकार आपकी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को अधिकतम बना सकता है।
    b. यथार्थ में, यदि आप जल्दी सोने और दिन में न सोने को अपनी दिनचर्या में सम्मिलित कर लेते हैं, तो आप पाएंगे कि आप स्वाभाविक रूप से सुबह जल्दी उठते हैं और न केवल अच्छी तरह से विश्राम प्राप्त करते हैं बल्कि घड़ियों या मोबाइल फोन के अलार्म के बिना भी स्वयं प्रातः जाग जाते हैं।

शोधन प्रक्रियाएं

मानव शरीर में प्राकृतिक प्रक्रियाएं होती हैं जो इसे शुद्ध करती हैं। ये शोधक प्रक्रियाएं शरीर के प्राकृतिक स्व-संगठन (self-organisation) का एक भाग हैं। अगर हम इन शोधक प्रक्रियाओं को समझते हैं और उनकी सहायता (सहभागिता) करते हैं, तो यह शरीर के सामंजस्य को बने रखने में मदद करता है। जब हम इन प्रक्रियाओं को नहीं समझते हैं और इनका उल्लंघन या विरोध करते रहते हैं, तो शरीर में असामंजस्य आ जाता है। शरीर में स्वाभाविक रूप से होने वाली शोधन की कुछ प्रक्रियाएं नीचे दी गई हैं और हम इसमें शरीर की सहायता कर सकते हैं। यहाँ हम केवल पहली प्रक्रिया पर चर्चा करेंगे –

- आंतों का शोधन
- मौखिक गुहा का शोधन
- नासिका का शोधन
- नेत्रों का शोधन
- पूर्ण शरीर का शोधन – स्नान

आंतों का शोधन

हर सुबह, जागने के बाद, शरीर के प्राकृतिक वेगों पर ध्यान देने का समय होता है जैसे मल त्याग करने की इच्छा, पेशाब करने की इच्छा आदि।

मल त्याग का वेग :

पाचन क्रिया मुंह से शुरू होकर पेट से होते हुये छोटी आंत में समाप्त होती है, भोजन के पचने के बाद भोजन से पोषण छोटी आंत में अवशोषित (absorb) होता है। जब तक 'भोजन' छोटी आंत से बाहर निकलता है, तब तक अधिकांश पाचन और अवशोषण का कार्य पूरा हो जाता है। इस प्रक्रिया से जाने के बाद जो कुछ बचता है वह शरीर के लिये भोजन नहीं होता है। यह आगे चलकर छोटी आंत से बड़ी आंत में चला जाता है। यहां बड़ी आंत में, शरीर के लिए आवश्यक पानी और इलेक्ट्रोलाइट्स (लवण) इस शेष पदार्थ से अवशोषित होते हैं और जो कुछ भी अपचनीय होता है वह जीवाणुओं बैक्टीरिया द्वारा किण्वित होता है। अब जो बचता है वह अपशिष्ट पदार्थ (मल) है जिसका शरीर के लिए कोई उपयोग नहीं है। इस प्रकार से यह बड़ी आंत या बृहदान्त्र(colon) में होता है कि मल बनता है और संग्रहीत होता है।

वृहदान्त्र की मांसपेशियों मे तरंगों (पेरिस्टलसिस) की उत्पत्ति होने से वे सिकुड़ती और फैलती हैं, इस गति के कारण मल नीचे मलाशय (rectum) की ओर जाता हैं। जब पर्याप्त मल मलाशय में चला जाता है, तो यह मलाशय की दीवारों में खिंचाव उत्पन्न करता है और इससे मल त्याग करने की इच्छा होती है। एक बार जब यह वेग उठता है, तो व्यक्ति इच्छानुसार इस पर कार्य कर सकता है-उचित स्थान (शौचालय) में जाकर स्वेच्छा से किञ्चित् दबाव डालकर मलाशय में संचित मल को गुदा(anus) के माध्यम से बाहर निकाल सकता है।

मल त्याग करने का सही समय- सूर्योदय पूर्व, जागने के तुरंत बाद होता है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि यही प्राकृतिक है। और इसके अनेक लाभ हैं जो नीचे सूचीबद्ध हैं।

विज्ञान से यह तो स्पष्ट हुआ है कि सुबह उठने पर आन्त्र संकुचन/पेरिस्टलसिस की गतिविधि सामान्य से बढ़ जाती है। यह मल त्याग करने की प्रक्रिया में सहायता करता है। हालाँकि विज्ञान के पास अभी तक इस बात का पूरा ज्ञान नहीं है कि सुबह उठने पर आन्त्र में बढ़ी हुई गतिविधि क्यों और कैसे होती है, इसे शरीर की अन्य प्रक्रियाओं में से एक माना जा सकता है जो शरीर के स्व-संगठन/स्व-नियमन को दर्शाती है।

इस प्रकार, प्रातः जल्दी उठने के तुरंत बाद दिन में एक बार मल त्याग करना आदर्श माना जाता है, लेकिन दिन में दो बार मल त्याग करना (एक सुबह और एक शाम को) भी सामान्य ही माना जाता है।

नियमित और समय पर मल त्याग के लाभ:

नियमित मल त्याग करना एक स्वस्थ पाचन तन्त्र का संकेत है। इसके कई लाभ हैं:

1. मल की सम्यक् प्रवृत्ति

प्रातःकाल मल की सम्यक् प्रवृत्ति होने में दो प्रक्रियाएं स्वाभाविक रूप से इसकी सहायता करती है:

a. सुबह उठने के तुरंत बाद आन्त्र में मांसपेशियों (पेरिस्टलसिस) की बढ़ी हुई लयबद्ध गति

b. सुबह-सुबह बड़ी आंतों में रक्त परिसंचरण (circulation) में प्राकृतिक वृद्धि

यदि कोई प्रातःकाल मल त्याग न कर दिन में देर तक प्रतीक्षा करता है, तो उसे इन दो प्रक्रियाओं की सहायता के बिना मल त्याग करना पड़ता है। इसके अलावा, चूँकि बड़ी आंत में एकत्रित मल से पानी अवशोषित हो जाता है, मल सूख जाता है (याद रखें कि दिन बढ़ने के साथ उष्णता की वृद्धि सिर्फ बाहर नहीं बल्कि शरीर में भी होती है)। इस वजह से, शुष्क मल कड़ा हो जाता है और सरलता से इसका त्याग नहीं हो पाता - ऐसा होने पर इसका निष्कासन पूर्ण रूप से नही हो पाता है।

2. कब्जियत की समस्या का निवारण या उसमें अल्पता

यदि व्यक्ति को सुबह नियमित रूप से मल त्याग करने का अभ्यास हो जाता है, तो उसे मल बद्धता होने की संभावना बहुत अल्प होती है (मल प्रवृत्ति में कठिनाई प्रायः मल के कड़ा होने से जुड़ी है)।

इसके विपरीत, मल के निष्कासन में अनियमितता और असमय निष्कासन का प्रयास (अर्थात् जब मल त्याग का वेग उपस्थित न हो) इससे मल कड़ा हो जाता है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कि मल की सम्यक् प्रवृत्ति न होने से बृहदान्त्र (colon) में मल संचित हो जाता है। यदि ऐसा बार-बार होता है, तो अन्ततोगत्वा यह उच्च रक्तचाप (high blood pressure) जैसी समस्याओं को जन्म देता है जैसा कि नीचे चर्चा की गई है।

3. 'जीवनशैली संबंधी विकारों' (lifestyle disorders) की अल्पता (जैसे उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि)

क्या आपने कभी ध्यान दिया है कि दिन में तेज धूप में बाहर रहने पर भोजन (जैसे फल/सब्जियां) का क्या हाल होता है? आप देखेंगे कि यह शुष्क हो जाते हैं - जैसे कि इसमें से द्रव का शोषण हो गया हो और ऐसा लगता है कि यह सिकुड़ कर अपनी ताजगी खो देता है।

आपके शरीर के अंदर का वातावरण बी इससे ज्यादा भिन्न नहीं है - आंतों के अंदर का वातावरण न केवल उष्ण बल्कि उष्ण और आर्द्र (humid) है। ऐसे उष्ण तथा आर्द्रता वाले वातावरण में चीजें आसानी से सड़ जाती हैं।

इसी तरह , अपशिष्ट पदार्थ, यदि समय पर शरीर से बाहर नहीं निकाला जाता है, तो सड़ने लगता है और यह आन्त्र में जितने अधिक समय तक रहता है, इस अपशिष्ट पदार्थ से विषाक्त पदार्थों के रक्त प्रवाह में पुन: प्रसारित होने की संभावना बनी रहती है। यह उच्च रक्तचाप और हृदय संबंधी बीमारियों से संबन्धित है (मल त्याग की आवृत्ति उच्च रक्तचाप और हृदय मृत्यु दर के प्रसार के साथ विपरीत रूप से जुड़ी हुई है)।

मल त्याग करने में कितना समय लगना चाहिए?

मल त्याग करने के लिए आपको शौचालय में 5-7 मिनट से अधिक बिताने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यदि मल त्याग करने में अधिक समय लग रहा हो, तो जांच लें कि क्या आप नीचे दिए गए मल त्याग को नियमित करने के लिए सभी कार्य कर रहे हैं या नहीं।

आप अपने मल त्याग को नियमित करने के लिए क्या कर सकते हैं?:

यदि आप पाते हैं कि आप शौचालय में अधिक समय व्यतीत कर रहे हैं या मल त्याग करने के प्रयास में तनाव के बिना सरलता से मल त्याग करने में सक्षम नहीं हैं, तो प्रक्रिया को सरल बनाने के निम्नलिखित सुझावों में से कुछ प्रयास करें जो इसमें सहायक होंगे:

1. आहारीय रेशे (फाइबर) युक्त खाद्य पदार्थों का सेवन

फाइबर से भरपूर खाद्य पदार्थों का सेवन करें (साबुत अनाज, फल और सब्जियां) । मैदा, बेकरी के सामान, बहुत महीन पिसा हुआ अनाज या दालें आदि तथा भारी (देर से पचने वाला) प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों से बचें। ये आंतों की दीवारों से चिपक जाते हैं और शरीर द्वारा आसानी से उत्सर्जित नहीं होते हैं।

2. पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन

दिन में पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करें – प्रयास करें कि दिन के पहले भाग में ज्यादा मात्रा में जल का सेवन करें। यह आपके द्वारा ग्रहण किये गए भोजन के पाचन में मदद करता है और आंतों में अवशेषों को आसानी से नीचे की ओर जाने में भी सहायता करता है।

भोजन से ठीक पहले या बाद में बहुत अधिक पानी पीने से बचें क्योंकि यह पाचक रस को पतला कर देता है, जिससे पाचन की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।

3. सूर्योदय पूर्व जागने के तुरंत बाद एक या दो गिलास उष्ण जल का सेवन करें

जब आप ऐसा करते हैं, तो आप प्रातः काल में मल त्याग करने के लिए शरीर की प्राकृतिक प्रवृत्ति की सहायता करते हैं - गर्म पानी आंतों में होने वाली क्रमिक गति को बढ़ने में मदद करता है।

4. अपने शयन -जागरण के चक्र को नियमित करें

जब आप नींद में होते हैं, तो भी छोटी और बड़ी आंतें मिलकर काम करती रहती हैं और पिछले दिन के शेष भोजन को संसाधित करती हैं, जिससे कि जागने के लगभग आधे घण्टे पश्चात् हि आपको मल त्याग करने की इच्छा उत्पन्न होती है। यदि आप रात का भोजन जल्दी (लगभग सात बजे तक) कर लें और लगभग दस बजे तक सो जायें तो आप शरीर को इसे सुगमता पूर्वक करने में सहायता कर सकते हैं।

नींद की गड़बड़ी शरीर के आंतरिक क्रियाचक्र को बाधित करती है और आन्त्र की गतिविधि में हस्तक्षेप करती है जो सामान्यतया सूर्योदय पूर्व जागने के शीघ्र बाद उत्पन्न होती है। इसलिए प्रातः जल्दी उठें और समय पर (रात दस बजे से) अच्छी नींद लें। जब आप ऐसा करेंगे , तो पाएंगे कि आपको स्वाभाविक रूप से सुबह उठने के तुरंत बाद मल त्याग करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

देर रात में भोजन ग्रहण करने और देर रात तक जगने से बचें - इससे न केवल जल्दी उठना मुश्किल हो जाता है क्योंकि आप पूरी तरह से आराम नहीं कर पाते हैं बल्कि यह पूरे शयन-जागरण के चक्र को और इससे जुड़ी सभी शारीरिक प्रक्रियाओं को भी बाधित करता है (इसमें मल त्याग की प्रक्रिया भी सम्मिलित है)।

5. व्यायाम को अपनी दिनचर्या में सम्मिलित करें

आँतों की क्रिया को नियमित करने में दैनिक व्यायाम अत्यन्त लाभकारी होता है। यदि आप प्रकृति के साथ कार्य करने में सक्षम हैं (जैसे बागवानी, पेड़ लगाना, कृषि कार्य आदि) तो आप इसे बहुत उपयोगी पाएंगे। इसके साथ साथ आप कुछ सरल व्यायाम, योग या पैदल चलना, दौड़ना, टहलना आदि भी कर सकते हैं।

6. भारतीय शैली के शौचालय का उपयोग करने का प्रयास करें

भारतीय शैली के शौचालय का उपयोग करने में मल त्याग करते समय एड़ी पर बैठना होता है। इस स्थिति में, घुटने कूल्हों (hips) की तुलना में उच्च स्तर पर होते हैं और इससे (पश्चिमी शैली के शौचालय पर बैठने की तुलना में) कूल्हे के जोड़ पर अधिक कोण बनता है। यह मलाशय-गुदा मार्ग को एक सीधी रेखा में लेकर आता है जिससे कि बिना कष्ट के मल त्याग करना आसान हो जाता है। इसलिए मल त्याग करने के लिये भारतीय शैली के शौचालय में बैठना उत्तम है।

यदि आपके पास यह विकल्प नहीं है और आपको पश्चिमी शैली के शौचालय पर बैठने की आवश्यकता है, तो आप शौचालय पर बैठकर अपने पैरों को ~ २०-३० सेमी (८ से १० इंच) ऊँची चौकी पर रख सकते हैं। यह कूल्हे पर आकुञ्चन के कोण को बढ़ाता है और शरीर को मलत्याग में बैठने की आदर्श स्थिति के समीप की स्थिति में लेकर आता है। आप आगे झुक भी सकते हैं और अपने टखनों को पकड़ सकते हैं। इस स्थिति में बिना कष्ट के पेट के दबाव में स्वाभाविक वृद्धि होती है, जिससे मलत्याग की प्रक्रिया सुगम होती है।

7. जब आपको मल त्याग करने की इच्छा हो, तो उसे रोकें नहीं

मल त्याग करने की इच्छा को अनदेखा करना या बल पूर्वक रोकना मल बद्धता और अनियमित मल त्याग के मुख्य कारणों में से एक है (नीचे देखें 'यदि आप मल त्याग करने की इच्छा को दबाते हैं तो क्या होता है')।

8. यहां भी ध्यान देना जरूरी है! शौचालय में किताबें, मैगजीन आदि रखने से बचें

इससे आप शौचालय में बहुत समय व्यतीत करते हैं, जिसका कोई लाभ नहीं होता - पठन सामग्री मन को विचलित करती है और आपके ध्यान को मुख्य कार्य से हटा देती है, इस प्रकार मलत्याग की प्रक्रिया में हस्तक्षेप और बाधा उत्पन्न होती है।

मल त्याग के पश्चात् स्वच्छता:

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक बार मूत्र या मल त्याग करने की स्वाभाविक इच्छा का समाधान हो जाने के उपरान्त, स्वच्छता बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए मल-मूत्र के मार्ग और हाथों को अच्छी तरह से धो लें।

यदि आप मल त्याग करने की इच्छा को बलपूर्वक रोक दें तो क्या होगा?

यदि कोई स्वेच्छा से मल त्याग करने की इच्छा को रोकने का प्रयास करता है, तो वह ऐसा कर सकता है। और यह एक असुविधापूर्ण स्थिति में करना स्वाभाविक है (उदाहरण के लिए जब आपके लिए कोई शौचालय उपलब्ध नहीं है) लेकिन इसकी आदत न बनायें- ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि-

जब मल की एक निश्चित मात्रा मलाशय में पहुँचती है, तब आपको मल त्याग करने की इच्छा उत्पन्न होती है। यदि आप इस उत्पन्न वेग को दबाते हैं, तो विपरीत आन्त्र गति (रिवर्स पेरिस्टलसिस) द्वारा मल को मलाशय से बृहदान्त्र तक वापस धकेल दिया जाता है। यह मल अब बृहदान्त्र में तब तक रहेगा जब तक कि अगली बड़ी तरंग इसे फिर से मलाशय में नीचे ले जाने का प्रयास न करे। जबकि मल बृहदान्त्र में संचित रहता है, उसमें से द्रव पुनः अवशोषित होता है जिससे कि मल शुष्क और कड़ा हो जाता है।

इस स्थिति में जब मल त्याग करने का प्रयास किया जाता है तो यह कड़ा और सूखा मल कठिनाई उत्पन्न करता है और यदि मल त्याग करने की इच्छा को बार-बार रोक दिया जाता है, तो व्यक्ति को आभ्यासिक कब्ज़ हो जाता है।

मल बद्धता के साथ-साथ अन्य संबंधित समस्याएं भी आती हैं, उदाहरणार्थ- परिकर्तिका या fissure का बनना (गुद मार्ग की कोमल त्वचा का कठोर मल के कारण फटना या विदीर्ण हो जाना) जिसके परिणामस्वरूप पीडा होती है और मल में रक्त का प्रवाह होता है। जब आप मल त्याग करने का प्रयास करते हैं तो मल बद्धता के कारण दबाव देने की प्रवृत्ति बन जाती है जिसके परिणामस्वरूप गुदा के आसपास की शिराओं (veins) में सूजन ('बवासीर' या 'अर्श व्याधि' या piles) की शिकायत रहती है। इससे पीडा और रक्तस्राव होता है।

लगातार मल बद्धता और बृहदान्त्र में मल की रुकावट के कारण मूत्राशय में भी मूत्र का संग्रह और मूत्र त्याग करने में कठिनाई हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप मूत्र पथ में संक्रमण(परिमार्जन) - infection हो सकता है।
एक और आम समस्या जो हो सकती है लेकिन जिसके बारे में सामान्यतः किसी को पता नहीं चल पाता है कि मल त्याग करने की इच्छा को बार-बार रोकने से मलाशय, मल के संग्रह के प्रति कम संवेदनशील हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि मलाशय से यह संकेत कि 'मल निष्कासन' का समय हो गया है, तब तक हम समझ नहीं पाते जब तक कि बहुत अधिक मात्रा में मल संचित नहीं हो जाता है, जिससे स्वास्थ्य समस्या होती है।यह स्थिति और भी कष्टप्रद है।
इन सभी समस्याओं का निराकरण केवल शरीर के संकेतों पर अपना ध्यान देकर (जैसे वर्तमान विषय में, मल त्याग करने की इच्छा होने पर) उन पर समयानुरूप कार्य करना और यदि आपको ऐसा करने पर पूर्ण सफलता नहीं मिलती है, तो यह सुनिश्चित करें कि आप शारीरिक संकेतों का ध्यान रख रहे हैं और साथ ही ऊपर सूचीबद्ध आठ चरणों का समुचित पालन कर रहे हैं। ऐसा करने से औषध के प्रयोग के बिना ही आपकी आंतों की क्रियात्मकता और मलत्याग की प्रक्रिया को नियमित करने में निश्चित रूप से सहायता मिलती है।

दिनचर्या के संबंध में भोजन की अनुशंसायें

भोजन के सेवन पर पहले की चर्चा में, यह कहा गया था कि हम जो भोजन करते हैं वह शरीर के लिए पौष्टिक और पोषण करने वाला होना चाहिए, सुपाच्य होना चाहिए और शरीर द्वारा आसानी से उत्सर्जित होना चाहिए।
हमें दिन और रात के चक्र के संबंध में भोजन के समय पर भी विचार करने की आवश्यकता है (उदाहरण के लिए एक दिन में कितनी बार भोजन करना है, भोजन करने का सही समय, दो भोजन के बीच में कितना अन्तराल होना चाहिए आदि)। हमारे द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भोजन की मात्रा को भी देखें (कब बड़ी मात्रा में भोजन लेना ठीक है और कब अल्प मात्रा में भोजन लेना ज्यादा उचित है) तथा भोजन के चयन की उपयुक्तता को देखें (जैसे दिन के किस समय कौन से खाद्य पदार्थ को ग्रहण करें आदि)।

दिन-रात के चक्र के संबंध में भोजन का समय:

भोजन के बीच 4 से 8 घंटे (कम से कम 4 घण्टे) का अन्तराल बनाए रखें क्योंकि भोजन को आमाशय (पेट) में पचने के लिये और फिर वहाँ से नीचे आंतों की ओर आने में लगभग ४ घण्टे लगते हैं। ग्रहण किये गये भोजन से शरीर को तभी लाभ होगा जब पिछला किया गया भोजन ठीक से और पूरी तरह से पच गया हो। अगर हम पिछले भोजन के पूरी तरह से पचने से पहले खाते हैं, तो इसके परिणामस्वरूप भोजन का पाचन नहीं होगा और हम आध्मान (उदर में वायु का सञ्चय), गैस और अम्लता (एसिडिटी) के शिकार हो जायेंगे।
युवा वयस्कों (जो बीस से तीस वर्ष तक के हों) तथा किशोरों के लिए, विशेष रूप से जो अधिक शारीरिक कार्य करने हों या जो शारीरिक रूप से बहुत सक्रिय हैं, उनके लिये सामान्यतया एक दिन में तीन वार भोजन की आवश्यकता होती है; किन्तु उन लोगों के लिए जो थोड़े अधिक आयु के हैं (~ 30-35 वर्ष से अधिक) या जो शारीरिक रूप से अधिक सक्रिय नहीं हैं और एक शारीरिक श्रम रहित जीवन शैली व्यतीत कर रहे हैं, उनके लिए एक दिन में दो बार भोजन ग्रहण करना पर्याप्त हो सकता है।

दिन में तीन समय भोजन के लिए पारंपरिक ज्ञान निम्नलिखित आदर्श भोजन समय सुझाता है:
नाश्ता - सुबह ७ से ८ बजे तक (अधिकतम सुबह ९ बजे तक)
दोपहर का भोजन - दोपहर १२ बजे से दोपहर १ बजे तक (अधिकतम दोपहर २ बजे तक)
रात का खाना - शाम ६ से ७ बजे तक (अधिकतम ८ बजे तक)
इन समयों को आदर्श क्यों माना जाता है, आइए देखें:
मानव शरीर, एक भौतिक इकाई होने के कारण, प्रकृति और दिन तथा रात की प्राकृतिक लय एवं सूर्य के उदय और अस्त होने से प्रभावित होता है। यह प्रभाव शरीर के पाचन तंत्र पर बहुत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस प्रकार, जैसे-जैसे सूरज उगता है, शरीर की पाचन क्षमता बढ़ती है- दिन के लगभग बारह बजे तक जब सूर्य ऊपर होता है तब पाचन क्षमता चरम तक बढ़ जाती है और जैसे-जैसे दिन ढलता है, पाचन क्षमता धीरे-धीरे कम हो जाती है और सूर्यास्त के समय तक न्यूनतम हो जाती है। इससे स्पष्ट रूप से मध्याह्न और रात्रि के भोजन के समय की व्याख्या मिलती है; पर नाश्ते के बारे में क्या? नाश्ता जल्दी होना चाहिए ताकि नाश्ते और दोपहर के भोजन के बीच चार घण्टे का स्पष्ट अंतर बना रहे।

दिन-रात चक्र के संबंध में भोजन की मात्रा:

प्रातःकाल में, शरीर स्वाभाविक रूप से शोधित होने की स्थिति में होता है, पिछले दिन के एकत्र विषाक्त पदार्थों और शरीर में संचित हुए अपशिष्ट पदार्थों के निष्कासन की प्रक्रिया में होता है (यही कारण है कि पहले बताई गई शोधन प्रक्रियाओं को प्रातः की दिनचर्या का भाग बनाने का परामर्श किया जा रहा है- ऐसा करने पर उस समय शरीर में चल रही प्राकृतिक शोधन प्रक्रियाओं को सुगमता पूर्वक करने के लिए सहायता मिलती है।
इसलिए प्रातः काल का नाश्ता दो कारणों से हल्का होना चाहिए-
1. सुबह के समय पाचन क्षमता कम होती है और धीरे-धीरे बढ़ती है।
2. शरीर इस समय शोधन प्रक्रिया पर काम कर रहा है, इसलिए इस प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने के बजाय उसे इस कार्य पर केंद्रित रहने देना सबसे अच्छा है। यदि प्रातःकाल का नाश्ता भारी खाद्य पदार्थों का हो अर्थात् कठिनता से पचने वाला हो या अधिक मात्रा में हो तो शरीर को उसे पचाने की कोशिश मे लग जाने पर विवश होना पड़ता है, जिससे स्वाभाविक रूप से होने वाली शोधन प्रक्रिया बाधित होती है।
मध्याह्न काल में आहार पाचन शक्ति अपने चरम पर होती है, अतः मध्याह्न काल का भोजन, मुख्य भोजन ग्रहण करने का समय होता है - यह दिन का सबसे बड़ा भोजन हो सकता है।
इसके विपरीत, रात का खाना आपके पूरे दिन का सबसे हल्का भोजन होना चाहिए।

दिन-रात के चक्र के आधार पर भोजन का चयन:

चूँकि शरीर प्रातःकाल लगभग 10 बजे तक शोधन प्रक्रियाओं में व्यस्त रहता है, नाश्ते में आदर्श रूप से ऐसे खाद्य पदार्थ शामिल होने चाहिए जो पाचन तन्त्र के लिए हल्के और शुद्ध हों – जैसे फल जो संस्कारित नही है। सभी असंस्कारित फल, जिनमें अच्छी मात्रा मे आहारीय रेशा (फाइबर) होता है, शरीर में जल्दी से आत्मसात हो जाते हैं और दो से ढाई घण्टे के भीतर ही पेट से बाहर आंतों के मार्ग से होते हुये नीचे निकल जाते हैं, और शरीर से लगभग 6 से 8 घंटे के भीतर बाहर निकल जाते हैं। अतः नाश्ते के लिए फल का सेवन एक अच्छा विकल्प है।

संक्षेप में -
नाश्ता - सुबह 7 से 8 बजे (अधिकतम 9 बजे तक), सुपाच्य, प्रायः फलों जैसे सरलता से निष्कासित होने वाले खाद्य पदार्थों के साथ
मध्याह्न भोजन - दोपहर 12 बजे से दोपहर 1 बजे तक (अधिकतम 2 बजे के भीतर), मध्यम मात्रा से लेकर प्रधान मात्रा युक्त भोजन - दिन का सबसे प्रमुख भोजन
रात्रि भोजन - शाम 6-7 बजे (अधिकतम रात 8 बजे तक), दिन का सबसे हल्का भोजन।
ज्यादा भूख लगे तो आप अपने नाश्ते में अंकुरित दालों को उबालकर, दूध या गेहूं की दलिया, या अन्य अनाजों से निर्मित दलिया जैसे रागी आदि से बना दलिया भी शामिल कर सकते हैं। यह न केवल आपकी भूख को शांत करेगा बल्कि आपकी भूख को अधिक समय तक संतुष्ट रखने में भी मदद करेगा।
अधिक चिकनाई युक्त, तला हुआ और भारी भोजन से बचें - वे न केवल पाचन तंत्र पर बोझ डालेंगे बल्कि आपके शरीर में गुरुता, आलस्य और नींद भी उत्पन्न करेंगे और आपको दोपहर के भोजन के समय भूख से रहित स्थिति को उत्पन्न करेंगे - जो आपके दिन का सबसे प्रमुख भोजन होना चाहिये था उसे ग्रहण करने और पचाने के लिये आपका पाचन तन्त्र तैयार नही होगा!

निद्रा और इसका महत्व

नींद के लिए जाना दिन की दिनचर्या का अन्तिम भाग है। हम अपने जीवन का लगभग एक तिहाई हिस्सा निद्रा की अवस्था में व्यतीत करते हैं लेकिन क्या हम रात की अच्छी नींद के महत्व से अवगत हैं? क्या हम जानते हैं कि नींद का सही समय क्या है और और कितने घण्टे निद्रा लेनी है? दिन में नींद लेना अच्छा है या नहीं? अगर हमें रात में नींद नहीं आती है तो क्या करें या दिन में नींद आने पर क्या करें?
हम इनमें से कुछ और इसी तरह के अन्य प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास करेंगे, जिनके बारे में आपने समय-समय पर सोचा भी होगा।

रात्रिकालीन सम्यक् निद्रा (अच्छी नींद) का महत्व:

रात की अच्छी नींद का अर्थ अच्छी गुणवत्ता की नींद है; ऐसी नींद जो आपको सुबह उठने पर विश्राम प्राप्त और प्रफुल्लित अनुभव कराती है और जिसमें थकान, आलस्यपूर्णता या सुस्ती का अनुभव नहीं होता है। रात्रिकालीन सम्यक् निद्रा अच्छे स्वास्थ्य का एक संकेतक है।
रात में जब हम सोते हैं तो बड़ी संख्या में महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं होती हैं और ये हमें स्वस्थ रहने और सर्वोत्तम तरीके से कार्य करने में सहायता करती हैं। वास्तव में, उचित नींद हमें दीर्घायु बनाती है। जब हम रात को नींद में होते हैं, तो हमारा शरीर ऐसे हार्मोन बनाने में व्यस्त होता है जो ग्लूकोज के चयापचय (metabolism), शरीर की वृद्धि, पाचन संबन्धी क्रियायें आदि को नियंत्रित करने में सहायता करता है। ऊतकों (tissues) को उनके सामान्य संतुलन में स्थापित करता है।
इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब हम रात को सोते हैं तो शरीर दिनभर में उस पर होने वाले सभी नुकसानों के क्षतिपूर्ति की कोशिश करता है। जाने-अनजाने हम अक्सर शरीर का दुरुपयोग करते हैं, जिससे उसे बहुत नुकसान होता है उदा। हम हमेशा सही वस्तुयें नहीं खाते हैं जो हमारे शरीर के लिए अच्छी होती हैं, हम हमेशा सही समय पर भोजन ग्रहण नहीं कर पाते हैं, या हमारी भावनाएँ हमेशा सही नहीं होती हैं (ऐसी भावनाएँ जो हमें सहज रूप से स्वीकार्य हैं) और यह सब हमें नुकसान पहुँचाता है तथा शरीर को क्षति पहुंचाने का कारण बनता है । रात में जब हम सोते हैं

तो सुधारकार्य और कोशिकाओं के पुनर्जनन की विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से, शरीर सभी प्रकार की क्षति से निपटने और स्वस्थ होने की कोशिश करता है। इस प्रकार रात्रिकालीन नींद स्वयं को पुनः ऊर्जापूरित करने जैसा है और इससे दिन के समय में जागरुकता बनी रहती है।

नींद की अवधि (आपको कितने घण्टे नींद लेनी चाहिए?):

नींद के स्वरूप में, विशेष रूप से हम कितने घण्टे सोते हैं, वह उम्र (आयु/वय) के साथ परिवर्तित होता रहता है। जब भी शरीर सक्रिय रूप से बढ़ने की अवस्था में होता है, तो उसे अधिक नींद की आवश्यकता होती है, जैसे नवजात शिशु में (वृद्धिकारक अन्तः स्राव अर्थात् ग्रोथ हार्मोन उन हार्मोनों में से एक है जो रात में सोते समय शरीर में स्रावित होता है) इसलिए नवजात शिशु में (जो बहुत तेज बढ़ रहा होता है) अधिकतम नींद की आवश्यकता होती है। (हो सकता है कि वे दिन के 24 घण्टों में से लगभग 20 घण्टे शयन करें)! जैसे-जैसे हमारी आयु बढ़ती है, हमारी नींद की आवश्यकता कम होती जाती है। बाल्यावस्था, स्कूल जाने वाले बच्चे और किशोर समयानुसार बढ़ने की प्रक्रिया से गुजरते हैं और इसलिए वयस्कों की तुलना में इन्हें अधिक नींद की आवश्यकता होती है, लेकिन नवजात शिशुओं की तुलना में कम (किशोर, नवजात शिशु से आधे समय या उससे कम सोते हैं और वयस्क इसका एक तिहाई सोते हैं) । गर्भवती महिलाओं को अन्य वयस्कों की तुलना में कुछ अतिरिक्त घण्टों की नींद की आवश्यकता होती है (माँ के गर्भ में पलते हुये बच्चे की उपस्थिति के कारण)।

नीचे दी गई तालिका दर्शाती है कि हम एक निश्चित उम्र में कितना सोते हैं।

तालिका: जीवन के विभिन्न चरणों में सोने की औसत अवधि

जीवन की अवस्था	**नींद की औसत अवधि**
नवजात	18 से 20 घण्टे प्रतिदिन
शिशु, पूर्वशिक्षावय आयु	10 से 12 घण्टे प्रतिदिन
बाल्यावस्था	~ 10 घण्टे प्रतिदिन
किशोर अवस्था	8 से 10 घण्टे प्रतिदिन
युवावस्था और पश्चात्	6 से 8 घण्टे प्रतिदिन

अधिकांश स्वस्थ वयस्कों के लिए, रात में 6 से 8 घण्टे की नींद पर्याप्त होती है।

तो क्या हर स्वस्थ व्यक्ति इस तालिका के अनुसार निद्रा ग्रहण करता है? यह आवश्यक नहीं! प्रत्येक व्यक्ति की नींद की आवश्यकता भिन्न हो सकती है। आप कई ऐसे लोगों के बारे में जानते होंगे जो ऊपर दी गई तालिका में बताई गई अवधि की तुलना से कम या ज्यादा सोते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम कितने समय तक सोते हैं यह न केवल हमारी उम्र पर निर्भर करता है, बल्कि यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि हम भोजन में क्या ग्रहण करते हैं, हम शारीरिक रूप से कितने सक्रिय है, हम कैसा सोचते हैं (हमारे मन में क्या चल रहा है) आदि।

एक या दो दिन के लिए, आप जो भोजन ग्रहण करते हैं उस पर ध्यान दें और देखें कि आप कितना सतर्क या निद्रालु अनुभव करते हैं। आप पायेंगे कि जब आप खाद्य पदार्थों को उनके कच्चे, असंस्कारित रूप (जैसे फल, सलाद आदि) में खाते हैं, तो आपको कम नींद की आवश्यकता होती है; दूसरी ओर, जब आप अत्यधिक पका हुआ, तला हुआ, प्रसंस्कृत, गरिष्ट या मसालेदार भोजन ग्रहण करते हैं, तो आपको ऐसा लगता है कि नींद की ज्यादा आवश्यकता है।

इसके अलावा, अपनी शारीरिक गतिविधियों और नींद से इसके संबंध पर भी ध्यान दें। आपने देखा होगा कि जब आप सुबह जल्दी उठते हैं और थोड़ा व्यायाम (जैसे चलना, टहलना आदि क्रियाएँ) करते हैं, तो आप अधिक सतर्क होते हैं। लेकिन जब आप देर से उठते हैं , व्यायाम नहीं करते हैं तो आपको ज्यादा नींद आती है और अक्सर ऐसी स्थिति में आप पूरे दिन अधिक सुस्त और अपने आप को आलसी अनुभव करते हैं।

अब अपने विचारों पर थोड़ा ध्यान दें। आपको रात में आसानी से कब नींद आती है - जब आप शांत और तनावमुक्त होते हैं या जब आपके मन में कोई संघर्ष चल रहा होता है? जरा सोचिए- जब आप रात को सोने जाते हैं तो तुरंत सो जाते हैं या सोने में घण्टों का समय लग जाता है? आप वास्तव में कितने समय के लिये सोते हैं और आप कितना समय बिताते हैं, बिस्तर पर जागते हुए, शायद आंखें बंद करके, इधर-उधर पलटते हुए, और इस व्यक्ति या उस व्यक्ति के विषय में सोचते हुए?

नींद के विभिन्न चरण होते हैं उदाहरणार्थ- आरईएम चरण ('रैपिड आई मूवमेंट' - नींद का वह चरण जिसमें हम सपने देखते हैं), नींद के सभी चरण महत्वपूर्ण हैं, सबसे आवश्यक चरण गहरी नींद का है - यह वह है जिसमें हम वास्तव में पुनः ऊर्जापूरित होते हैं; जो सबसे अधिक नवीनीकरण करने वाला चरण है। ऐसा कहा जाता है कि रात में इस गहरी नींद के कुछ घण्टे भी नींद के अन्य सभी चरणों की तुलना में अधिक लाभप्रद होते हैं। यह गहरी नींद कब आती है? आमतौर पर आधी रात के आसपास (किन्तु आवश्यक है कि हम सही समय पर सो जाएं) और यह हमें इस प्रश्न पर ले आता है कि - "सोने का सही समय क्या है?"

निद्रा का सही समय:

सूर्योदय से पहले जागने में सक्षम होने के लिए आपको रात्रि में समय पर सोने की जरूरत है, हो सके तो रात 10 बजे तक।

यदि आप रात 10 बजे तक सो जाते हैं, तो आपके लगभग आधी रात तक गहरी नींद में होने की संभावना होती है। इससे आपके शरीर की मरम्मत और पुनर्जनन की प्रक्रियाएँ बिना किसी व्यवधान के संपन्न होत्ती हैं और जब आप प्रातः काल नींद से जागते हैं, तो आप पूरी तरह से प्रफुल्लित और ऊर्जायुक्त होते हैं।

अनियमित रूप से निद्रा सेवन और स्वास्थ्य पर उनका प्रभाव

यदि हमें रात में आवश्यक नींद नहीं मिलती है, तो हम अगले दिन सुस्त, आलसी, और निद्रालुता का अनुभव करते हैं (हम सभी ने कभी न कभी इसका अनुभव अवश्य किया होगा)। अनुसंधान द्वारा यह स्थापित हुआ है कि अपर्याप्त गुणवत्ता वाली नींद के परिणामस्वरूप न केवल दिन में अत्यधिक नींद आती है बल्कि ध्यान, एकाग्रता, संज्ञानात्मक कार्य, आवेग और मनोदशा में विचलन की समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं।

लम्बी अवधि तक नींद की कमी शरीर के पूरे अन्तःस्रावी (हार्मोनल) संतुलन को बिगाड़ देती है, जिससे शरीर का संतुलन भी बिगड़ जाता है और इसके परिणामस्वरूप मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग आदि जैसी स्वास्थ्य समस्याओं की एक पूरी श्रृंखला प्रारम्भ हो जाती है।

यदि आप रात में पर्याप्त नींद नहीं लेते हैं, तो क्या आप दिन में सोकर इसकी भरपाई कर सकते हैं? ऐसा नहीं है।

दिन की नींद और उसके प्रभाव

दिन में 30 मिनट से अधिक समय तक झपकी लेने से नींद की जड़ता उत्पन्न होती है - जागने के बाद थोड़ी देर तक सोचने और समझने की क्षमता कम प्रतीत हो सकती है। भ्रम, घबराहट इत्यादि भी इससे जुड़े हो सकते हैं।

इसके अलावा, रात में गहरी नींद के समय शरीर के आंतरिक क्रियाचक्र को पुनः नवीनीकृत कर (मरम्मत, पुनर्जनन और विषहरण के लिये) तैयार किया जाता है - यह दिन के समय झपकी लेने के दौरान नहीं होता है। केवल शिशुओं और छोटे बच्चों के लिए दिन के समय झपकी लेना दैनिक दिनचर्या का एक सामान्य हिस्सा माना जाता है।

इसलिए अत्यधिक निद्रा या खुद को नींद से वंचित करना या गलत समय पर निद्रा सभी स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़े हैं और इसलिए इसकी अनुशंसा नहीं की जाती है।

रात में नींद न आने की समस्या का समाधान :

आप जानते हैं कि सोने का सही समय क्या है; आप यह भी जानते हैं कि दिन में सोना स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं है इसलिए आप रात समय पर सोने की कोशिश करते हैं - लेकिन सो नहीं पाते हैं! फिर क्या करें?

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, नींद आपके आहार सेवन, आपकी जीवनशैली आदि से सीधे प्रभावित होती है। यहां कुछ सुझाव दिए गए हैं जो आपको सम्यक् नींद लाने में मदद करेंगे:

1. प्रयास करें और कम से कम 30 से 45 मिनट के लिए प्रतिदिन शारीरिक व्यायाम करें (जैसे योग, पैदल चलना, दौड़ना आदि)। यह आप सुबह या शाम को कर सकते हैं लेकिन याद रखें कि सोने के 2-3 घंटे के भीतर में नहीं और निश्चित रूप से भोजन के तुरन्त बाद भी नहीं। थोड़ा थका हुआ शरीर आपको सो जाने में सहायता करेगा, लेकिन आप व्यायाम को आवश्यकता से अधिक न करें और अत्यधिक थकान का अनुभव भी ना करें।
2. नियमित रूप से जल्दी उठने के समय और नियमित सोने के समय के साथ-साथ एक व्यवस्थित दिनचर्या का पालन करें जिससे शारीरिक क्रियाचक्र को परिवर्तित दिनचर्या के साथ समायोजित करने की आवश्यकता ना हो।
3. जब तक अत्यधिक आवश्यक न हो, दिन के समय झपकी लेने से बचें। यदि आपको दोपहर की झपकी लेनी है, तो इसे दोपहर देर से (3 बजे के बाद) के बजाय जल्दी करें (देर से दोपहर की झपकी आपके लिए रात को सोना कठिन बना सकती है) और अपनी झपकी को 15-20 मिनट तक सीमित रखें (यह निश्चित रूप से एक घंटे से अधिक नहीं हो)।
4. विशेष रूप से दिन के दूसरे भाग में कैफीन, निकोटीन आदि जैसे उत्तेजक पदार्थों के सेवन से बचें या कम करें। ऐसे उत्तेजक नींद में बाधा डालते हैं; कॉफी, कोला, चाय और चॉकलेट में कैफीन के उत्तेजक प्रभाव को पूरी तरह से खत्म होने में 8 घण्टे तक लग सकते हैं।
5. सुनिश्चित करें कि दिन के समय बहुत अधिक धूप प्राप्त करें (शरीर को दिन-रात के चक्र के साथ तालमेल बिठाने में सहायता करने के लिए) और सोने से पहले चमकदार कृत्रिम रोशनी से बचें। इसलिए सोने से कम से कम एक घण्टे पहले अपने मोबाइल फोन, लैपटॉप आदि को दूर रख दें क्योंकि उनकी स्क्रीन की तेज रोशनी शरीर में

मेलाटोनिन (निद्राजनक अन्तःस्राव/स्लीप हार्मोन) के स्राव को दबा देती है, जिससे आपको नींद नहीं आती है।

6. देर रात को गरिष्ट भोजन और उत्तेजक पेय पदार्थों से बचें। देर रात के गरिष्ट भोजन से अपच और नींद में बाधा उत्पन्न हो सकती है, जैसे रात में अधिक मात्रा में तरल पदार्थ पीने से आपको रात में बार-बार मूत्रत्याग करने के लिए जागना होता है, जिससे आपकी नींद बाधित हो सकती है।
7. सुनिश्चित करें कि जिस कक्ष में आप सोते हैं उसका वातावरण अच्छा हो – उचितरूप से वायु का संचरण, एक आरामदायक तापमान (न तो बहुत गर्म और न ही बहुत ठंडा) और, यदि आवश्यक हो, तो मच्छरों आदि से सुरक्षा (जैसे मच्छरदानी के साथ)।
8. शयन कक्ष में उन चीजों से छुटकारा पाएं जो आपको सोने से विचलित करती हैं उदा। घड़ियां आदि से आने वाली आवाजें, तेज रोशनी, असहज बिस्तर, शयन कक्ष में टीवी या कंप्यूटर आदि।
9. निद्रा के समय से पूर्व कुछ आराम की गतिविधियों से जिनसे आपको नींद आने मे सहायता मिल सकती है वह हैं – सन्ध्या के समय उष्ण जल से स्नान, एक अच्छी पुस्तक पढ़ना, सुखदायक संगीत सुनना, ध्यान का अभ्यास आदि। इनमें से कई आपके दैनिक नींद के अनुष्ठान का हिस्सा हो सकते हैं।
10. बिस्तर पर जाने से पहले अन्तिम सुझाव, आप दोनों पैरों, विशेष रूप से तलवों को गर्म तिल, सरसों या नारियल इत्यादि के तैल से मालिश कर सकते हैं। यह न केवल शरीर को आराम देगा बल्कि पैरों के तलवों पर सभी दबाव बिंदुओं की भी मालिश और आपको रात में अच्छी नींद लेने में सहायता करेगा।

11.

दिन में नींद आना:

यदि आपको दिन में नींद आ रही है,

• सुनिश्चित करें कि आप अधिक तला हुआ या प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ का सेवन नहीं कर रहे हैं

• अपने आहार में फल और सलाद सम्मिलित करें

• अपनी दिनचर्या में व्यायाम (कम से कम आधे घंटे) को हिस्सा बनाएं

• बहुत गरिष्ट भोजन और बार-बार नाश्ता करने से बचें

व्यक्तिगत स्वास्थ्य कार्यक्रम के विषय में, हमने यहां केवल सेवन और दैनिक दिनचर्या पर थोड़ा विस्तार से चर्चा की है। इन और अन्य विषयों (श्रम, व्यायाम आदि) के बारे में अधिक जानकारी के लिए, कृपया यूएचवी वेबसाइट देखें(uhv.org.in)।

परिवार में स्वास्थ्य का कार्यान्वयन

जैसा कि चर्चा की गई है, व्यक्तिगत स्तर पर शरीर के स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रम में सही सेवन, दिन और रात के चक्र के साथ तालमेल, दिनचर्या के साथ-साथ श्रम और व्यायाम, आंतरिक अंगों को विनियमित करने के लिए आसन (जैसे योग) और श्वास नियमन (जैसे प्राणायाम) आदि। स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु आवश्यकता पड़ने पर हर घर में उपलब्ध घरेलू उपचारों से सहायता ली जा सकती है।

सामान्यतः (> 90-95 % तक), यदि उपरोक्त वर्णित चरणों का ईमानदारी से पालन किया जाये, तो शरीर का स्वास्थ्य एक प्राकृतिक परिणाम है और इसके लिये हमें किसी बाहरी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती है - यहां तक कि 'जीवन शैली संबंधी विकार' का निदान होने पर (जैसे) मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि), इन अभ्यासों के पालन करने से कम हो सकते हैं; कोरोना/'कोविड' महामारी में भी, बहुत से लोग प्राणायाम जैसे अभ्यासों से लाभान्वित हुए और बिना दवा के पूरी तरह से ठीक भी हो गए। ऐसा इसलिए है क्योंकि मानव शरीर इतनी अच्छी तरह से संगठित है कि, अगर ठीक से देखभाल की जाए, तो यह जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक कुशलतापूर्वक कार्य कर सकता है।

फिर भी, यदि किसी परिस्थिति में चिकित्सा की आवश्यकता होती है, तो व्यक्ति आवश्यकतानुसार औषध ले सकता है। उपचार (शरीर के अङ्गो की संरचना और क्रियात्मकता को बनाये रखने के लिए कृत्रिम साधनों, मशीनों या अन्य उपकरणों पर निर्भरता जैसे गंभीर मधुमेह में इंसुलिन इंजेक्शन, हृदय के लिए पेसमेकर इत्यादि को केवल अंतिम उपाय के रूप में रखा जाना चाहिए जब और कोई उपाय संभव न हो।

यह व्यक्तिगत स्तर पर स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रम था। यद्यपि एक परिवार में स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रम व्यक्तिगत स्तर पर एक समान होता है, फिर भी कुछ मूलभूत पारिवारिक आवश्यकतायें होती हैं जो अद्वितीय होती हैं। उदाहरण के लिए, एक परिवार में प्रायः विभिन्न आयु और विभिन्न क्षमताओं के व्यक्ति होते हैं - जो बच्चे बहुत छोटे हैं या बुजुर्ग जो बहुत बूढ़े हैं, उनकी आहार संबंधी ज़रूरतें अलग-अलग होंगी, वे स्वयं शरीर के स्वास्थ्य की देखभाल करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं और इस प्रकार कुछ सहायता आदि की आवश्यकता हो सकती

है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के शरीर की क्रियात्मकता भी कुछ भिन्न हो सकती है और इसके परिणामस्वरूप, शरीर के स्वास्थ्य को सम्यक् बनाए रखने के लिए थोड़ी भिन्न आवश्यकताएँ हो सकती हैं।

निम्नलिखित कुछ सुझाव हैं जो परिवार की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए समग्र रूप से परिवार के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायता कर सकते हैं (इनमें से कई प्रयोग भारत में पारम्परिक परिवार प्रणाली में सम्मिलित थे लेकिन बड़े पैमाने पर भुला दिए गए हैं या अभ्यास में नहीं हैं। इसका कारण 'आधुनिकता' या 'व्यावहारिक' दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सकता है, लेकिन अब समय आ गया है कि इनमें से कुछ परम्पराओं को पुनर्जीवित किया जाए क्योंकि स्वास्थ्य की वर्तमान प्रणाली न तो सभी के लिए संतोषजनक है और न ही इसमें स्थायित्व है जैसा कि आज हम देखते हैं)। यहाँ कुछ सुझाव हैं:

1. स्वास्थ्य के लिए नामित परिवार के सदस्य

परिवार का प्रत्येक व्यक्ति जो स्वस्थ और सक्षम है, अपने स्वास्थ्य की जिम्मेदारी खुद ले सकता है। जो ऐसा करने में असमर्थ हैं, उन सभी सदस्यों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेने के लिए परिवार के एक विशिष्ट सदस्य को जो स्वस्थ है को नामित किया जा सकता है (उदाहरण के लिए बहुत छोटे बच्चे, बुजुर्ग और बीमार या कमजोर सदस्य) - यह जिम्मेदारी परंपरागत रूप से घर की स्वस्थ बुजुर्ग महिला लेती थी।

2. हितकर भोजन

नामित परिवार के सदस्य आवश्यकतानुसार परिवार के प्रत्येक सदस्य की व्यक्तिगत खाद्य आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं (उदाहरण के लिए आयु के आधार पर विशिष्ट खाद्य आवश्यकताएं, शरीर में विशिष्ट व्याधियों या असंगति या विशिष्ट परिवार के सदस्यों में ऐसी व्याधियों की प्रवृत्ति के आधार पर)। भोजन की योजना इस प्रकार बनाई जा सकती है कि भोजन निर्माण करते समय किए गए साधारण परिवर्तन/संशोधन इसे शरीर के विभिन्न गठनों और परिवार के सभी सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त बना सकते हैं (उदाहरण के लिए, जिनके शरीर में सूखापन की प्रवृत्ति है, उनके भोजन में अतिरिक्त घी मिलाना इत्यादि)।

3. स्वस्थ दैनिक दिनचर्या

दैनिक पारिवारिक दिनचर्या को इस तरह बनाए रखा जा सकता है कि यह स्वास्थ्य के लिए अनुकूल हो - परिवार के सभी सदस्यों के जल्दी उठने के साथ, समय पर शौचालय और स्नान की गतिविधियों का प्रावधान, धूप के संपर्क में आना और शारीरिक व्यायाम आदि सहित बाहरी गतिविधियाँ आदि (इन दोनों को किया जा सकता है) एक साथ मिलकर कार्य - जैसे प्राकृतिक खेती, रसोई उद्यान/गृह उद्यान आदि गतिविधियों से जो शरीर को सूरज की रोशनी और बाहर के समय के साथ-साथ शरीर को व्यायाम करने में सहायता करती हैं), भोजन निर्माण और भोजन ग्रहण का समय प्राकृतिक चक्रों के अनुरूप निर्धारित करना, और सभी परिवार के सदस्यों के लिए उपयुक्त बिस्तर - यथोचित् समय में निद्रा।

4. स्वस्थ गतिविधियाँ

पूरे परिवार को एक साथ उन गतिविधियों में शामिल किया जा सकता है जो शरीर के स्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं उदा।- योग और प्राणायाम, रसोई उद्यान शुरू करना (या जमीन की जगह उपलब्ध नहीं होने पर छत के ऊपर का बगीचा), पौधों के पोषण के लिए रसोई के कचरे से खाद बनाना आदि और इस तरह परिवार की अपनी प्राकृतिक और रासायनिक मुक्त सब्जियां

उगाना, न केवल बेहतर स्वाद का आनंद लेना, बल्कि यह भी बेहतर स्वास्थ्य भी प्रदान करता है।

संपूर्ण परिवार हानिकारक कृत्रिम रासायनिक द्रव्यों को अम्ल रस वाले फलों के छिलके से बने जैविक रसायनों जैसे प्राकृतिक सफाई द्रव्यों के साथ बदलने का निर्णय ले सकता है। ये न केवल घर को स्वच्छ रखने में मदद करेंगे बल्कि पूरे परिवार के लिए उत्तम स्वास्थ्य सुनिश्चित करेंगे (और प्रकृति के लिए भी उचित होंगे)।

इसी तरह, पूरा परिवार घर पर केवल स्वस्थ भोजन रखने का फैसला कर सकता है और बाहर से डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थ लेने से बच सकता है जो स्वाद में उच्च हो सकता है लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा नहीं हो सकता है। घर पर भी, स्वस्थ भोजन निर्माण की पद्यति को सुनिश्चित करने और अस्वास्थ्यकर प्रथाओं जैसे कि खाद्य पदार्थों को बार-बार तलने आदि से बचने से पूरे परिवार को स्वस्थ रखने में सहायता मिलेगी।

5. घरेलू उपचार

नामित परिवार के सदस्य, यदि पहले से परिचित नहीं हैं, तो विभिन्न सामान्य जड़ी-बूटियों और मसालों से परिचित हो सकते हैं जो प्रायः भोजन निर्माण में उपयोग किए जाते हैं और हर घर की रसोई में आसानी से उपलब्ध होते हैं। ऐसे द्रव्यों के गुणों और विशिष्ट घरेलू उपचार के रूप में उनके उपयोग से परिचित हुआ जा सकता है, और आवश्यकता होने पर परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है, इससे स्वास्थ्य में होने वाली बाधाओं को रोका जा सकता है और साथ ही व्याधि ग्रस्त लोगों के लिए प्रारम्भिक औषध के रूप में उनका उपयोग हो सकता है।

समाज का स्वास्थ्य

हम पहले ही देख चुके हैं कि व्यक्ति और परिवार में स्वास्थ्य को कैसे सुनिश्चित किया जाए। अब आइए देखें कि हम समाज में स्वास्थ्य को कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं - समाज में सभी व्यक्तियों की भलाई के लिए एक स्वस्थ समाज की पूर्ति के लिए हम किस तरह की स्वास्थ्य प्रणाली स्थापित कर सकते हैं

समाज के स्तर पर स्वास्थ्य को सुनिश्चित करना (सामाजिक स्वास्थ्य प्रणाली):

समाज में स्वास्थ्य का कार्यान्वयन दो प्रकार की प्रणालियों से किया जा सकता है:

1. व्यक्ति, परिवार, समुदाय के स्तर पर प्रणालियाँ - विकेंद्रीकृत प्रणालियाँ

2. ऐसी प्रणालियाँ जो समाज को इस तरह व्यवस्थित करने में सहायता करती हैं कि विकेन्द्रीकृत प्रणालियाँ आसानी से अपना कार्य कर सकें ताकि सभी के लिए स्वास्थ्य उपलब्ध हो सके - केंद्रीकृत प्रणालियाँ

विकेन्द्रीकृत स्वास्थ्य प्रणाली

निम्नलिखित विषयों के बारे में जागरूकता और शिक्षा:

1. प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी ले सकता है (बजाय चिकित्सकों, अस्पतालों, दवा कंपनियों, बीमा कंपनियों आदि पर निर्भर होने के)।

2. प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के कार्यक्रम के साथ स्वस्थ रहने पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकता है जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है जिसका अर्थ - सेवन विधि और दिनचर्या से है जो स्वास्थ्य के लिए अनुकूल है और दिनचर्या की गतिविधियों में श्रम, व्यायाम, आसन, प्राणायाम आदि को सम्मिलित करना है। रोग होने पर, इसकी शीघ्र पहचान और इसके उचित उपचार पर पूरा ध्यान दें)।
3. प्रत्येक परिवार और परिवार के सभी सदस्यों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेने के लिए परिवार के किसी एक जिम्मेदार सदस्य को नामित किया जा सकता है (यह परंपरागत रूप से घर की सबसे बुजुर्ग स्वस्थ महिला द्वारा ली गई जिम्मेदारी होती थी)।
4. एक समूह के रूप में कई परिवार एक परिवार को उस समूह के सभी परिवारों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेने के लिए नामित कर सकते हैं। इसमें समूह के सभी परिवारों में स्वास्थ्य के विषय में जागरूकता भी सम्मिलित हो सकती है (जैसे - त्योहारों और विभिन्न अवसरों को स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए मनाना जैसे कि 'होली' का त्योहार कृत्रिम रंगों जो त्वचा को नुकसान पहुंचा सकते हैं और एलर्जी, त्वचा पर चकत्ते आदि के कारण हैं के बजाय प्राकृतिक या वनस्पतियों से निर्मित रंगों के साथ मनाना।
5. इसी तरह, परिवारों के समूह के एक या अधिक प्रतिनिधियों को समुदाय में परिवारों के सभी समूहों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेने के लिए नामित किया जा सकता है (उदाहरण के लिए एक जगह को निर्धारित करना जो एक सामान्य क्षेत्र के रूप में उपयोग किया जा सकता है, जहां एक या दो जिम्मेदार व्यक्ति दैनिक व्यायाम, आसन, प्राणायाम आदि के अभ्यास में दूसरों का नेतृत्व कर सकते हैं।
6. एक समुदाय या समुदाय के कुछ सदस्य गांव के सभी समुदायों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी ले सकते हैं।
7. गाँव के समुदायों के समूह के कुछ जिम्मेदार व्यक्ति कई गांवों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी ले सकते हैं, इसी प्रकार जिले के स्वास्थ्य, शहर के स्वास्थ्य आदि की भी जिम्मेदारी लेने की प्रक्रिया निर्धारित कर सकते हैं।

केन्द्रीकृत स्वास्थ्य प्रणाली (स्वास्थ्य शिक्षा और स्वास्थ्य रखरखाव)

स्वास्थ्य शिक्षा की औपचारिक/संरचित प्रणाली:

स्वास्थ्य पर चिकित्सा शिक्षा का दृष्टिकोण

1. स्वास्थ्य प्रणालियों और स्वास्थ्य शिक्षा का वर्तमान ध्यान मुख्य रूप से व्याधि का निदान और इसके प्रबन्धन पर है (इसे 'औषध' या 'चिकित्सा प्रणाली' भी कहा जाता है)। यहां जो प्रस्तावित किया गया है वह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें स्वास्थ्य को बनाये रखने पर मुख्य ध्यान केन्द्रित किया जाए न कि खराब स्वास्थ्य और इसके लिए औषध की आवश्यकता पर।
2. चिकित्सा शिक्षा में स्वास्थ्य रखरखाव की पारंपरिक प्रणालियों (जैसे आयुर्वेद) और अन्य पूरक प्रणालियों (जैसे प्राकृतिक चिकित्सा, होम्योपैथी, एक्यूप्रेशर आदि) के बारे में एक मूलभूत विचार सम्मिलित करना।
3. चिकित्सा शिक्षा में मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये स्वयं की भूमिका को सम्मिलित करना - छात्रों को यह देखने में सक्षम होना कि यह स्व है जो मानव अस्तित्व का केंद्र है और शरीर इसका केवल एक साधन या उपकरण के रूप में है जो स्वयं द्वारा उपयोग किया जा रहा है; साथ ही यह देखने में सक्षम होना कि जब भी स्वयं में कोई असंगति होती है, तो यह शरीर को भी असंगति / अस्वस्थता की ओर ले जाती है, इसलिए जब तक कि 'स्व' स्वस्थ / सद्भाव में नहीं है, तब तक हम शरीर के स्वास्थ्य पर कितनी भी

मेहनत कर लें, यह उपाय काम नहीं करेगा और हम समग्र में अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर पाएंगे।

4. छात्रों को एक स्वास्थ्य के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए चिकित्सा शिक्षा - जिसमें वे देख सकते हैं कि मनुष्य अलग-थलग नहीं है, बल्कि परिवार, समाज के स्वास्थ्य पर और यहां तक कि प्रकृति और अस्तित्व साथ भी बहुत ही जटिल और गहराई से जुड़ा हुआ है और अन्योन्याश्रित है। छात्रों को मनुष्य के स्वास्थ्य और परिवार, समाज और प्रकृति और अस्तित्व के स्वास्थ्य के बीच की कड़ी को देखने में सक्षम होना उदा।- कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग जो खराब स्वास्थ्य का कारण बनता है इसके विपरीत प्राकृतिक कृषि का महत्व समझना।
5. उन सभी के लिए जो योग्य है, ईमानदारी से चिकित्सा कार्य में रूचि रखते हैं और समुदाय की सेवा करने की मानसिकता रखते हैं के लिये सुलभ (आर्थिक दबाव के बिना) चिकित्सा शिक्षा की उपलब्धता।
6. परिवार के स्वास्थ्य की प्रणाली का पुनरुत्थान जिसमें एक चिकित्सक पूरे परिवार के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेता है, साथ ही चिकित्सा शिक्षा में विशेषज्ञता और उत्कृष्ट विशेषज्ञता से परिवार आधारित स्वास्थ्य संरक्षण की शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करना।
7. स्वास्थ्य शिक्षा और स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाने के लिए सामाजिक व्यवस्था को अनिवार्य करना -

- जैसे स्कूलों में नियमित दैनिक विषय के रूप में स्वास्थ्य शिक्षा के साथ-साथ दैनिक स्कूल की चर्या में योग, प्राणायाम आदि को सम्मिलित करते हुए व्यावहारिक सत्र का होना।
- जैसे कार्यस्थल में स्वास्थ्य विशेषज्ञों द्वारा स्वास्थ्य जागरूकता सत्र।

स्वास्थ्य संरक्षण:

1. स्वास्थ्य विशेषज्ञों को व्याधि के निदान और इसके उपचार की अपेक्षा स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता से सम्बन्धित परामर्श पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।
2. स्वास्थ्य विशेषज्ञों द्वारा जब भी संभव हो स्वास्थ्य असंतुलन को ठीक करने के लिए सहज उपायों अर्थात् गैर-आक्रामक उपायों को प्राथमिकता दें (जैसे निर्जलीकरण के सुधार के लिए सिरागत तरल पदार्थ के स्थान पर मौखिक पुनर्जलीकरण को प्राथमिकता) ।
3. घरेलु रख-रखाव/दिन में रख-रखाव वाले चिकित्सालय में भर्ती होने के बजाय (जब तक कि बिल्कुल आवश्यक न हो) स्वास्थ्य में असमानता/असंतुलन को ठीक करने के लिए स्वाभाविक उपाय का प्रयोग होना चाहिए।
4. चिकित्सा केन्द्रों को व्याधिग्रस्त व्यक्ति की जरूरतों के प्रति संवेदनशीलता के साथ अधिक उपयोगी और अनुकूल बनाया जाना चाहिये जैसे – एक व्याधि ग्रस्त या रोगी व्यक्ति को एक स्थान पर पंजीकरण करना फिर चिकित्सक से परामर्श लेने के लिए दूसरे स्थान पर जाना पुनः दवा लेने के लिए तीसरे स्थान पर जाना इत्यादि जो कि आज की मुख्यधारा की चिकित्सा प्रणाली है।
5. सभी स्वास्थ्य केंद्रों और चिकित्सालयों को स्वास्थ्य की एकीकृत प्रणालियों के विकल्प सहित विकसित किया जाना (जैसे आयुर्वेद, एलोपैथी, होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा, एक्यूप्रेशर इत्यादि) है, जहां सभी प्रणालियों के ज्ञान वाले स्वास्थ्य विशेषज्ञ उपलब्ध हों।
6. स्वास्थ्य विशेषज्ञों में नीतिपूर्वक अभ्यास पद्धति का समर्थन करने के लिए प्रणाली

7. जैसे शारीरिक असंतुलन को ठीक करने के लिए बिना चीर-फाड़ वाले उपायों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, चाहे स्वास्थ्य विशेषज्ञ विसंगति का उपचार शल्यकर्म (सर्जरी) के माध्यम से करे या दवा देकर इस ठीक करे इसका उद्देश्य कोई अतिरिक्त आर्थिक लाभ कभी भी नहीं होना चाहिए। इसी तरह, एक स्वास्थ्य विशेषज्ञ चाहे गर्भवती स्त्री के अवस्थानुसार शिशु के जन्म के लिए के लिये चाहे उदर पाटन (सिजेरियन सेक्शन) कर रहा हो या सामान्य प्रसव इसका उद्देश्य कोई अतिरिक्त आर्थिक लाभ ना हो। जैसे किसी भी व्यक्ति के खराब स्वास्थ्य के लिए डॉक्टर, नर्स, अस्पताल, लैब आदि को कोई अतिरिक्त आर्थिक लाभ/प्रोत्साहन ना हो; व्याधिग्रस्त को अन्य अस्पतालों, प्रयोगशालाओं आदि में स्थानान्तरित करने से किसी भी स्वास्थ्य विशेषज्ञ को कोई अतिरिक्त आर्थिक लाभ ना हो।
8. विद्यालय प्रणाली, विद्यालय में अध्यनरत छात्रों के स्वास्थ्य को प्राथमिकता देने वाली हो -जैसे विद्यालय की दिनचर्या, दैनिक सूर्य चक्र (सर्कैडियन रिदम) के अनुरूप हो – नित्य व्यायाम, योग, प्राणायाम आदि के लिए प्रातःकाल समय एवं मार्गदर्शन का प्रावधान, दोपहर के भोजन के लिए पर्याप्त एवं समय पर अवकाश आदि का प्रावधान।
9. कार्यस्थल का वातावरण भी अपने कार्यकर्ताओं के स्वास्थ्य आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। इस प्रकार, कॉरपोरेट्स, समूह, कंपनियों, बैंकों आदि में कार्यरत युवा वयस्कों को भोजन के लिए समय पर विश्रामकाल दिया जाना चाहिए। दिनचर्या, सर्कैडियन रिदम के अनुरूप व्यवस्थित हो - व्यायाम के लिए उचित समय का प्रावधान, कार्यस्थल का कार्य सही समय मे समाप्त होना चाहिए जिससे कर्मचारियों के पास अपने परिवार के साथ पर्याप्त गुणवत्ता का समय हो और वे सही समय पर सो सकें।
10. इसी तरह, कार्यरत महिलाओं को गर्भावस्था काल में आंशिक भुगतान के साथ कार्य से पर्याप्त महीनों का समय मिले या जब वे बच्चे को जन्म देती हैं उस समय पर्याप्त मातृत्व अवकाश हो और इसके साथ-साथ यदि उनका 5 वर्ष से कम आयु का शिशु है, उसके लिये अंशकालिक काम/घर से कार्य करने के विकल्प भी उपलब्ध हो। क्योंकि बच्चे की पूर्ण क्षमता के विकास के लिए बच्चे के उत्तम विकास के प्रारंभिक वर्षों में घर पर माँ की उपस्थिति आवश्यक है।

स्वस्थ शरीर का उद्देश्य

एक बार जब हमने शरीर में स्वास्थ्य सुनिश्चित कर लिया, तो अब क्या...? क्या स्वस्थ शरीर अपने आप में साध्य या लक्ष्य का अन्त है? स्वस्थ शरीर प्राप्त करने का उद्देश्य क्या है? क्या स्वस्थ शरीर केवल विभिन्न संवेदनाओं में लिप्त होने और शरीर के माध्यम से आनन्द प्राप्त करने के लिए है?

चूँकि स्वयं ही वह है जो हमारे अस्तित्व का केंद्र है; यह निर्णय लेने वाला है, जो शरीर को अपनी लक्ष्य निर्धारण करने का निर्देश देता है और शरीर केवल स्वयं के लिए एक साधन है, इसलिए शरीर का उद्देश्य स्व की सहायता करना है।

और स्वयं का उद्देश्य इस अस्तित्व में निहित संबंध, सद्भाव और सह-अस्तित्व को समझना (जानना) है और इसमें अपनी भूमिका निभाना है (यानी इस सद्भाव में भाग लेना/एक मनुष्य के रूप में सद्भाव में रहना - अस्तित्व में हर दूसरी इकाई के साथ सह-अस्तित्व में रहना)। यह

एक स्वस्थ (सुखी) स्व सुनिश्चित करता है - समृद्धि की भावना और शरीर का स्वास्थ्य तब इसके प्राकृतिक परिणाम होते हैं।

उत्पादन-कार्य
(Production-Work)

कार्य, मानव द्वारा शेष-प्रकृति पर किया गया श्रम है; और उत्पादन, इस कार्य से प्राप्त सुविधा है।

मोबाइल फोन के उत्पादन के लिये हेमेटाइट (लौह अयस्क), चाल्कोपायराइट (तांबा अयस्क), कच्चे पेट्रोलियम तेल आदि का खनन करने और इनको परिष्कृत करने की आवश्यकता पड़ती है। मानव के प्रयास की आवश्यकता मोबाइल फोन के डिज़ाइन करने, इनके पुर्जों को बनाने, इनको असेम्बल करने, और असेम्बली को जाँचने आदि अन्य चरणों में पड़ती है।

गेहूँ के उत्पादन के लिये, उपजाऊ मिट्टी वाले खेत, हवा, पानी, और गेहूँ के बीज की आवश्यकता होती है। यह सभी इकाइयाँ शेष-प्रकृति में ही हैं। इनके साथ-साथ मानव का प्रयास जमीन की जुताई के लिये, बीज बोने के लिये, खेतों में पानी देने के लिये, घास निकालने के लिये, गेहूं की मड़ाई करने के लिये, भूसा अलग करने के लिये और इसकी सफाई इत्यादि करने के लिये है। यह सभी कार्य आवश्यक हैं।

कोई भी उत्पादन करने के लिये दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है- शेष-प्रकृति *(प्राकृतिक संसाधन)* और मानव का प्रयास *(कार्य)* ।

उत्पादन-कार्य के संबंध में दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं*:*

- क्या उत्पादन करना है*?*
- कैसे उत्पादन करना है*?*

क्या उत्पादन करना है, इसके बारे में हमने पहले ही समृद्धि, संयम और स्वास्थ्य के बारे में प्रस्तावों की जाँच करते समय चर्चा की है - हमें शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये आवश्यक सुविधा का उत्पादन करना होगा।

कैसे उत्पादन करना है के संबंध में दो मापदंड हैं:

1. प्रक्रिया, चक्रीय और परस्पर–संवर्धन करने वाली हो-यह पर्यावरण के अनुकूल (eco-friendly) हो।
2. मानव के साथ संबंध में न्याय सुनिश्चित करने वाली हो- यह लोगों के अनुकूल (people-friendly) हो।

कोई प्रक्रिया, चक्रीय तब होती है जब वह प्रकृति में जो चक्र है उसके अनुसार होती है। ऐसी प्रक्रिया में, उपयोग किये गये संसाधन अपने जीवन-चक्र (lifecycle) के अनुसार, अपनी मूल अवस्था में लौट पाते हैं। ऐसी प्रक्रिया में, कोई भी अपशिष्ट (waste) नहीं होता है, अर्थात् उत्पादित सभी वस्तुयें या तो तैयार उत्पाद या उप-उत्पाद या सह-उत्पाद के रूप में होती हैं, जिनका उपयोग किसी अन्य प्रक्रिया में किया जाता है।

उदाहरण के लिये, जब हम गेहूँ बोते हैं, वह अंकुरित होते हैं, पौधे के रूप में बढ़ते हैं, इससे बहुत से गेहूँ के दाने बनते हैं और फिर वापस मिट्टी में चले जाते हैं। अमरूद

के पेड़ से अमरूद के बीज पैदा होते हैं, वह पौधे के रूप में बढ़ते हैं, इसमें बहुत से पत्ते और फल आते हैं और कुछ समय पश्चात वह वापस उसी मिट्टी में चले जाते हैं जहाँ से आये थे। लेकिन इससे पहले कि वह मिट्टी में जायें, वह मिट्टी को अपनी गिरने वाली पत्तियों और फलों से और भी समृद्ध कर देते हैं। प्रकृति में ऐसी प्रक्रियायें पहले से ही हो रही हैं। हमें प्रकृति के वर्तमान चक्र को समझने और इसका सदुपयोग करने की आवश्यकता है। जब उत्पादन की बात आती है, तो हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इस समग्र प्रकृति चक्र में कोई छेड़छाड़ किये बिना ही, इसमें कुछ गतिविधियों को और जोड़ सकते हैं। उदाहरण के लिये गुड़ का उत्पादन एक चक्रीय प्रक्रिया है। रस निकालने के लिये गन्ने की पिरायी की जाती है। इस प्रक्रिया में रस के अलावा निकलने वाले शेष पदार्थ जैसे इनका छिलका, भूसा इत्यादि को सुखा लिया जाता है और इन्हें गन्ने के जूस को गर्म करने के लिये ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। रस, मीठे गाढ़े तरल रूप में बदल जाता है, जिसे सुखाकर गुड़ बनाया जाता है। इससे निकलने वाले धुयें, अर्थात् कार्बन डाइऑक्साइड को पेड़-पौधों के द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। इस प्रक्रिया में निकलने वाली भाप, वायु में मिल जाती है। जला हुये छिलके, भूसे इत्यादि की राख को आस-पास के खेतों की मिट्टी के लिये उर्वरक के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है।

कोई भी प्रक्रिया परस्पर-पूरक तभी कहलाती है, जब उस में भागीदारी करने वाली प्रत्येक इकाई समृद्ध हो रही हो। जैसे गुड़ उत्पादन की प्रक्रिया में खेत की समृद्धि; जले हुये भूसे और छिलकों की राख से होती है, जल की समृद्धि वाष्प के वायु में मिलने से होती है इत्यादि। एवं गुड़ में बहुत से प्राकृतिक खनिज और विटामिन्स होते हैं, जो मानव-शरीर का पोषण करते हैं। भारत में अनेक पारंपरिक औषधियों में इसका उपयोग होता है।

निःसंदेह, कार्य में सम्मिलित व्यक्तियों के लिये न्याय अनिवार्य है। हमने पिछले अध्याय में इस पर चर्चा की थी कि न्याय का अर्थ उभय-सुख सुनिश्चित करना है।

इसलिये, एक उत्पादन प्रक्रिया को सतत् (sustainable), पर्यावरण-अनुकूल और मानव-अनुकूल होने के लिये, प्रक्रिया को:

- चक्रीय
- परस्पर-पूरक
- और मानव के साथ न्याय सुनिश्चित करने वाली होने के आवश्यकता है।

अब हम प्रकृति पर नजर डालते हैं, प्राकृतिक प्रक्रियाओं में पहली दो विशेषतायें तो पहले से ही उपलब्ध हैं, अर्थात् वे चक्रीय हैं और परस्पर-पूरक भी हैं। इनका अध्ययन हम अगले अध्याय में विस्तार से करेंगे लेकिन यहाँ पर इनका परिचय इसलिये करा रहे हैं क्योंकि इनका उपयोग मानव निर्मित प्रक्रियाओं में आवश्यक है।

मिट्टी, पानी, हवा और पौधों को देखिये (चित्र। *9-6*। का संदर्भ लें)। मिट्टी पर पौधे उग रहे हैं। मिट्टी, पानी, हवा एक पौधे के रूप में परिवर्तित हो रहे हैं। जब पत्तियाँ, फल-फूल आदि जमीन पर गिरते हैं, तो वे पुनः मिट्टी में परिवर्तित हो जाते हैं। यहाँ आप देख सकते हैं कि मिट्टी, पौधे में और पौधे, वापस मिट्टी में परिवर्तित हो रहे हैं; अतः यह प्रक्रिया, चक्रीय है।

मिट्टी से पौधे और पौधे से मिट्टी के इस चक्र में पौधे का संवर्धन तो हो ही रहा है, साथ ही साथ मिट्टी भी पहले से अधिक उपजाऊ हो रही है, यानि इसका भी संवर्धन हो रहा है। अर्थात् जब पत्तियाँ, फल-फूल इत्यादि मिट्टी पर गिरते हैं और जब सड़-गल जाते हैं तो, मिट्टी और अधिक

उपजाऊ हो जाती है। यह एक चक्रीय प्रक्रिया है, जिसके परिणामस्वरूप पौधे और मिट्टी दोनों का संवर्धन होता है।

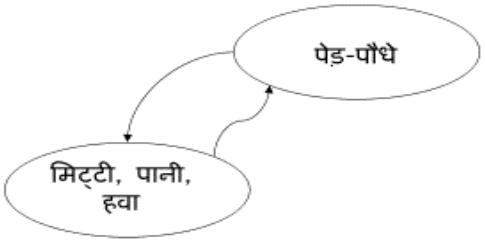

चित्र. 9-6. चक्रीय और परस्पर-संवर्धन की प्रक्रिया

आप देख सकते हैं कि यह प्रक्रिया पहले से ही प्रकृति में चल रही है। हमें इस प्रक्रिया को बनाना नहीं है। हमें सिर्फ इस प्रक्रिया को समझना है। हमने हवा, पानी, मिट्टी और पौधे के बीच इस चक्रीय और परस्पर-संवर्धन को सुनिश्चित करने वाली प्रक्रिया को देखा। इसके साथ यदि अब हम जंगल को देखते हैं तो, इसमें पहली दो अवस्थाओं के साथ-साथ पशु-पक्षी भी शामिल दिखते हैं। पशु-पक्षियों को जीवित रहने के लिये जल और वायु की आवश्यकता है और पशु-पक्षियों का गोबर पौधों के लिये एक अच्छी खाद है। मृदा आधारित कार्बन और वायुमंडलीय कार्बन के संतुलन में पशु-पक्षी और पौधे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि आप इसे गौर से देखें तो मिट्टी, पौधे, पशु और पक्षी सभी जंगल में हैं ही; ये सभी चक्रीय और परस्पर-पूरक विधि से एक दूसरे से जुड़े हुये रहते हैं। मिट्टी, पौधों का संवर्धन करती है, पौधे, पशु-पक्षियों का संवर्धन करते हैं, और पशु-पक्षी, मिट्टी का संवर्धन करते हैं। यह सभी एक दूसरे के साथ आपस में जुड़े हुये हैं एवं परस्पर-संवर्धन और परस्पर-पूरकता के संबंध को सुनिश्चित कर ही रहे हैं।

जंगलों में परस्पर-संवर्धन की यह प्रक्रिया पहले से ही चल रही है। यदि आप इन तीनों समूहों को देखें (चित्र. 9-7. का संदर्भ लें) तो हमें इनके बीच इस परस्पर-पूरक और चक्रीय प्रक्रिया को बनाना नहीं है यह तो पहले से ही इनके बीच चल रही है। इस प्रक्रिया के माध्यम से हमें जंगलों से बहुत सारी चीजें जैसे फल, फूल, औषधि, लकड़ी, पूरे साल जंगलों से आने वाला पानी इत्यादि मिलता रहता है। इस प्रक्रिया को सतत् बनाये रखने के लिये हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता। यह एक शाश्वत यंत्र की तरह चलता हुआ दिखाई पड़ता है, जो हमारी भागीदारी के बिना ही चल रहा है। यह प्रक्रिया चक्रीय है और परस्पर-पूरक भी है, जब तक कि मानव इसमें हस्तक्षेप नहीं करता।

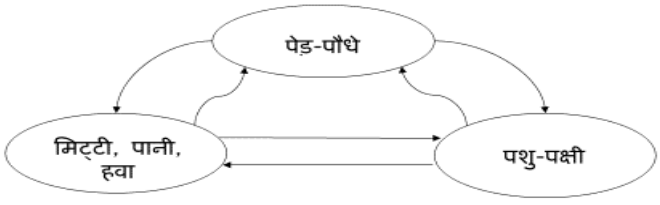

चित्र. 9-7. चक्रीय और परस्पर-संवर्धन की प्रक्रिया

आइये अब देखते हैं कि मानव को इस प्रक्रिया के साथ रख कर देखने से क्या होता है *(चित्र। 9-8। देखें)*। जब हम मानव को इसमें रख कर देखते हैं तो पाते हैं कि मिट्टी, हवा और पानी मानव के लिये पूरकता का निर्वाह कर रहे हैं। हम यह भी देख पाते हैं कि पेड़-पौधे भी मानव

के लिये पूरकता का निर्वाह कर रहे हैं । पशु और पक्षी भी उसी तरह से मानव के लिये पूरकता का निर्वाह कर रहे हैं। जब हम मानव को देखते हैं तो पाते हैं कि इसमें भी तीनों समूहों के लिये परस्पर-पूरक होने की सहज-स्वीकृति है। यदि आप भी स्वयं से पूछें कि आपको क्या सहज-स्वीकार्य है*?* इन तीनों समूहों के साथ परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करना या उनका शोषण करना*?* तो आप देखेंगे कि आपकी सहज-स्वीकृति भी परस्पर-पूरकता के लिये ही है। हालांकि, सही समझ के बिना, हम इस परस्पर-पूरकता का निर्वाह करने में असमर्थ होते हैं। हमें प्रकृति में व्यवस्था और परस्पर-पूरकता को समझकर, हमारी तरफ से भी परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। तभी हम प्रकृति के साथ व्यवस्था में होगें। परस्पर-संवर्धन या परस्पर-पूरकता का आशय मानव में समृद्धि और शेष-प्रकृति की सुरक्षा है।

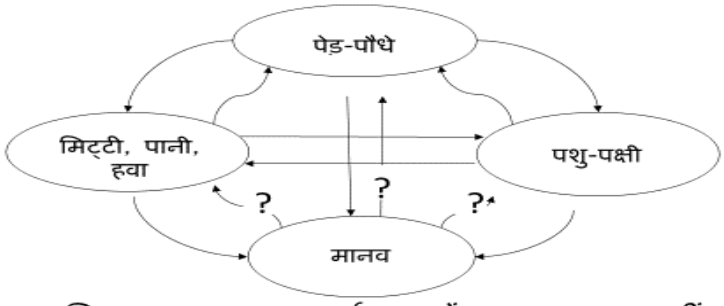

चित्र. 9-8. मानव – वर्तमान में परस्पर पूरक नहीं

शेष-प्रकृति पर मानव के श्रम के परिणामस्वरूप सुविधा का उत्पादन होता है। चक्रीय एवं परस्पर-संवर्धन करने वाली प्रक्रियाओं के द्वारा, शेष-प्रकृति पर मानव अपने श्रम से, अपने लिये प्रचुर मात्रा में सुविधाओं का उत्पादन कर सकता है। प्राकृतिक-कृषि (जंगल के जैसी खेती की एक विधि) चक्रीय एवं परस्पर-संवर्धन को सुनिश्चित करने वाली उत्पादन व्यवस्था का एक उदाहरण है। इस विधि से उत्पादन भी होता है और साथ-साथ मिट्टी भी समृद्ध होती है।

चूंकि हमारी उत्पादन की प्रक्रियायें, प्राकृतिक प्रक्रियाओं के अनुरूप नहीं हैं, इसी कारण हमें संसाधनों का अभाव (resource depletion) और प्रदूषण दिखाई पड़ता है।

संसाधनों का अभाव

संसाधनों का अभाव इस बात का सूचक है कि हमारी, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग करने की दर, प्रकृति में इसके उत्पादन की दर से अधिक है। उदाहरण के लिये, यदि हम पेट्रोलियम का उपयोग, प्रकृति में हो रहे उत्पादन की दर की तुलना में अधिक दर से करेंगे तो पेट्रोलियम उत्पादों की कमी हो जायेगी।

प्रदूषण

इसी प्रकार से प्रदूषण इस बात का सूचक है कि हम कुछ ऐसा उत्पादन कर रहे हैं जो, वापस प्रकृति के चक्र में नहीं जा रहा है, या वस्तु का जिस दर से उत्पादन हो रहा है वह, उसके प्रकृति चक्र में वापस जाने की दर से अधिक है। उदाहरण के लिये, प्लास्टिक का क्षय जल्दी नहीं होता, वह अनेक वर्षों तक प्रकृति-चक्र में वापस नहीं जाता है। आज कार्बन डाइऑक्साइड, जिस दर से उत्सर्जित हो रही है, उस दर से प्रकृति उसको अवशोषित नहीं कर पा रही है। और इसी कारण कार्बन डाइऑक्साइड के प्रतिशत में बढ़ोतरी हो रही है, जो ग्लोबल वार्मिंग के रूप में दिखाई दे रही है।

जब हम यह समझ लेते हैं तो, हम इस प्रकार की उत्पादन प्रक्रियाओं को विकसित करने के लिये प्रतिबद्ध होते हैं, जो चक्रीय हों और परस्पर-संवर्धन को भी सुनिश्चित करने वाली हों *(*चित्र। *9-9*। देखिये*)*। आवश्यक शोध-प्रयासों के माध्यम से, वर्तमान में उपयोग की जा रही प्रक्रियाओं में निम्न संशोधन आवश्यक हैं:

1. सर्वप्रथम, हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमने अब तक जो भी प्रक्रियायें विकसित की हैं, उन्हें चक्रीय और परस्पर-संवर्धन सुनिश्चित करने वाली प्रक्रियाओं में परिवर्तित किया जाये।
2. दूसरा, पहले से जो भी नुकसान हुआ है उसकी भरपाई का कार्यक्रम भी बनाया जाय।
3. तीसरा, यह भी सुनिश्चित करना होगा कि भविष्य में हम जिस भी उत्पादन प्रक्रिया को विकसित करेंगे, वह चक्रीय और परस्पर-संवर्धन को सुनिश्चित करने वाली ही हो।

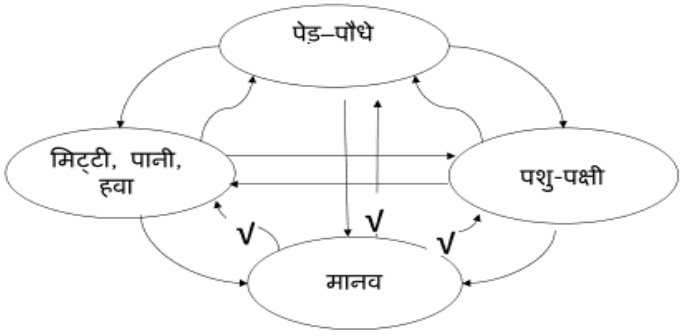

चित्र. 9-9. मानव सही-समझ के साथ परस्पर पूरक हो सकता है

जब हम इसे सुनिश्चित कर पाते हैं, तो आने वाली पीढ़ियों के लिये भी सुविधाओं की आवश्यकता की पूर्ति के बारे में आश्वस्त हो पाते हैं। इसका आशय यह हुआ कि प्रत्येक परिवार समृद्धि सुनिश्चित कर पाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी शेष-प्रकृति की सुरक्षा में भागीदारी भी कर पाता है। यदि ऐसा न हुआ तो कुछ समय के पश्चात संसाधनों की बहुत अधिक कमी हो जायेगी।

समृद्धि की चर्चा करते समय, हमने देखा कि यह आवश्यक सुविधा से अधिक का उत्पादन करने या उपलब्ध होने का भाव है। यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह 'आवश्यकता से अधिक 'सुविधा भोग के लिये नहीं है, बल्कि दूसरों के साथ साझा करने के लिये है एवं हमारे संबंध के निर्वाह की सीमा को बढ़ाने के लिये है; जो कि सामाजिक विकास में सहायक होता है अर्थात् संबंध के विकास में और साथ ही साथ सामाजिक स्तर पर विकास क्रम में यानि सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की तरफ बढ़ने में सहायक होता है।

विश्व की अनेक परंपराओं में इस प्रकार के अनेक अच्छे उदाहरण मिलते हैं। भारत में, परिवार की आय का एक निश्चित भाग, लगभग *10-25%*, समाज में साझा करने के उद्देश्य से रखा जाता था। भारत के अधिकांश भागों और दुनिया के कई हिस्सों में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, मेंहमानों और समाज की भलाई के लिये प्रतिबद्ध लोगों के लिये भोजन उपलब्ध कराने की परंपरा आज भी जीवित है। समाज में अनेक ऐसी व्यवस्थायें अभी भी स्थापित हैं, जिनमें बाहर से गाँव या कस्बों में आने वाले व्यक्तियों के रहने और भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था है। यह आस-पास के व्यक्तियों और परिवारों के वित्तीय योगदान से ही संचालित हो पाता है। इसे सामाजिक विकास के

लिये ही डिजाइन किया गया है। इसी तरह आज भी सामाजिक विकास की दृष्टि से बहुत से व्यक्ति और परिवार मिलकर कई तीर्थ स्थलो में अपना योगदान करते ही रहते हैं। स्वयं सेवा का मूल विचार भी सामाजिक विकास के लिये ही है। आवश्यकता से अधिक सुविधा का उपयोग इन्हीं सबके लिये है।

यह ध्यान देना भी बहुत महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार का आवंटन न केवल सामाजिक विकास के लिये सहायक है, बल्कि यह पारिवारिक और व्यक्तिगत तृप्ति में भी सहायक है- उनमें इस बात के लिये संतुष्टि होती है कि उन्होंने अपने संसाधनों का सदुपयोग किया। साथ ही इससे परिवार में और समाज में कृतज्ञता और गौरव का भाव भी आता है। इसके विपरीत यदि आवश्यकता से अधिक उत्पादन का उपयोग, भोग के लिये किया जाता है; जैसे व्यक्तिगत प्रयोग के लिये नवीनतम मॉडल की कारें या बड़ी-बड़ी इमारतें इत्यादि; तो यह व्यक्ति को अतृप्त करता है एवं दूसरों में ईर्ष्या और विरोध का भाव उत्पन्न करता है।

परस्पर-संवर्धन, उत्पादन-कार्य की प्रक्रियाओं को सुनिश्चित करके, हम हर परिवार में समृद्धि सुनिश्चित करने के साथ-साथ, शेष-प्रकृति की सुरक्षा में भी योगदान दे सकते हैं।

ध्यान देने की महत्वपूर्ण बात यह है कि उत्पादन में विभिन्न तरह की गतिविधियाँ हो सकती हैं। मोबाइल फोन के उत्पादन वाले उदाहरण में हमने देखा था कि इसमें विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। इसी प्रकार खाद्यान्न के उत्पादन के लिये हमें कृषि उपकरणों की आवश्यकता होती है; इनको विकसित करना होगा एवं इनका उत्पादन भी करना होगा। सुचारु रूप से कृषि कार्य को संपादित करने के लिये, हमें संचार हेतु मोबाइल भी आवश्यक है, उत्पादन की बेहतर तकनीकों को सीखने और साझा करने के लिये टीवी आदि की आवश्यकता भी हो सकती है। इसके बाद हमें इन सभी स्तरों पर रखरखाव के लिये, कच्चे माल और तैयार माल की ढुलाई जैसी गतिविधियों की आवश्यकता भी हो सकती है, जिन्हें सेवा क्षेत्र की गतिविधियाँ कहा जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि के साथ विभिन्न उत्पादन गतिविधियों को इस प्रकार से श्रेणीबद्ध किया जा सकता है:

1. प्राथमिक उत्पादन - शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये प्रयोग की जाने वाली सुविधाओं

   का उत्पादन जैसे भोजन, वस्त्र, आवास इत्यादि।

2. द्वितीयक उत्पादन - प्राथमिक उत्पादन को सुगम बनाने के लिये प्रयोग की जाने वाली सुविधा का

   उत्पादन। जैसे ट्रैक्टर, बुनाई मशीनरी, निर्माण सामग्रियों का उत्पादन इत्यादि।

3. तृतीयक उत्पादन - उत्पादन, सेवाओं और मानव संपर्क को सुविधाजनक बनाने के लिये प्रयोग की

   जाने वाली सुविधा का उत्पादन। जैसे ट्रेन, टीवी, मोबाइल इत्यादि।

सेवा क्षेत्र - उपरोक्त गतिविधियों में सहायता करने के लिये अर्थात् ट्रैक्टर, मोबाइल इत्यादि की मरम्मत

करने, सॉफ्टवेयर विकास की सेवायें इत्यादि।

आप यह देख सकते हैं कि इनमें आपके लिये सही वरीयता क्रम क्या है 1-2-3-4 या 4-3-2-1*?* कोई भी सहज ही देख सकता है कि प्राथमिक उत्पादन पहली वरीयता पर है, क्योंकि यह मानव के जीवित रहने के लिये आवश्यक है। द्वितीयक उत्पादन को दूसरी वरीयता पर रख सकते हैं, क्योंकि यह प्राथमिक उत्पादन में सहायक है, इसी तरह से तृतीयक उत्पादन को तीसरी और सेवा क्षेत्र को चौथी वरीयता पर रख सकते हैं। वर्तमान समाज में इसके विपरीत क्रम को महत्व दिया जा रहा है।

न्याय-सुरक्षा

(Justice-Preservation)

न्याय, मानव-मानव संबंध की पहचान, इसका निर्वाह एवं मूल्यांकन है, जिसके फलस्वरूप उभय-सुख होता है।

हमने पहले चर्चा की थी कि मानव-मानव संबंध में भाव मुख्य है। ये भाव निश्चित होते हैं और इनको पहचाना जा सकता है। विश्वास, संबंध में मूल भाव है। विश्वास के बाद सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता एवं प्रेम के भाव आते हैं। प्रेम पूर्ण मूल्य है, यह मानव एवं अस्तित्व की सभी इकाइयों से परस्पर-पूरकता के अर्थ में जुड़े होने का भाव है। प्रेम, कार्य एवं व्यवहार में करुणा के रूप में अभिव्यक्त होता है। अध्याय-8 में हमने इसका विस्तार पूर्वक अध्ययन किया है। यहाँ समाज के स्तर पर हम इसके प्रभावों से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करेंगे।

उदाहरण के लिये, यदि हम बच्चों, बीमारों की सेवा ममता के भाव से करते हैं, तो दोनों ही सुखी होते हैं। इससे जरूरतमंदों की सेवा भी होती है और साथ-साथ सेवा में लगे हुये लोगों की तृप्ति भी होती है। यदि यही कार्य विरोध के भाव से या ममता के भाव के अभाव से किया जाता है, तो यह थकाऊ लगता है और दोनों के लिये दुख का कारण बनता है। यही कारण है कि वृद्धाश्रम, छात्रावास, अनाथालय, अस्पताल इत्यादि केवल सुविधा के आधार पर नहीं चलाये जा सकते हैं। इन सब व्यावस्थाओं को चलाने के लिये ममता और सेवा का भाव होना बहुत आवश्यक है। आप यह भी देख सकते हैं, कि समाज में ऐसी संस्थाओं का प्रसार, पारिवारिक व्यवस्था के टूटने का संकेत है। परंपरागत रूप से वृद्ध पीढ़ी, बच्चों का ध्यान रखती है, विशेष रूप से शिक्षा-संस्कार का ध्यान। और बच्चे वृद्धों की सेवा करते हैं। इस तरह, परिवार के वयस्क सदस्य सुविधाओं के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित कर पाते हैं।
एक मानव के द्वारा, दुसरे मानव के लिये सही-भाव को व्यक्त करने से दोनों ही सुखी होते हैं। उभय-सुख होना ही न्याय है। सार्वजनिक समारोह जैसे त्योहार, उत्सव इत्यादि भावों के आदान-प्रदान एवं व्यक्तिगत और सामूहिक संस्कारों की तरफ ध्यान आकर्षण कराने के अवसर हैं। यदि समाज में न्याय होगा तो इससे समाज में विश्वास सुनिश्चित होगा। जिससे समाज में अभय सुनिश्चित होता है। परिवार से विश्व परिवार तक न्याय सुनिश्चित करना आवश्यक है, इसी से अंततः अखंड समाज की अवधारणा बनती है। न्याय सुनिश्चित करने के लिये हमें निम्न दोनों कार्य करने होंगे*:*

a) अपराधियों को और अन्याय करने से रोकना होगा और साथ ही साथ
b) उनमें न्याय सुनिश्चित करने की योग्यता का विकास भी करना होगा।

इसके बारे में सोचें, वर्तमान व्यवस्था में न्याय हेतु हम स्वयं को बिन्दु (*a*) तक ही सीमित रखते हैं और बिन्दु (*b*) पर ध्यान नहीं देते हैं; परिणामस्वरूप विभिन्न कानूनों, नियमों, नियामकों के होने के उपरांत भी समाज में अन्याय का दोषपूर्ण चक्र चल रहा

है। निःसंदेह हमें कानून, नियम, और नियामक आदि की आवश्यकता तो है ही; लेकिन अस्तित्व संबंधी नियमों के साथ व्यवस्था में होना भी आवश्यक है; न कि उनके साथ विरोध की स्थिति में होना। सही समझ के साथ हम यह देख पाते हैं कि सभी मानव एक परिवार के सदस्य की तरह ही हैं; एक जैसे लक्ष्यों के लिये ही प्रयासरत हैं; आपस में सहयोग पूर्वक जीना चाहते हैं। समाज की व्यवस्था में सहयोग; सबकी एक अंतर्निहित जिम्मेदारी है न कि प्रतिस्पर्धा, संघर्ष या ताकतवर का ही जीवित रहना इत्यादि।

इस संदर्भ में एक घटना जो कि एक कॉलेज के प्रोफेसर के द्वारा साझा की गयी कि उनके कॉलेज के छात्रावास में एक बार 8 छात्र ड्रग्स लेते हुये पाये गये; जो कि उनके कॉलेज में एक दंडनीय अपराध है। इस संदर्भ में एक अनुशासन समिति गठित की गई और उस समिति ने जाँच प्रारंभ कर दी। इससे पहले आमतौर पर इस तरह की बैठकें कुछ ही घंटों में निर्णय लेकर सम्पन्न हो जाती थीं जिसमें नियमानुसार ऐसे मामलों की सूचना पुलिस को दे दी जाती थी और छात्रों को निलंबित कर दिया जाता था। लेकिन, यह समय पहले से थोड़ा अलग था, क्योंकि संस्थान के महानिदेशक के साथ-साथ लगभग 50 शिक्षक जिनमें से अधिकतर इस अनुशासन समिति के सदस्य थे; वे इस घटना से कुछ ही दिन पहले मानवीय मूल्यों की कार्यशाला से गुजर चुके थे। अतः इस बार थोड़ा अलग तरह से विचार-विमर्श हुआ, यद्यपि मीटिंग में कुछ लोगों ने पहले की तरह ही इसी बात का समर्थन किया कि "हमें नियमों का पालन करना चाहिये और इनकी रिपोर्ट पुलिस में करके आठों को निलंबित कर देना चाहिये"। तभी समिति के एक सदस्य ने कहा कि "ये छात्र हमारे संस्थान में अच्छा मानव बनने और व्यावसायिक प्रबंधन सीखने आये थे। हम लोग इन बच्चों के लिये दोनों लक्ष्यों को पूरा नहीं कर पाये और अब यदि इनकी रिपोर्ट पुलिस में करके इन्हें निलंबित करते हैं तो ये अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये कहाँ जायेंगे? क्या वापस समाज में? और क्या समाज उनको अच्छा मानव बनने और व्यावसायिक प्रबंधन हेतु कौशल सीखने के लिये कॉलेज और विश्व-विद्यालय से ज्यादा अच्छा विकल्प है? जैसी इनकी अभी की स्थिति है, क्या समाज इनके लिये सहयोगी होगा और इन्हें इनकी समस्याओं से उबार पायेगा या इनकी स्थिति समाज में जाकर और खराब हो जायेगी; जिससे इन छात्रों के साथ-साथ इनके परिवार का भविष्य भी बर्बाद हो जायेगा? अतः हमें इनकी अच्छा नागरिक बनने में मदद करनी चाहिये। फिर प्रश्न यह बना कि हम यह काम कैसे कर सकते हैं? यह विचार विमर्श लगभग 11 घंटों तक चलता रहा और अंततः उन सभी छात्रों के विकास के अर्थ में निर्णय लिया गया। उन आठों छात्रों के लिये सर्दी की छुट्टियों में काउंसलिंग की व्यवस्था की गयी एवं अगले सेमेस्टर में उन्हें एक शिक्षक के साथ जोड़ दिया गया, जिन्होंने पूरे सेमेस्टर उनके साथ जीवन के लक्ष्य, कार्यक्रम और मानवीय मूल्यों के संबंध में और अधिक चर्चा की। जिससे उन्होंने निरंतर सुख पूर्वक जीने के कार्यक्रम को समझने और जीने के प्रयास शुरु किये बजाय, इसके कि जिंदगी में होने वाले दुखों से भागने के लिये ड्रग्स इत्यादि का सहारा लें। जिससे उन छात्रों में सही कार्यक्रम की दिशा में आंशिक रूप से कार्य शुरु हो गया; परंतु मुख्य सीख तो शिक्षकों को यह मिली कि "शैक्षणिक संस्थान की भूमिका क्या है"। अब अन्य छात्रों के लिये भी उत्साह पूर्वक मानवीय मूल्यों के कार्यक्रम चलाये जाने लगे। जिनके परिणाम स्वरूप अगले कुछ वर्षों में अनुशासनात्मक मामलों की संख्या में काफी कमी हो गई। यदि शिक्षकों में, बच्चों की चाहना पर यह विश्वास है कि "हर बच्चा सही

समझना चाहता है और सही जीना चाहता है" तो शिक्षकों के प्रयास से इस तरह के परिवर्तन को अन्य जगहों पर भी देखा जा सकता है।

न्याय प्रणाली की जिम्मेदारी होगी कि वह न्याय को समझने और उसके अनुसार जीने के लिये हर व्यक्ति में योग्यता के विकास को सुगम बनाये।

न्याय= मानव-मानव संबंध की पहचान, निर्वाह और मूल्यांकन; जिसके फलस्वरूप उभय-सुख होना

अब यदि आप सुरक्षा को देखें तो इसका आशय शेष-प्रकृति के साथ मानव के संबंध को सुनिश्चित करना है।

सुरक्षा = शेष-प्रकृति के साथ मानव के संबंध की पहचान इसका निर्वाह और मूल्यांकन है, जिसके फलस्वरूप उभय समृद्धि होती है।

संक्षेप में, सुरक्षा का आशय पूरी प्रकृति के संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग से है।
सुरक्षा =

- मानव में समृद्धि
- प्रकृति का संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग

हमने समृद्धि के संबंध में विस्तार पूर्वक चर्चा की थी; समृद्धि, आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन या उपलब्ध होने का भाव है। यह सुविधा, शेष-प्रकृति पर मानव के श्रम से उत्पादित होती है। यदि इसका उत्पादन इस विधि से किया जाये कि शेष-प्रकृति भी समृद्ध हो तो शेष-प्रकृति की सुरक्षा भी सुनिश्चित हो जाती है।
संवर्धन का अर्थ, सुविधा की गुणवत्ता और मात्रा में वृद्धि करना है। उदाहरण के लिये यदि गेहूँ के दाने को अनुकूल वातावरण दिया जाये तो वह अनेक गेहूँ के दानों को उत्पन्न करता हैं। मात्रा में यह वृद्धि ही संवर्धन है। गेहूँ की खेती और भोजन के रूप में गेहूँ का प्रयोग करने से मानव में समृद्धि सुनिश्चित होती है और साथ-साथ शेष-प्रकृति का संवर्धन भी होता है।
संरक्षण (Protection) का अर्थ लंबे समय तक सुविधा के उपयोग को सुनिश्चित करना है। संरक्षण में पदार्थ अवस्था का रखरखाव, खनिजों की उपलब्धता, ऋतुओं का संतुलन, मौसम का संतुलन, वायु की गुणवत्ता(250-350 ppm कार्बन डाईऑक्सईड), पर्याप्त वर्षा, अंटार्कटिका की बर्फ का बना रहना, भूमिगत जल संचय इत्यादि सम्मिलित हैं। दैनिक जीवन में संरक्षण बिल्कुल वैसे ही है, जैसे इस पुस्तक को किसी मजबूत कवर अर्थात् आवरण से ढकने पर, इसकी आयु (लाइफ) का पर्याप्त बढ़ जाना; लकड़ी की कुर्सी के ऊपर वार्निश लगाने से इसका प्रयोग लंबे समय तक हो पाना; फटी हुई पतलून की मरम्मत करना; प्राकृतिक खेती करना, जिससे मिट्टी लंबे समय तक खेती के लिये अनुकूल बनी रहे (यह मिट्टी को समृद्ध भी करता रहेगा) इत्यादि।
सदुपयोग का मतलब अपने से बड़ी व्यवस्था के अर्थ में इसका उपयोग करना है। उदाहरण के लिये खाद्यान्न का सदुपयोग, शरीर के पोषण के लिये है, न कि इसे खराब करने के लिये। इसी प्रकार से कलम का सदुपयोग सार्थक बातें लिखने से है। मानव शरीर का सदुपयोग मानव लक्ष्यों की पूर्ति के लिये इसका उपयोग करने से है (जैसा कि हमने अध्याय-7 में देखा था)।

अनुमान यह है कि एक मानव को अपने पूरे जीवन काल में जितनी लकड़ी की आवश्यकता होती है, उसको चार बड़े पेड़ों से पूरा किया जा सकता है। पेड़ वैसे भी जंगल में उग ही रहे हैं और अधिक पेड़ लगाये भी जा सकते हैं। उदाहरण के लिये, साल के पेड़ लगभग 100 वर्षों में परिपक्व होते हैं। उपयोगी लकड़ियों के अन्य पेड़ और कम समय में भी परिपक्व हो जाते हैं। कुछ समय बाद यह वापस मिट्टी में बदल जाते हैं। परिपक्व पेड़ों की कटाई के उपरांत प्राप्त लकड़ी को घर बनाने में उपयोग कर सकते हैं। इस तरह हम सदुपयोग से संवर्धन और सुरक्षा के साथ-साथ, समृद्धि भी सुनिश्चित कर सकते हैं। सोचें कि आप अपने जीवन कल में कितने पेड़ लगा सकते हैं? चार से तो बहुत अधिक लगा सकते हैं न? इस प्रकार यदि आप अपने प्रत्येक जन्मदिन पर एक पेड़ भी लगाते हैं तो, जितना आप उपयोग करते हैं उससे बहुत अधिक पेड़ लगा सकते हैं। निःसंदेह, पेड़ लगाने के बाद लगभग तीन साल तक उसकी देखभाल की आवश्यकता तो होती ही है।

न्याय से समाज में अभय *(विश्वास)* सुनिश्चित होता है और सुरक्षा से प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व सुनिश्चित होता है।

विनिमय का अर्थ है, सुविधा को परस्पर-पूरकता के दृष्टि से साझा करना या आदान-प्रदान करना।

सुविधा परिवार के अंदर या जहाँ तक संबंध की स्वीकार्यता होती है, वहाँ तक साझा होती है। इसके आगे विनिमय होता है। सुविधा के इस विनिमय और साझा करने के माध्यम से, प्रत्येक परिवार के पास वह सब कुछ हो सकता है, जिसकी उसे आवश्यकता है, अर्थात् परस्पर-पूरकता हो सकती है। जब हम एक परिवार या समुदाय के साथ सुविधा का आदान-प्रदान कर रहे होते हैं तो, इसका महत्वपूर्ण पक्ष भाव है या वह दृष्टि है, जिससे आदान-प्रदान किया जा रहा है।

कोष, परस्पर-पूरकता की दृष्टि से सुविधा का संचय करने से है न कि लाभ-उन्माद, संग्रह या शोषण के लिये।

यह कोष, सुविधा के संरक्षण के लिये है, जिससे कि परस्पर-पूरकता के अर्थ में जब भी इसकी आवश्यकता हो इसको उपलब्ध कराया जा सके।

इसको और समझने के लिये निम्नलिखित उदाहरणों पर विचार करें। दो व्यक्ति हैं जिनके पास दो रोटियाँ हैं जो कि उनके लिये पर्याप्त नहीं हैं। वे कैसे इन रोटियों को बाटेंगे। इसके लिये तीन संभावनायें हो सकती हैं:

- वे दोनों ही प्रयास करते हैं कि दोनों रोटी पा सकें, इस प्रयास में वह झगड़ते हैं। और अंत में, दोनों यह सोचते हैं कि चलो एक तो मिल जाये, मिल जाने पर दूसरी लेने का प्रयास करते हैं। अर्थात् वे उपलब्ध भोजन का ज्यादा से ज्यादा भाग लेने का प्रयास करते हैं। यह लेन-लेन का अर्थशास्त्र है। दोनों ही अपने लाभ को अधिक से अधिक करने की कोशिश करते हैं। और दोनों ही दुःखी होते हैं।
- वे दोनों आरम्भ में ही बिना लड़े हुये, तार्किक रूप से यह भी सोच सकते हैं कि चलो दोनों एक-एक रोटी ले लेते हैं, अतः उन्होंने बराबर-बराबर हिस्सा बाँट लिया लेकिन इस तार्किक हल से दोनों को पहली स्थिति कि तुलना में थोड़ा ठीक लगता है लेकिन दोनों में से कोई भी पूरी तरह से तृप्त नहीं हो पाता है। यह लेन-देन का अर्थशास्त्र है।

- अब तीसरी स्थिति यह हो सकती है कि दोनों व्यक्तियों में संबंध का भाव है, जैसे माँ और बच्चे में होता है, वे जानते हैं कि दो रोटियाँ, किसी भी एक व्यक्ति के लिये पर्याप्त नहीं हैं। तो दोनों में से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को दोनों रोटी देने का प्रस्ताव रखता है, जैसे माँ चाहती है कि बेटा दोनों रोटी खा ले और बेटा यह चाहता है कि माँ दोनों रोटी खा ले। अंततः वे आपस में मिलकर यह निर्धारित करते हैं कि दोनों एक-एक रोटी ले लेते हैं; और दोनों आपस मिलकर यह भी निर्धारित करते हैं कि भविष्य में दोनों साथ-साथ काम करेंगे और अधिक रोटियों की व्यवस्था करेंगे; जिससे उन दोनों की आवश्यकता की पूर्ति हो पाये। भौतिक स्तर पर तो तीनों ही स्थितियों में दोनों को एक-एक रोटी ही मिल पाती है; लेकिन इस तीसरी स्थिति में एक दूसरे के लिये जो ममता का भाव है, वह दोनों के लिये तृप्ति का आधार बनता है और दोनों एक दूसरे से शिकायत मुक्त रहते हैं और भविष्य के लिये भी साथ-साथ मिलकर समाधान निकलने का प्रयास करते हैं। यह देन-देन का अर्थशास्त्र है।

  जाँच कर देखिये कि आपके परिवार में किस प्रकार का अर्थशास्त्र कार्य कर रहा है। जब एक दूसरे के लिये स्वीकार्यता होती है तो यह सदैव देन-देन का होता है। परस्पर-पूरकता केंद्र में होती है। लेकिन जब एक दूसरे के लिये स्वीकार्यता का अभाव होता है या विरोध होता है, तो हम कम देकर या कुछ भी न देकर अधिक लेने की सोचते हैं। आप इसका मूल्यांकन कर सकते हैं कि उपरोक्त में से आपको कौन सा तरीका सहज-स्वीकार्य है*?*

  विनिमय-कोष, जब परस्पर-पूरकता की दृष्टि से किया जाता है तो, वह समृद्धि सुनिश्चित करता है और समाज में अभय सुनिश्चित करने की प्रक्रिया में भी सहायक होता है। और दूसरी तरफ यदि वह लाभ उन्माद के लिये या शोषण के लिये किया जाये तो वह समृद्धि के स्थान पर दरिद्रता और समाज में भय का कारण बनता है। लेकिन जब उत्पादन और सदुपयोग का भाव, देने का भाव इत्यादि, हमारे पास-पड़ोस और समाज तक फैलता है तो, ये सब मानवीय व्यवस्था में आश्वस्ति की इकाई बन पाते हैं। ऐसे पास-पड़ोस या समाज में आश्वस्ति का भाव रहता है जो कि, विश्वास के आधार पर अभय को और मजबूती देता है।

मानवीय समाज में व्यवसाय

(Professions in a Human Society)

एक बार जब हम यह समझ लेंगे कि हमारे लक्ष्य और उद्देश्य एक जैसे हैं तो, हम समाज को इस प्रकार से संगठित करेंगे कि इन लक्ष्यों को पूरा करने में आसानी हो। इसके अलावा यदि हम यह देख पाने में सक्षम हो पायें कि हम सभी एक-दूसरे से संबंधित हैं, आपस में जुड़े हैं तो सभी के लिये स्वीकृति का भाव होगा यानि, प्रेम का भाव होगा। इस स्वीकृति के भाव से हम सब मिलकर, इन मानव लक्ष्यों के लिये काम कर पाने में सक्षम हो पायेंगे।

समाज की एक या एक से अधिक व्यवस्थाओं में, मानव की भागीदारी ही व्यवसाय है। हम अपनी भागीदारी का चयन अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार कर सकते हैं। संबंध, भाव और लक्ष्य की एकरूपता से हमारे व्यवसाय भी परस्पर-जुड़ पायेंगे अर्थात् परस्पर-पूरक हो पायेंगे और इस तरह प्रत्येक व्यक्ति समाज व्यवस्था में सार्थक भागीदारी करने में सक्षम हो पायेगा। इसमें शिक्षक, डॉक्टर, किसान इत्यादि सभी शामिल हैं।

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था- परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक

(Harmony from Family Order to World Family Order – Universal Human Order)

समाज, साथ-साथ रहने वाले परिवारों का समूह होता है, जिनके लक्ष्यों में एकरूपता होती है। हर एक स्तर पर व्यवस्था अगले उच्च स्तर की व्यवस्था में योगदान करती है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था में जीते हुये मानव, परिवार में व्यवस्था के लिये योगदान करते हैं। और जो परिवार व्यवस्था में होते हैं वे समाज व्यवस्था के लिये योगदान करते हैं और इस तरह से विश्व परिवार व्यवस्था तक की संकल्पना बनती है, जिसे सार्वभौम मानवीय व्यवस्था कहते हैं।

यदि आप इसे विस्तार रूप में देखने का प्रयत्न करें तो, यह परिवार व्यवस्था से शुरू होता है क्योंकि यही वो सबसे छोटी इकाई है, जिसमें मानव लक्ष्य के सभी आयाम आकार लेना शुरू करते हैं और जहाँ इन पर काम किया जा सकता है। आप घर पर कुछ जिम्मेदारी तो लेते ही हैं जैसे विभिन्न पहलुओं पर अपना दृष्टिकोण साझा करना, खाद्यान्न का उत्पादन करना, भोजन के लिये खरीदारी करना, भोजन पकाना, वस्त्रों की धुलाई करना इत्यादि। जैसा परिवार में होता है, हम वैसा ही जीने की दृष्टि के विकास के लिये कुछ प्रयास करते हैं। इसी प्रकार, जीने से संबंधित कौशल विकास के लिये भी कुछ प्रयास करते हैं जैसे अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत कैसे करें, दूसरों की देखभाल कैसे करें, पड़ोसियों के साथ किस प्रकार से रहें इत्यादि। ये सब संस्कार हैं। परिवार में जागने, सफाई करने, श्रम करने, अभ्यास करने, भोजन करने इत्यादि की कुछ दिनचर्या होती है। ये परिवार में स्वास्थ्य व्यवस्था के भाग होते हैं। इसी तरह से परिवार में प्रत्येक आयाम के लिय कुछ न कुछ प्रयास होते ही हैं। इसी को हम परिवार व्यवस्था कह रहे हैं। परिवार का आधार संबंध और संबंध में भाव है। इसी प्रकार परिवार व्यवस्था का आधार ये विभिन्न आयाम हैं, जिनके आधार में संबंध हैं।

सभी आयामों पर कार्य करने से समाज में मानव लक्ष्यों की पूर्ति होगी। इस पृष्ठभूमि के साथ अब हम मानवीय समाज के दायरे या मानवीय व्यवस्था के दायरे के बारे में बात कर सकते हैं।

इसका दायरा परिवार व्यवस्था से लेकर, विश्व परिवार व्यवस्था तक है। हमने देखा था कि संबंध का दायरा परिवार से लेकर विश्व परिवार तक है। अब हम समाज में व्यवस्था के दायरे को देख सकते हैं कि समाज में व्यवस्था, परिवार व्यवस्था से शुरू होकर विश्व परिवार व्यवस्था तक जाती है।

यदि आप इसे विस्तारित रूप में देखने की कोशिश करते हैं तो, आप पायेंगे कि यह परिवार से शुरू होता हैं क्योंकि, यही वो सबसे छोटी इकाई है जहाँ से सभी आयाम आकार लेना शुरू करते हैं। इसके बाद परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह.....राष्ट्र, और अंततः विश्व परिवार बनता है। आप परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था की ओर बढ़ते हैं, जिससे आप मानवीय व्यवस्था के सभी आयामों को सुनिश्चित करते हैं और परिवार व्यवस्था से लेकर विश्व परिवार व्यवस्था तक सभी मानव लक्ष्यों को पूरा करते हैं।

परिवार व्यवस्था समाज की सबसे छोटी इकाई है। परिवार व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था को इंगित करती है, जिसमें सभी जिम्मेदार व्यक्ति एक साथ एक समान लक्ष्य के लिये जीते हैं। विशेष रुप से, परिवार निम्नलिखित प्रयास करता है:

- अगली पीढ़ी सहित, परिवार के प्रत्येक सदस्य में सही समझ और सही-भाव (विश्वास, सम्मान इत्यादि) के परस्पर विकास के लिये प्रयास करते हैं, जिससे उभय-सुख होता है।

- परिवार के सदस्य श्रम पूर्वक आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन में भागीदारी करते हैं जिससे, समृद्धि सुनिश्चित होती है।
- अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करके मानवीय समाज में योगदान करते हैं।

परिवार समूह व्यवस्था अगली बड़ी इकाई है। यह वो व्यवस्था है जिसमें, परिवार समूह व्यक्तिगत एवं परिवार के उन लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक होते हैं जिनके लिये परिवार के सदस्यों की तुलना में ज्यादा लोगों की आवश्यकता होती है। ग्रामीण क्षेत्र के एक घर की छत की मरम्मत के कार्य को एक विशेष उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। जिसमें घर के मालिक को सिर्फ गाँव के बुजुर्गों को सूचित करना होता है कि छत की मरम्मत होनी है और इसके लिये एक दिन निश्चित करना होता है। गाँव के लोग अपने कार्यों से समय निकालकर नियत समय पर एकत्रित होकर मरम्मत कार्य को पूरा करते हैं। घर का मालिक केवल सभी के लिये उत्सव भोज का आयोजन करता है। भारत में परंपरागत रूप से ऐसा होता रहा है। इसी तरह से, हम आज भी देख सकते हैं कि यदि किसी परिवार में शादी होती है तो संबंधित परिवार समूह मिलकर इसकी व्यवस्था करते हैं, मेहमानों की देखभाल करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि, शादी समारोह व्यवस्थित रूप से आयोजित हो पाये। हम यह भी देख सकते हैं कि इन परिवारों के लक्ष्यों में तालमेल होता है - सभी समान मानव लक्ष्य के लिये प्रयास कर रहे होते हैं। इसके आधार में संबंध का भाव होता है। कौशल के स्तर पर पूरकता का भाव होता है और प्रत्येक आयाम में जिम्मेदारी का एक सहज विभाजन होता है। प्रत्येक परिवार के चयनित परिवार प्रतिनिधि के माध्यम से परिवारों के बीच बातचीत के लिये एक प्रणाली, सभी कार्यों के लिये उचित योजना सुनिश्चित करती है। यहाँ इन सब को एक साथ रखकर परिवार समूह के रूप में संदर्भित किया जा रहा है।

परिवार व्यवस्था और परिवार समूह व्यवस्था परस्पर-पूरक हैं। परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक पहुचनें के लिये क्रमिक रूप से बड़ी और बड़ी व्यवस्था और उनकी पूरकता का दायरा नीचे इंगित किया गया है।

विषय क्षेत्र -परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था-सार्वभौम मानवीय व्यवस्था

(Scope – From Family Order to World Family Order (Universal Human Order))

परिवार व्यवस्था ⇒ परिवार समूह व्यवस्था ⇒ ग्राम व्यवस्था ⇒ ग्राम समूह व्यवस्था ⇒ शहर व्यवस्था ⇒..... राष्ट्र व्यवस्था ⇒ विश्व परिवार व्यवस्था

इस तरह, हर मानव की अपनी एक योग्यता है और सामाजिक व्यवस्था में एक या एक से अधिक आयामों में उसकी भागीदारी है। सभी की सार्थक भागीदारी है, परिवार व्यवस्था में; परिवार व्यवस्था से परिवार समूह व्यवस्था में और इसी तरह बढ़ते हुये राष्ट्र परिवार व्यवस्था में और अंततः विश्व परिवार व्यवस्था में। मानवीय समाज में व्यवस्थाओं का यही दायरा है।

सही समझ के सहज निष्कर्ष

(Natural Outcome of Right Understanding)

अब यदि आप मानव की मूल चाहना एवं इनकी पूर्ति को देखें तो:

सुख की सुनिश्चितता, 'स्वयं (मैं)' में सही समझ और सही-भाव से होती है।

समृद्धि, आवश्यकता से अधिक सुविधा के उपलब्ध होने का भाव है। इसमें सुविधा के साथ-साथ, आधार रूप में सही समझ भी आवश्यक है।

सुख-समृद्धि से रहने की परंपरा, परिवार व्यवस्था से शुरू होती है और अंततः इसकी निरंतरता, सार्वभौम मानवीय व्यवस्था से सुनिश्चित होती है।

अतः, एक अर्थपूर्ण जीवन का आशय यह है कि हम उपरोक्त के लिये प्रयास करें। यदि हम व्यवस्था में हैं तो परिवार व्यवस्था में योगदान कर सकते हैं। और जिन परिवारों में व्यवस्था है, वह परिवार मिलकर एक ऐसा परिवार समूह बना सकते हैं, जिसमें भी व्यवस्था हो। और इन परिवार समूह व्यवस्थाओं से मिलकर विश्व परिवार व्यवस्था बनती है, जिसे हम सार्वभौम परिवार व्यवस्था कह रहे हैं, यही समाज में व्यवस्था का अर्थ है।

इससे पहले हमने अध्याय-7 में जो चर्चा की थी, वह स्वयं के स्तर पर विकास के बारे में थी। अध्याय-8 में हमने मानवीय परिवार के बारे में चर्चा की थी और इस अध्याय में मानवीय समाज के बारे में चर्चा की। समग्र संक्रमण(परिमार्जन) जो होना है, उसको इस तरह से देख जा सकता है- पहला व्यक्तिगत स्तर पर जीव चेतना से मानव चेतना में संक्रमण(परिमार्जन), और दूसरा, सामूहिक स्तर पर अमानवीय-समाज से मानवीय-समाज में संक्रमण(परिमार्जन)। समग्र समाधान के लिये इस समग्र संक्रमण(परिमार्जन) की आवश्यकता है; केवल टुकड़ों-टुकड़ों में होने वाला समाधान समाज व्यवस्था के लिये पर्याप्त नहीं है।

उदाहरण के लिये भ्रष्टाचार एक समस्या है। इसके विरुद्ध अनेक आंदोलन होते रहते हैं, भ्रष्टाचार के विरुद्ध अनेक नियम, कानून और अधिनियम भी हैं। भ्रष्ट व्यक्तियों से निपटने के लिये पुलिस, न्यायालय, जेल इत्यादि अनेक विभाग हैं। सदाचार और नैतिकता, स्कूल और कॉलेज में पढ़ाई भी जाती है। समाज में इस प्रकार के अनेक प्रयत्न हो ही रहे हैं। इसके उपरांत भी भ्रष्टाचार हो रहा है। अतः हम यह कह सकते हैं कि भ्रष्टाचार एक गंभीर बीमारी का लक्षण मात्र है। इन लक्षणों को टुकड़ों में निपटाने का प्रयत्न करना या दबाना पर्याप्त नहीं है आवश्यकता है, एक समग्र समाधान की।

समग्र समाधान के लिये प्रयास, कितना भी छोटा क्यों न हो, इसकी पृष्ठभूमि में समग्र दृष्टि का होना आवश्यक हैं:

1. वस्तुओं को समग्र से समझना, समग्र दृष्टि को विकसित करना (शिक्षा-संस्कार के माध्यम से)। उदाहरण के लिये, हमें व्यक्तिगत आधार पर अपनी मूल चाहनाओं के बारे में स्पष्टता होना आवश्यक है। और समाज के स्तर पर अपने लक्ष्यों की स्पष्टता आवश्यक है।
2. प्रयास:

- मानव चेतना और निश्चित आचरण से जीने के लिये व्यक्तिगत संक्रमण(परिमार्जन)।
- मानवीय समाज के लिये सामाजिक संक्रमण(परिमार्जन) अर्थात् परिवार और समाज में समग्र मानव लक्ष्य के लिये प्रयास।

इस पृष्ठभूमि के साथ, भ्रष्टाचार जैसे लक्षणों से ठीक से निपटा जा सकता है।

1. लक्षणों की जड़ की पहचान की जा सकती है। भ्रष्टाचार, शासन, शोषण इत्यादि अमानवीय आचरण के लक्षण हैं। वास्तविक समस्या तो अमानवीय आचरण की है।
2. इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिये, मानवीय आचरण के विकास का प्रयास करना आवश्यक है। निःसंदेह जब तक समाज में मानवीय आचरण विकसित करने की क्षमता नहीं होती, तब तक वर्तमान प्रयासों (कानून, नियम और अधिनियम, पुलिस, न्यायालय,

जेल इत्यादि) को भी जारी रखना आवश्यक है। लेकिन यह लक्षण को दबाने के अस्थाई प्रयास मात्र हैं।

चित्र.9-10. का संदर्भ लीजिये। मानवीय शिक्षा, मानव को, मानव चेतना के साथ जीने के लिये तैयार करेगी। ऐसे व्यक्ति, मानवीय मूल्यों के साथ जी पायेंगे और इनमें मानवीय आचरण होगा। मानवीय आचरण के साथ जीने वाले व्यक्ति अंततः मानवीय समाज को बढ़ावा देंगे। इस प्रकार का मानवीय समाज, स्वाभाविक रूप से अगली पीढ़ी को मानवीय शिक्षा प्रदान करेगा और इस प्रकार से मानवीय समाज की निरंतरता सुनिश्चित होती रहेगी।

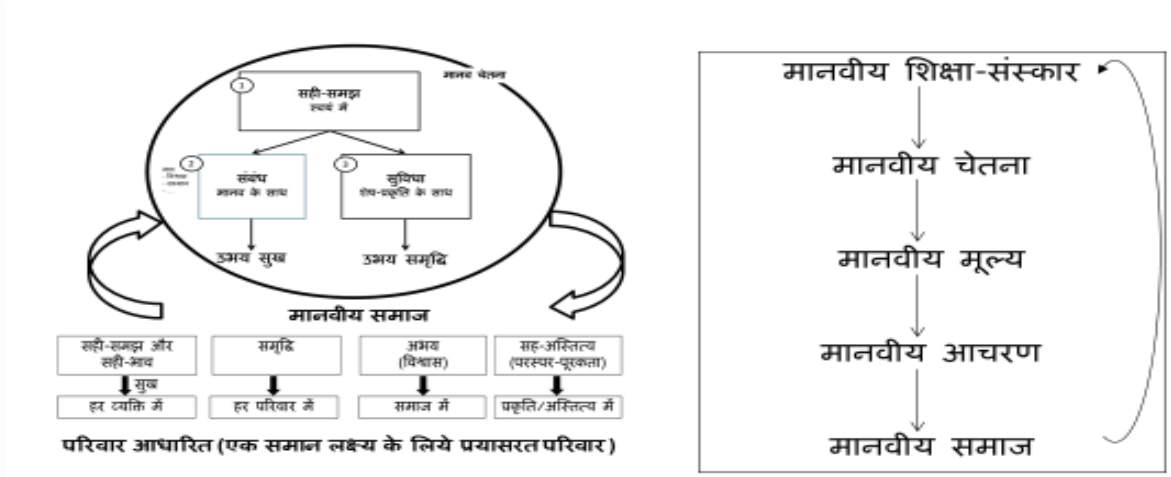

चित्र. 9-10. मानवीय शिक्षा और मानवीय समाज के बीच अंतर्संबंध

यह समाज में व्यवस्था के बारे में और अंततः सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के बारे में प्रस्ताव है। अब आप अपने लिये इसकी जाँच कर सकते हैं कि क्या यह आपको सहज-स्वीकार्य है और यह भी देखें कि क्या ऐसा करना संभव है।

समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य)

(My Participation (Value) in the Society)

समाज में व्यवस्था के लिये प्रयास करना

समाज, ऐसे परिवारों का समूह है; जो साथ-साथ रहते हैं; और एक समान मानव लक्ष्य के लिये प्रयास करते हैं। ये परिवार व्यवस्था से लेकर विश्व परिवार व्यवस्था तक परस्पर-जुड़े हुये होते हैं और परस्पर-निर्भर भी होते हैं।

समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य), समाज के बारे में स्पष्टता एवं इसके लक्ष्यों, कार्यक्रमों और दायरे की स्पष्टता को विकसित करना है; और इसके साथ परिवार व्यवस्था और उसके बाद बड़े समाज व्यवस्था में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है।

परिवार व्यवस्था में मेरी भागीदारी (मूल्य) है:

- परिवार में सुख सुनिश्चित करने के लिये परिवार के प्रत्येक सदस्य, विशेषकर अगली पीढ़ी के सदस्यों में सही समझ और सही-भाव के विकास में सहायता करना।

- परिवार में प्रत्येक सदस्य के शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के माध्यम से उनके स्वास्थ्य को सुनिश्चित करना।
- परिवार में समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिये, परिवार के प्रत्येक सदस्य की सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने एवं इसके उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग करने में सहायता करना।
- परिवार में एक या एक से अधिक सदस्यों का बड़े समाज में एक या एक से अधिक मानवीय व्यवस्था के आयामों में भागीदारी के लिये उपलब्ध होने में सहयोग करना।
- बड़े समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य) है।
- मानवीय व्यवस्था के एक या एक अधिक आयामों (शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम, उत्पादन-कार्य, न्याय-सुरक्षा और विनिमय-कोष) में भूमिका निभाना।

इस प्रकार, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सुख, प्रत्येक परिवार में समृद्धि, समाज में अभय (विश्वास), प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) सुनिश्चित होता है। समाज में मेरी यही भागीदारी (मूल्य) है।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- समाज एक साथ जीने वाले परिवारों का समूह है, जिनके लक्ष्य(मानव लक्ष्य) एक समान होते हैं। व्यवस्थित समाज का आधार परिवार में व्यवस्था है, जिसका आधार मानव में व्यवस्था है।
- समाज में रहने वाले मानव के लक्ष्य हैं:
    1. प्रत्येक व्यक्ति में सही समझ और सही-भाव(सुख)।
    2. प्रत्येक परिवार में समृद्धि ।
    3. समाज में अभय (विश्वास)।
    4. प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता)।

जिससे इन लक्ष्यों की पूर्ति होती है, वह सही वरीयता क्रम 1 से 4 है। बिना सही समझ और सही-भाव के सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना संभव नहीं है, अत: समृद्धि से पूर्व सही समझ और सही-भाव होना आवश्यक है। इसी प्रकार से संबंध की स्वीकार्यता और प्रत्येक परिवार में समृद्धि के साथ ही अभय हो पाता है। चौथे लक्ष्य की पूर्ति तो इन पहले तीनों लक्ष्यों की पूर्ति के परिणाम स्वरूप एक सहज प्रतिफल के रूप में होती है।

- चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति के लिये ये पाँच व्यवस्थायें या आयाम आवश्यक हैं:
    - शिक्षा-संस्कार
    - स्वास्थ्य-संयम
    - उत्पादन-कार्य
    - न्याय-सुरक्षा
    - विनिमय-कोष

- यदि परिवार में इन लक्ष्यों के लिये प्रयास हो तो परिवार में व्यवस्था होती है। दूसरे शब्दों में यही परिवार व्यवस्था है। समाज, परस्पर-पूरकता के संबंध के आधार पर एक साथ रहने वाले कई परिवारों का समूह है। समाज में व्यवस्था का क्षेत्र परिवार व्यवस्था से प्रारंभ होता है और यह विश्व परिवार व्यवस्था तक निश्चित चरणों के माध्यम से पहुंचता है। जैसे कि परिवार व्यवस्था से परिवार समूह व्यवस्था और इसी तरह राष्ट्र परिवार व्यवस्था और अंततः विश्व परिवार व्यवस्था। व्यवस्था का यह प्रसार, परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक, सार्वभौम मानवीय व्यवस्था कहलाता है।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1 स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-Evaluation)

(क्या आपने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. मानवीय व्यवस्था के क्या-क्या आयाम हैं? मानव लक्ष्य की पूर्ति में यह आयाम किस प्रकार से सहायक हैं, यह भी विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये?
2. क्या कोई विशेष अनुक्रम है, जिसके अनुसार इन लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है? इसकी व्याख्या करें।
3. प्रथम मानव लक्ष्य की पूर्ति में शिक्षा और संस्कार की क्या भूमिका है? शिक्षा और संस्कार के बीच के अंतर को भी स्पष्ट कीजिये।
4. उत्पादन के आयाम से सम्बन्धित कौन से दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं? किन्हीं दो उदाहरणों से समझाइये।
5. उदाहरण देते हुये समझाइये कि प्रदूषण और संसाधनों का अभाव दोनों ही 'प्रकृति जैसी है वैसी न समझ पाने का' प्रत्यक्ष परिणाम हैं।
6. भौतिक वस्तुओं का विनिमय परस्पर-पूरक कैसे हो सकता है? आज के परिदृश्य में विनिमय के लक्ष्य का मूल्यांकन कीजिये।
7. सुरक्षा के तीनों पहलुओं पर टिप्पणी लिखें।
8. तीनों प्रकार के उन्माद क्या हैं। उनकी सूची बनाइये। समाज में अपने अवलोकन के आधार पर प्रत्येक के तीन-तीन उदाहरण दीजिये।
9. समाज में कोष क्यों आवश्यक है? भविष्य में उत्पाद के सदुपयोग के लिये कोष की दो विधियाँ बताइये।
10. समाज में व्यवस्था को बढ़ावा देने एवं प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिये कुछ चरणों को चिन्हित करें।
11. सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था का क्या अर्थ है? इसका दायरा क्या है? परिवार व्यवस्था किस प्रकार से सार्वभौम मानवीय व्यवस्था से जुड़ी हुई है स्पष्ट करें?

अनुभाग- 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-Exploration)

शिक्षा, मानवीय समाज का सबसे महत्वपूर्ण आयाम है। अब सही समझ और कौशल की अपनी वर्तमान स्थिति का ठीक से मूल्यांकन कीजिये:

a. समझ

1. स्व-अनुशासन, जानने पर आधारित -आपकी सहज-स्वीकृति के आधार पर जीना या
2. मनमानी, बिना जाने ही मान्यता पर आधारित - विवेक हीनता, मुख्यतः पूर्व मान्यताओं और संवेदनाओं के आधार पर जीना

b. संबंध के बारे में समझ और कौशल

1. आप में निरंतर, बिना शर्त के विश्वास, सम्मान.....प्रेम का भाव होना। आप में इन भावों को व्यक्त करने का कौशल होना। आपका सही भावों से युक्त होकर परिवार में एक अच्छा बेटा या बेटी, एक अच्छा पति या पत्नी आदि के रूप में जी पाना, और समाज में एक अच्छे नागरिक की तरह तैयार हो पाना। या
2. आपमें विरोध ईर्ष्या या डर जैसे भाव का कभी-कभी या हर समय होना। स्वयं को व्यक्त करने के लिये आप में व्यवहार कौशल, प्रतिक्रिया के रूप में या जिम्मेदारी के रूप में होना।

c. सुविधा से जुड़े हुये समझ और कौशल।

1. आपको अपनी सुविधाओं की आवश्यकता की ठीक-ठीक समझ है। किसी वस्तु का चक्रीय और परस्पर-पूरक विधि से उत्पादन करने की मानसिकता आपमें है। आपमें सुविधा के सदुपयोग की सही समझ है। आपकी मानसिकता आपस में सुविधा को साझा करने की है। आप व्यवस्था के एक या एक से अधिक आयामों में (जैसे शिक्षा-संस्कार के लिये शिक्षक के रूप में, स्वास्थ्य-संयम में डॉक्टर के रूप में, उत्पादन-कार्य में एक किसान के रूप में) परस्पर-पूरकता के अर्थ में भागीदारी करने के लिये तैयार हैं। या
2. आप अपनी तरफ से श्रम करके ज्यादातर सुविधाओंको अपनी तकनीकी, प्रबंधकीय और व्यवहारिक कौशल के द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं।
3. आने वाले 3 वर्षों में आप कहाँ पहुंचना चाहते हैं? इसके लिये आपको शिक्षा (परिवार, समाज, या संस्थान द्वारा) से क्या जानकारियाँ मिलना आवश्यक हैं? आप अपने लिये इन जानकारियों को सुनिश्चित करने के लिये क्या भूमिका निभा सकते हैं? आने वाले समय में आप दूसरों के लिये इन जानकारियों को सुनिश्चित करने हेतु क्या भूमिका देख पाते हैं?
4. अपने भविष्य के बायोडाटा में कार्यस्थल और समाज वाले भाग को नवीनीकृत कीजिये। इसमें आप यह भी सुनिश्चित करिये कि आप अपने स्तर पर समझ और कौशल को सम्मिलित कर रहे हैं।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का 'स्वयं (मैं)' में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"मानव लक्ष्य, मानवीय व्यवस्था के आयाम और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था का दायरा (परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक)

मानवीय शिक्षा-संस्कार →मानवीय आचरण → मानवीय मूल्य → अखंड समाज और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था"

अनुभाग-4 आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिए। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तर हुआ है, तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को 'स्वयं (मैं)' के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-10

प्रकृति में व्यवस्था – अंतर्संबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर-पूरकता को समझना

(Harmony in Nature – Understanding the Interconnectedness, Self-control and Mutual Fulfilment)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9 ✓
☞ प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	**अध्याय 10-11**

समझने की प्रक्रिया

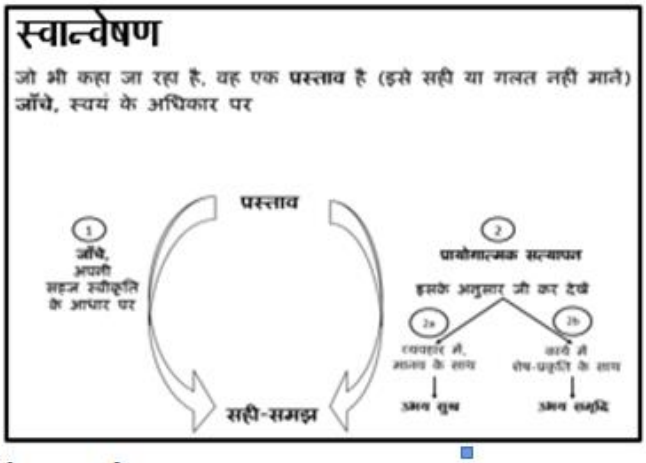

regulation and

Mutual Fulfilment

पुनरावृत्ति
(Recap)

हमने स्व-अन्वेषण, मानव की मूल चाहनाओं और उनकी पूर्ति के कार्यक्रम को समझने से प्रारंभ किया था। हमने देखा था कि मानव की मूल चाहना- सुख, समृद्धि और उसकी निरंतरता है। हमने अपनी सहज स्वीकृति का अध्ययन किया और यह भी समझा कि सुख का अर्थ स्वयं में व्यवस्था है। इसलिये सुख की निरंतरता अर्थात् व्यवस्था की निरंतरता को सुनिश्चित करने के लिए हमें न केवल स्वयं में व्यवस्था को समझना होगा, बल्कि अपने जीने के सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था को भी समझना होगा। एक बार जब हम इन सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझ लेते हैं तो, हम इन चारों स्तरों पर व्यवस्था में जी भी पाते हैं। अभी तक हमने पहले तीन स्तरों अर्थात् मानव, परिवार और समाज में व्यवस्था का अध्ययन किया है।

हमने यह भी देखा है कि मानव के रूप में हमारी सहज-स्वीकृति परिवार में और समाज में व्यवस्था पूर्वक जीने के लिये ही है। अब प्रश्न यह है कि **"क्या इन तीनों स्तरों पर व्यवस्था में जीना संभव है?"** निःसंदेह हमारी इच्छा इसी के लिये है; हमारी सहज स्वीकार्यता भी इसी के लिये है; लेकिन क्या ऐसा जी पाना संभव है? क्या प्रकृति में ऐसा जी पाने का अवसर और संभावनाएं हैं? दूसरे शब्दों में क्या प्रकृति/ अस्तित्व में ऐसा प्रावधान है कि हम अपनी सहज-स्वीकृति के अनुसार जी पायें? क्या यह संभव है कि हम मानव के रूप में, परिवार में, समाज में, प्रकृति और अंततः समग्र अस्तित्व में व्यवस्था पूर्वक जी पायें?

आपको क्या लगता है- प्रकृति और अस्तित्व में संबंध, व्यवस्था और परस्पर-पूरकता अंतर्निहित है? या विरोध, संघर्ष और "ताकतवर का अस्तित्व में बने रहना" (struggle and survival of the fittest) ही प्रकृति/अस्तित्व की बनावट है?

यदि प्रकृति और अस्तित्व में संबंध और परस्पर-पूरकता है, तभी मानव का चारों स्तरों पर व्यवस्था में जीना संभव हो पायेगा। दूसरी तरफ, यदि प्रकृति में विरोध या संघर्ष है तो मानव भी विरोध और संघर्ष पूर्वक ही जीने के लिये बाध्य होगा।

इस अध्याय में हम प्रकृति की मूल संरचना (basic underlying design) का अध्ययन करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि प्रकृति में व्यवस्था है या अव्यवस्था।

कक्षा 10 के अध्याय 10 "प्रकृति में व्यवस्था" के अंतर्गत, इकाइयों के समूह के रूप में प्रकृति में इकाइयों के समूह को चार अवस्थाओं (पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था,ज्ञान अवस्था) में वर्गीकरण कर विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया।चारों अवस्थाओं के बीच परस्पर पूरकता के निर्वाह को देखा गया और उसमे स्व-नियंत्रण की प्रक्रिया को परस्पर संवर्धन के रूप में देखा गया।अब हम प्रकृति में व्यवस्था की विस्तृत चर्चा करेंगे।

चारों अवस्थाओं को समझना
(Understanding the Four Orders)

अब हम चारों अवस्थाओं में से प्रत्येक के गुण और उनकी मूल पहचान को देख सकते हैं, जिनके आधार पर इकाइयों का वर्गीकरण किया गया है।
चित्र. 10-6 में हम चारों अवस्थाओं का विवरण देख सकते हैं। प्रत्येक अवस्था की इकाइयों के उदाहरण (दूसरे कॉलम में), उनकी क्रियाएं (तीसरे कॉलम में), उनकी प्रकृति सहज धारणायें

(चौथे कॉलम में), उनका स्वभाव (पांचवे कॉलम में) और उनकी अनुषंगीयता (अंतिम छठे कॉलम में) दिखाये गये हैं।

चारों अवस्थाओं की क्रियायें

(Activity in the Four Orders)

हम प्रत्येक अवस्था की कुछ निश्चित क्रियाओं को पहचान सकते हैं। पदार्थ-अवस्था की इकाइयों की पहचान संघटन-विघटन की क्रिया से होती है; उदाहरण के लिये यदि लोहे का एक टुकड़ा वायु के संपर्क में आ जाये तो, इस पर कुछ समय के पश्चात जंग लग जाता है; यहाँ लोहा ऑक्सीजन एवं नमी की उपस्थिति के कारण आयरन ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार आयरन ऑक्साइड का संघटन हुआ एवं लोहा, ऑक्सीजन और जल का विघटन हुआ। एक अन्य उदाहरण लेते हैं, यदि एक निश्चित ताप और दाब पर ऑक्सीजन और हाइड्रोजन एक साथ मिल जाते हैं तो जल का निर्माण होता है। इस स्थिति में जल का संघटन हुआ जबकि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का विघटन हुआ। संघटन-विघटन की क्रिया के द्वारा पदार्थ-अवस्था की एक इकाई, दूसरी इकाई में परिवर्तित हो जाती है।

प्राण-अवस्था में संघटन-विघटन के अतिरिक्त श्वसन-प्रश्वसन (श्वास लेना और बाहर छोड़ना) की क्रिया भी होती है; उदाहरण के लिये पेड़-पौधों में संघटन-विघटन की क्रिया होती है और साथ ही विभिन्न परिवर्तनों के रूप में अनेक रासायनिक क्रियायें भी होती रहती हैं। नये अणु और कोशिकायें बनती रहती हैं, जबकि कुछ का विघटन भी होता रहता है इसके साथ ही पौधे श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया भी करते रहते हैं। श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया में एक प्रकार की गैस को अंदर लिया जाता है और दूसरी प्रकार की गैस को बाहर छोड़ा जाता है। ऐसा एक भी पौधा ढूंढ पाना कठिन है जिसमें श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया न होती हो; जबकि लोहे का कोई भी टुकड़ा या पदार्थ-अवस्था की कोई दूसरी इकाई ढूंढ पाना कठिन है जिसमें श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया होती हो।

प्राण-अवस्था की पहचान श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया के आधार पर होती है। संघटन एवं विघटन की क्रिया प्राण-अवस्था एवं पदार्थ-अवस्था दोनों में ही होती है, लेकिन प्राण-अवस्था में पदार्थ-अवस्था की तुलना में श्वसन-प्रश्वसन एक विशिष्ट क्रिया के रूप में है।

जीव-अवस्था, में मैं और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। पशु-पक्षियों में मैं की उपस्थिति का क्या सूचक है? जब हम मानव के मैं और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में चर्चा कर रहे थे तब हमने यह देखा था कि शरीर (जड़ इकाई) का निर्वाह, केवल पहचानने और निर्वाह-करने की क्रिया के रूप में होता है, जबकि स्वयं (मैं) का निर्वाह कम से कम मानने, पहचानने और निर्वाह-करने की क्रिया के रूप में होता है। मानने की क्रिया ही वह मूल सूचक है, जो यह दर्शाता है कि 'शरीर' के साथ स्वयं भी जुड़ा हुआ है। इस तरह की इकाइयों में जैसे ही मानना बदलता है, उनका निर्वाह करना भी बदल जाता है ।

चार अवस्थायें	इकाई	क्रिया	धारणा	स्वभाव	अनुषंगीयता
पदार्थ अवस्था	मिट्टी, धातु...	रचना–विरचना	अस्तित्व	संघटन-विघटन	परिणाम-अनुषंगी
प्राण अवस्था	पेड़, पौधे ...	"-" + - श्वसन	" + पुष्टि	" + सारक-मारक	बीज-अनुषंगी
जीव अवस्था	पशु, पक्षी ..	"-", " शरीर में चयन-आस्वादन (स्वयं में)	", " शरीर में जीने की आशा (स्वयं में)	", " शरीर में क्रूरता, अक्रूरता (स्वयं में)	वंश-अनुषंगी
ज्ञान अवस्था	मानव	";", " शरीर में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन (स्वयं में) चिंतन, बोध, अनुभव की क्षमता (स्वयं में)	", " शरीर में निरन्तर सुख पूर्वक जीने की आशा (स्वयं में) सही-समझ, सही भाव और विचार (स्वयं में)	", " शरीर में धीरता, वीरता, उदारता दया, कृपा, करुणा (स्वयं में)	शिक्षा – संस्कार अनुषंगी

चित्र. 10-6. चारों अवस्थाओं का विवरण

उदाहरण के लिये यदि आप बाजार से एक कुत्ता खरीद कर लाएँ और कुछ दिनों के लिये उसे भोजन और आवास उपलब्ध कराएं तो वह आपके और अन्य लोगों के बीच भेद करने लग जाता है। जब आप घर के अंदर प्रवेश करते हैं तो वह अपनी पूँछ हिलाना शुरू कर देता है और जब कोई दूसरा आता है तो वह भौंकने लगता है। यहाँ पर क्या हो रहा है? कुत्ते का मानना आपके प्रति कुछ ही दिनों में बदल गया, क्योंकि आप उसे भोजन दे रहे हैं, वह अब आपको अपने मित्र के रूप में जबकि दूसरों को बाहरी व्यक्ति के रूप में मानने लग जाता है। निर्वाह-करने में यह परिवर्तन, उसके मानने में हुये परिवर्तन के कारण ही हुआ है। स्वयं की उपस्थिति के सूचक के रूप में 'मानना' की क्रिया है।' मानना' में परिवर्तन के कारण निर्वाह- करने में होने वाला यह परिवर्तन पेड़- पौधों में नहीं पाया जाता है।

चूंकि जीव-अवस्था की इकाई स्वयं(मैं)और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है, इसलिये जीव-अवस्था का अध्ययन करने के लिए हमें उसके 'शरीर' के साथ-साथ का अध्ययन करना भी आवश्यक है। यह ध्यान देना बहुत महत्वपूर्ण है कि पशु का 'शरीर' मूलतः प्राण-अवस्था की ही एक इकाई है, जब हम उसके 'शरीर' की क्रियाओं को देखते हैं, तो इसमें संघटन एवं विघटन के साथ-साथ श्वसन-प्रश्वसन की क्रियायें भी दिखाई देती हैं। बिल्कुल पेड़-पौधों की क्रियाओं की ही तरह (प्राण-अवस्था की इकाई)। पशुओं के 'शरीर' के कोशिकाओं में अणुओं का संघटन-विघटन होता रहता है। पशु का 'शरीर' श्वसन-प्रश्वसन के समय ऑक्सीजन की अधिकता वाली वायु को अंदर लेता है और कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकता वाली वायु को बाहर छोड़ता है। पशुओं के 'शरीर' में संघटन-विघटन एवं श्वसन-प्रश्वसन की क्रियायें चलती रहती हैं।

पशु-शरीर के साथ जुड़े हुये स्वयं में चयन-आस्वादन की क्रिया प्रमुख है। पशु विशिष्ट प्रकार का भोजन और आवास अपने लिये चयन करते हैं, जो कि उनके 'शरीर' के लिये अनुकूल हों।

यदि हम एक गाय को देखें तो हम यह पायेंगे कि गाय उस घास को खाना पसंद करती है, जो उसके 'शरीर' का पोषण करे। क्योंकि गाय शाकाहारी है, इसलिय वह मांस खाने का चयन नहीं करती है। इसी प्रकार से यदि आप गाय को भोजन दें, तो वह आपके पास आती है लेकिन, यदि आप उसे डंडे से मारे तो वह आपसे दूर भागती है। ऐसे ही हम यह भी देख सकते हैं कि शेर एक मांसाहारी पशु है, इसे ताजा मांस खाना पसंद है, जो इसके 'शरीर' का पोषण करता है। क्या खाना है, इसका पहचान पशु के स्वयं के चयन-आस्वादन पर आधारित है, और ऐसा चयन उनके 'शरीर' के अच्छे स्वास्थ्य के लिय आवश्यक है।

आइये अब मानव के बारे में बात करते हैं। ज्ञान-अवस्था की इकाई मानव भी 'शरीर' और 'स्वयं (मैं)' (अध्याय-4 में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है) का सह-अस्तित्व है। मानव-शरीर, प्राण-अवस्था की एक इकाई है इसलिये इसमें संघटन-विघटन एवं श्वसन-प्रश्वसन की क्रियाएं होती हैं। हमारे 'शरीर' में अनेक कोशिकाओं का निर्माण प्रतिदिन होता रहता है। 'शरीर' में अनेक तरह के प्रोटीन और हार्मोनों (hormones) का संघटन निरंतर होता रहता है। निःसंदेह इस प्रक्रिया में अनेक अन्य यौगिकों का विघटन भी सम्मिलित है। प्रत्येक कोशिका कोई गैस अंदर ग्रहण कर रही है और कोई अन्य गैस बाहर छोड़ रही है जो श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया के रूप में हो रही है। इस क्रिया को 'शरीर' के अंगों के साथ-साथ पूरे 'शरीर' के स्तर पर भी देखा जा सकता है।

मानव मैं और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में है। मानव के मैं में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन जैसी क्रियाओं को देखा जा सकता है (जैसा कि अध्याय-6, 'स्वयं में व्यवस्था', में हमने चर्चा की थी)। यहाँ पर चयन की क्रिया का तात्पर्य केवल 'शरीर' के अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने से ही नहीं है, बल्कि उससे भी ज़्यादा सुख के लिये है। हमने पहले यह चर्चा की कि सुख की आवश्यकता, सही समझ और सही-भाव से पूरी हो सकती है न कि सुविधा से। जानने (ज्ञान) की स्वाभाविक आवश्यकता को किसी भी बच्चे में देखा जा सकता है। वह अनेक प्रकार की वस्तुओं के बारे में बहुत से प्रश्न पूछता रहता है। मानव में जानने की क्षमता अर्थात्, सही समझ और सही भाव को सुनिश्चित करने की क्षमता एवं इस प्रकार निरंतर सुखपूर्वक जी पाने की क्षमता सहज रूप से ही । इसी कारण से हम यह कहते आ रहे हैं कि मानव के लिये सही समझ होना प्रथम वरीयता पर है, उसके बाद संबंध (सही भाव) और सुविधा की वरीयता क्रमशः दूसरी व तीसरी है। निःसंदेह ये तीनों ही आवश्यक हैं। सही समझ का मूल अर्थ, स्वयं में अनुभव (अस्तित्व में सह-अस्तित्व का), बोध (प्रकृति में व्यवस्था) और चिंतन (बड़ी व्यवस्था में भागीदारी) की क्रियाओं में जागृत होना है। मानव और पशु में मैं के स्तर पर भेद करने का प्रमुख कारक जानने की आवश्यकता और जानने की क्षमता ही है।

इस तरह से सभी चारों अवस्थाओं की अलग-अलग पहचान उनकी क्रियाओं के आधार पर कर सकते हैं। यह एक विधि है, जिससे प्रकृति की इकाइयों का वर्गीकरण हो सकता है।

चारों अवस्थाओं में अंतर्निहित प्रकृति-सहज धारणायें

(Innateness of the Four Orders)

तीसरा कॉलम प्रत्येक अवस्था में अंतर्निहित प्रकृति-सहज धारणा की व्याख्या करता है। 'धारणा' किसी भी इकाई की अपने होने की निश्चित व्यवस्था है। इस निश्चित व्यवस्था के आधार पर इकाई अपने निश्चित आचरण को प्रदर्शित करती है। इकाई और उसकी धारणा अविभाज्य है, अर्थात् इकाई को उसकी धारणा से अलग नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक अवस्था की निश्चित

धारणा है,जो उस अवस्था का विशेष गुण है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक इकाई जिस भी अवस्था से जुडी हुई है, उससे सम्बंधित धारणा उस इकाई में होगी ही।

पदार्थ-अवस्था की धारणा 'अस्तित्व' है। यहाँ 'अस्तित्व' का अर्थ इकाई के होने या एक निश्चित व्यवस्था में होने से है। इकाई एक वास्तविकता है, जो एक निश्चित व्यवस्था में बनी रहती है। ये पदार्थ के रूप में बने ही रहते हैं, अर्थात् इसके होने की निरंतरता बनी रहती है; अधिक से अधिक यह पदार्थ-अवस्था या प्राण-अवस्था की अन्य इकाई में परिवर्तित होते रहते हैं, परन्तु पदार्थ के रूप में इनका अस्तित्व बना ही रहता है। पदार्थ-अवस्था की प्रत्येक इकाई में यही धारणा है अर्थात् ये एक निश्चित व्यवस्था में, एक निश्चित आचरण के साथ इनका होना बना ही रहता है।

उदाहरण के लिये लोहे का एक टुकड़ा पदार्थ-अवस्था की एक इकाई है। यह तब तक लोहे का टुकड़ा बना रहेगा जब तक कि संघटन-विघटन की क्रिया के द्वारा किसी और इकाई में परिवर्तित न हो जाये, यह संघटन-विघटन वही क्रिया है जिससे पदार्थ-अवस्था की पहचान होती है। यहाँ तक कि संघटन-विघटन के बाद भी इसका प्रत्येक अणु, परमाणु अस्तित्व में ही बना रहता है। इस प्रकार से यदि हमारे पास एक किलो लोहा है तो कई वर्षों के बाद भी यह एक किलो ही बना रहेगा यदि इसे जंग इत्यादि से भली भांति सुरक्षित रखा गया हो। इसमें लोहे का निश्चित आचरण बना ही रहेगा जब तक कि इसका संघटन-विघटन न हो जाये।

आइये, अब **प्राण-अवस्था** की इकाइयों की धारणा को समझते हैं। प्राण-अवस्था की धारणा(स्वयं में व्यवस्था) अस्तित्व और पुष्टि है। जैसे एक पौधा, पौधे के रूप में बना रहता है और बढ़ता भी रहता है। आम का एक पेड़ यदि आज एक किलोग्राम का है तो वह एक वर्ष के पश्चात दस किलो का हो जायेगा। अर्थात् वह आम के पेड़ के रूप में बना भी रहेगा और इसमें पुष्टि भी होती रहेगी। प्राण-अवस्था की कोई भी इकाई जैसे कि पेड़-पौधे, पशु-शरीर, मानव-शरीर इत्यादि ये सभी अपनी धारणा अर्थात् अस्तित्व और पुष्टि को प्रदर्शित करते रहते हैं।

यदि हम जीव-अवस्था में देखते हैं तो, हम यह पाते हैं कि इनका मैं और 'शरीर' अलग-अलग हैं और यह दोनों सह-अस्तित्व में हैं। पशु-शरीर की धारणा पेड़-पौधों की भाँति ही अस्तित्व एवं पुष्टि है।

पशु के मैं की धारणा 'जीने की आशा' है अर्थात् वे जीना चाहते हैं। यही इनकी धारणा है। हम यह देख सकते हैं कि पशु-पक्षी अपने 'शरीर' का पोषण और संरक्षण करते हैं। वे ऐसा भोजन तलाशते हैं जो उनके 'शरीर' के अनुकूल हो। वह जीने के लिये अनुकूल वातावरण ढूंढने का प्रयत्न करते हैं। वह अपनी जीने की आशा की पूर्ति का प्रयास करते रहते हैं। यदि उनकी जान का जोखिम हो तो वे अन्य पशु-पक्षियों से यहाँ तक कि मानव से भी दूर जाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

अब **ज्ञान-अवस्था** पर आते हैं, मानव भी 'शरीर' और मैं का सह-अस्तित्व है। इसके 'शरीर' (प्राण-अवस्था की एक इकाई) की धारणा अस्तित्व और पुष्टि है। मानव-शरीर जन्मता है, बड़ा होता है, बचपन, जवानी, वयस्क, वृद्ध होता है और मर जाने जैसी अवस्थाओं से गुजरता है। यह, पशु-शरीर या पेड़-पौधे के जैसा ही है।

स्वयं के स्तर पर मानव में **'निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा'** है। यही उसकी धारणा है अर्थात् मानव में स्वयं के स्तर पर स्वतंत्रता या स्वयं में व्यवस्था उसकी धारणा हैं। मानव में

'निरंतर सुखपूर्वक जीने की आशा' स्वयं का एक अभिन्न अंग है; जिसको उसके स्वयं से अलग नहीं किया जा सकता है। जैसा कि हमने देखा है कि निरंतर सुख की आवश्यकता को सही समझ और सही भाव से पूरा किया जा सकता है, तो ज्ञान-अवस्था की धारणा को पुनः इस प्रकार कह सकते हैं कि यह स्वयं में सही समझ और सही भाव के साथ जीने की आशा है।

चारों अवस्थाओं के स्वभाव

(Natural Characteristic of the Four Orders)

किसी इकाई के स्वभाव का अर्थ, उससे बड़ी व्यवस्था में उसकी प्रकृति सहज भागीदारी है। बड़ी-व्यवस्था का आशय उस बड़ी इकाई से है, जिसके एक अंग के रूप में वह इकाई है। जैसे आपके पेट की कोशिकाओं की बड़ी व्यवस्था पूरा पाचन-तंत्र है। पाचन-तंत्र की बड़ी-व्यवस्था, मानव-शरीर है। मानव-शरीर की बड़ी व्यवस्था, मानव, परिवार इत्यादि हैं।

पदार्थ-अवस्था का स्वभाव, रचना-विरचना है। पदार्थ-अवस्था की इकाइयाँ इस अवस्था की अन्य इकाइयों के साथ या दूसरी अवस्था की अन्य इकाइयों के साथ रचना-विरचना के रूप में भागीदारी करती रहती हैं। रचना-विरचना में संघटन-विघटन की क्रियायें सम्मिलित रहती हैं। जैसे हमने जंग लगे हुये लोहे का उदाहरण लिया था, उस उदाहरण में लोहे के अणु, वायु एवं नमी की उपस्थिति में विघटित होते हैं और फेरिक ऑक्साइड के अणु बनाते हैं। इससे फेरिक ऑक्साइड की रचना हो रही है एवं लोहे की विरचना हो रही है। निःसंदेह संघटन-विघटन वह क्रिया है जिससे नये संघटन की रचना होती है और पुराने संघटन की विरचना होती है; इस प्रकार से पदार्थ-अवस्था, अन्य अवस्थाओं के साथ परस्परता का निर्वाह करती रहती है।

प्राण-अवस्था की एक इकाई प्राण-अवस्था की इकाईओंके साथ पोषण(सारक) एवं शोषण (मारक)करने के रूप में भागीदारी करती है। यह सहज ही देखा जा सकता है कि सेब का फल (प्राण-अवस्था की एक इकाई) मानव-शरीर (प्राण-अवस्था की एक इकाई) को पोषण देता है। बेलाडोना (belladonna) का पौधा अधिक मात्रा में खाने से 'शरीर' का शोषण हो सकता है। जबकि बेलाडोना का पौधा बकरी के 'शरीर' को पोषण देता है। इसी प्रकार से प्राण-अवस्था की इकाइयाँ, प्राण-अवस्था की अन्य इकाइयों के पोषण या शोषण करने में भागीदारी करते रहते हैं।

जब बात जीव-अवस्था की आती है तो, हमें पशु-शरीर और उसका दोनों का स्वभाव देखना होता है। 'शरीर', प्राण-अवस्था की एक इकाई है, अतः यह उसी प्रकार से भागीदारी करती है जैसा ऊपर बताया गया है, अर्थात् प्राण-अवस्था की अन्य इकाइयों का पोषण या शोषण करती है।

पशु का , अन्य जीव-अवस्था की इकाइयों के साथ क्रूरता या अक्रूरता के रूप में भागीदारी करता है। पशु जैसे शेर, चीता, भेड़िये इत्यादि क्रूरता के साथ भागीदारी करते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि वे अपनी आवश्यकताओं को अन्य पशुओं के 'शरीर' को खाकर पूरी करते हैं। पशु जैसे गाय और भेड़ इत्यादि अक्रूरता के साथ भागीदारी करते हैं। वे अपनी आवश्यकतायें, बिना बल और हिंसा के पूरी करते हैं। अतः जीव अवस्था का स्वभाव क्रूरता या अक्रूरता है।

ज्ञान-अवस्था में मानव, और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। शरीर-प्राण अवस्था से संबंधित है अतः इसमें प्राण-अवस्था का स्वभाव है।

मानव के का स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा और करुणा है। जैसा हमने पहले भी देखा है, कि व्यवस्थित मानव ही अपने स्वभाव का प्रदर्शन कर पाता है, अर्थात् मानव चेतना में जीता हुआ मानव ही अपने स्वभाव की अभिव्यक्ति कर पाता है। जबकि यदि कोई मानव, व्यवस्था में नहीं है अर्थात् मानव चेतना में नहीं जी रहा है तो वह अपने स्वभाव के अनुसार नहीं जी पाता है और वह अपने स्वभाव के बजाय दीनता, हीनता, क्रूरता के गुण को अपना लेता है। मूलतः यह मान्यता है कि यदि कोई मानव स्वयं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों पर क्रूरता, शासन, हिंसा आदि से करता है। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि जीव अवस्था का स्वभाव क्रूरता है, लेकिन यह ज्ञान-अवस्था का स्वभाव नहीं है। वास्तव में यह ज्ञान-अवस्था में गंभीर समस्या बन जाता है। उदाहरण के लिये वर्तमान समय में विश्व अपने संसाधनों का बहुत बड़ा प्रतिशत विनाशकारी उद्देश्यों के लिये खर्च कर रहा है; इसका कारण क्रूरता का भाव ही है।

चारों अवस्थाओं की अनुषंगीयता

(Inheritance of the Four Orders)

अनुषंगीयता का आशय इकाइयों में होने वाली उस विधि से है, जिससे वे अपने निश्चित आचरण की निरंतरता को पीढ़ी दर पीढ़ी सुनिश्चित बनाये रखती हैं।

पदार्थ-अवस्था की इकाइयों का आचरण उनके बनावट(constitution) के आधार पर सुनिश्चित होता है। उदाहरण के लिये लोहे का एक टुकड़ा, अपने निश्चित आचरण को तब तक बनाये रखता है, जब तक कि उसके परिणाम में कोई बदलाव न हो। यदि लोहे के टुकड़े का परिणाम बदलता है तो, उसका आचरण भी बदल जाता है। उदाहरण के लिये बहुत कम मात्रा में कार्बन, निकिल (nickel) या क्रोमियम को लोहे में मिलाने से उसका संघटन बदल जाता है; उस बदले हुये नये पदार्थ को स्टील कहते हैं। लोहे और स्टील का आचरण बिल्कुल अलग-अलग होता है। परिणाम में होने वाले इस बदलाव से आचरण भी बदल जाता है। अतः पदार्थ-अवस्था की इकाइयों का आचरण उनके परिणाम पर निर्भर करता है, जब तक उस इकाई का परिणाम वैसा ही बना रहता है उसका आचरण भी बना रहता है।

प्राण-अवस्था के आचरण की निरंतरता उसके बीज के द्वारा निर्धारित होती है। अतः जब तक पौधे का बीज संरक्षित रहता है, पौधे का आचरण भी संरक्षित रहता है। इसी आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्राण-अवस्था की अनुषंगीयता उसके बीज पर निर्भर करती है। जैसे यदि हम आम का बीज रोपते हैं तो, आम का पेड़ ही उगेगा और पेड़ पर आम के ही फल लगेंगे; आम के बीज की गुणवत्ता ही पौधे के आचरण को निर्धारित करती है, अतः आम के संरक्षण हेतु आम के बीज का संरक्षण आवश्यक है। जब तक यह संरक्षण होता रहेगा आम के पेड़ का आचरण की निरंतरता पीढ़ी दर पीढ़ी बनी रहेगी।

जीव-अवस्था की इकाइयों के आचरण की निरंतरता वंश विधि से सुनिश्चित होती है; अतः जब तक पशु का वंश संरक्षित रहेगा, उसका आचरण भी सुनिश्चित रहेगा। जैसे गाय का बच्चा, गाय ही होगा और उसका आचरण भी गाय के जैसा ही होगा; वह घास ही खायेगा। इसी प्रकार से शेर का बच्चा भी शेर ही बनेगा और वह मांस ही खायेगा। इस प्रकार से विभिन्न पशुओं की वंश परंपरा हजारों वर्षों तक बनी रहती है। अतः जीव-अवस्था की अनुषंगीयता वंश आधारित है, जब तक उनका वंश संरक्षित रहेगा, उनके आचरण की निरंतरता भी पीढ़ी दर पीढ़ी सुनिश्चित रहेगी।

पशुओं का निश्चित आचरण तब तक बना रहता है, जब तक उनका वंश संरक्षित रहता है। इस संदर्भ में ज्ञान-अवस्था अर्थात् मानव के बारे में क्या कह सकते हैं? मानव का आचरण कैसे सुनिश्चित होता है? क्या यह पशुओं की भांति ही वंश पर आधारित होता है? यदि पिता शाकाहारी है तो क्या उसका पुत्र भी निश्चित रूप से शाकाहारी ही होगा? यदि माता बुद्धिमान है, तो क्या उसका पुत्र भी बुद्धिमान ही होगा? यह हम देख ही सकते हैं कि यह आवश्यक नहीं है! हम इसे अनेक उदाहरणों से देख सकते हैं कि कम बुद्धिमान माता-पिता के बच्चे भी बुद्धिमान होते ही हैं और इसके विपरीत भी होता ही है। किसी बच्चे के माता-पिता कभी विद्यालय नहीं गये, लेकिन बच्चा स्कूल जाना चाहता है और इंजीनियर या डॉक्टर इत्यादि बनना चाहता है। लेकिन जब हम 'शरीर' के स्तर पर देखते है तो यह स्पष्ट होता है कि बालक का 'शरीर' माता-पिता के जैसा होता है। जैसा माता-पिता के शरीर की बनावट होती है वैसा ही बालक का शरीर होता है। अतः बालक का 'शरीर' तो वंश पर आधारित होता है, लेकिन उसका आचरण वंश पर आधारित नहीं होता है। यदि मानव का आचरण वंश पर आधारित नहीं है तो फिर उसका आचरण कैसे निर्धारित होता है? इसी का अध्ययन अब हम आगे करेंगे।

मानव का आचरण, शिक्षा-संस्कार से सुनिश्चित होता है। एक मानव को यदि मानवीय शिक्षा-संस्कार दिया जाये, तो वह निश्चित मानवीय आचरण के साथ जियेगा, दूसरी तरफ यदि अमानवीय शिक्षा-संस्कार मिलता है, तो वह अमानवीय आचरण से अर्थात् अनिश्चित आचरण से जियेगा। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ज्ञान-अवस्था की अनुषंगीयता शिक्षा-संस्कार पर आधारित है।

ज्ञान अवस्था के लिये शिक्षा-संस्कार का महत्व

(Significance of Education- Sanskar for Human Order)

इस स्पष्टता के साथ अब हम यह देख सकते हैं कि पदार्थ, प्राण और जीव-अवस्था की इकाइयाँ अपना निश्चित आचरण बनाये रखती हैं। वे स्वयं में व्यवस्था में पहले से ही हैं और अपना सहज स्वभाव प्रदर्शित करती रहती हैं। केवल मानव ही है जो स्वयं में व्यवस्थित नहीं है; जिसका आचरण अमानवीय और अनिश्चित है, जो अपने स्वभाव के अनुसार जीने के योग्य अभी नहीं हो पाया है।

निश्चित मानवीय आचरण को सुनिश्चित करने के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार आवश्यक है। शिक्षा की भूमिका जीव-चेतना से मानव चेतना में संक्रमण(परिमार्जन) करने में सहायता करना है, जिससे मानवीय आचरण के साथ जीने की योग्यता सुनिश्चित होती है यही इस पुस्तक के आरम्भ में कहा गया था।

मानवीय शिक्षा-संस्कार के माध्यम से, हम स्वयं में सही समझ सुनिश्चित कर सकते हैं। जिससे स्वयं में सही भाव सुनिश्चित होगा। सही समझ और सही भाव के साथ हम स्वयं में व्यवस्था और सुख की निरंतरता सुनिश्चित कर पायेंगे और यदि इसके अनुसार जी पाये, तो हम अगली पीढ़ी के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार का एक स्रोत बन पाएंगे। यदि ऐसा होता है तो प्रकृति-चक्र पूर्ण हो पायेगा (चित्र. 10-7 .को देखें)। एक बार पूर्ण होने पर, यह पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर चलता रहेगा।

हमें निश्चित रूप से इसको सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। हमें पहली तीनों अवस्थाओं में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक इन पहली तीनों अवस्थाओं की बात है, ये सब पहले से ही व्यवस्था में हैं। उनमें पहले से ही निश्चित आचरण है और ये एक दूसरे के

लिये परस्पर-पूरकता के संबंध का निर्वाह कर रहीं हैं और हमारे लिये भी पूरक हैं। केवल यह चौथी अवस्था, अर्थात् मानव ही है, जिसे इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिये स्वयं की योग्यता में विकास करने की आवश्यकता है। मानव का एक मानवीय समाज के रूप में विकसित होना अभी भी शेष है और यह विकास, मानवीय शिक्षा-संस्कार की प्रक्रिया के माध्यम से हो सकता है।

इस पुस्तक का यही प्रमुख उद्देश्य है। पहला सही समझ और सही भाव की आवश्यकता की तरफ ध्यान दिलाना और दूसरा स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से स्वयं में इन्हें सुनिश्चित करने में सहायता करना। एक बार जब स्वयं में सही समझ और सही भाव सुनिश्चित हो पाता है तो स्वयं में सुख की निरंतरता भी सुनिश्चित हो पाती है। हम दूसरों के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार के स्रोत बन पाते हैं।

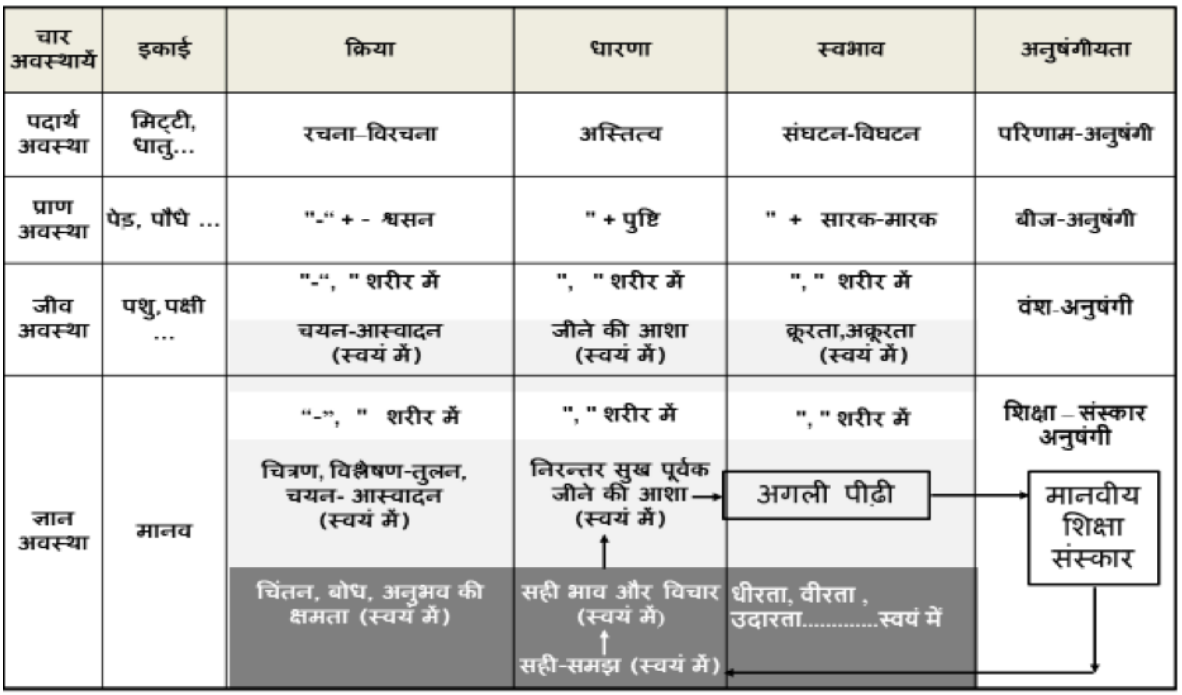

चित्र. 10-7. प्रकृति की व्यवस्था में मानवीय शिक्षा-संस्कार की भूमिका

इस प्रकार से मानवीय आचरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित हो पाता है। एक बार जब यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है, तो पीढ़ी दर पीढ़ी इसकी निरंतरता बनी रह पाती है और ज्ञान-अवस्था में भी पीढ़ी दर पीढ़ी स्वयं में निरंतर सुख और व्यवस्था की परंपरा बन पाती है, अर्थात् मानव भी शेष तीनों अवस्थाओं और ज्ञान-अवस्था के दूसरे मानवों के साथ परस्पर-पूरकता का निर्वाह, अपने स्वभाव और अपनी प्रकृति सहज धारणा के अनुसार कर पाता है।

ऐसा सुनिश्चित करने के लिये, हमें इस चक्र को कहीं से तो प्रारंभ करना होगा। यह पुस्तक, मानवीय शिक्षा-संस्कार की प्रक्रिया के माध्यम से इस चक्र में प्रवेश करने की प्रक्रिया को प्रारंभ करने का एक प्रयास है। यह प्रयास इस आशा के साथ किया जा रहा है कि जो लोग निष्ठा से इसका अध्ययन करेंगे और स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का अभ्यास करेंगे; वे स्वयं में सही समझ और सही-भाव सुनिश्चित कर सकगें। वे निरंतर सुख की स्थिति सुनिश्चित कर पायेंगे और अगली पीढ़ी के लिये भी मानवीय शिक्षा-संस्कार का स्रोत बन पाएंगे। इस प्रकार से यह चक्र प्रारंभ हो

सकता है, प्रसारित हो सकता है, और पूर्ण हो सकता है एवं इसकी निरंतरता भी हो सकती है, अंततः मानवीय आचरण की परंपरा सुनिश्चित हो सकती है।

प्रकृति में प्रचुरता
(Abundance in Nature)

प्रकृति इस प्रकार से व्यवस्थित है कि इसमें अन्य अवस्थाओं के लिये आवश्यक सुविधाएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जिस अवस्था को जो भी चाहिए, वह पहले से ही उसके लिए प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। उदाहरण के लिये प्राण-अवस्था, पदार्थ-अवस्था पर निर्भर है। एक पौधे (प्राण-अवस्था) को उसकी पुष्टि के लिये मिट्टी, पानी, वायु इत्यादि (पदार्थ-अवस्था) चाहिये। हम यह देख सकते हैं कि पहले से मिट्टी है ही, फिर काई बनती है, घास उगती है और फिर छोटे-छोटे पौधे, झाड़ियाँ और उसके पश्चात पेड़ बनते हैं। हम यह भी आसानी से देख सकते हैं कि आवश्यकता से अधिक मिट्टी, पानी और वायु पौधों के होने और उनके बने रहने के लिये पहले से ही उपलब्ध रहता है। पेड़ और पौधों से बहुत अधिक मात्रा में मिट्टी है। अतः हम यह कह सकते हैं कि प्राण-अवस्था की मात्रा से कहीं अधिक मात्रा पदार्थ-अवस्था की है। प्रकृति इसी प्रकार से व्यवस्थित है।

इसी प्रकार से पशु-पक्षियों को जीवित रहने के लिये पदार्थ-अवस्था और प्राण-अवस्था दोनों की आवश्यकता है। उनके लिये वायु, पानी, भोजन, आश्रय इत्यादि की आवश्यकता इन्हीं दो अवस्थाओं से पूरी होती है। प्रकृति में पशु-पक्षियों की मात्रा की तुलना में ये दोनों अवस्थायें बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। जंगल में रहने वाले किसी भी पशु के लिये सुविधा की कमी या संकट नहीं है।

जीवित रहने के लिए मानव को इन तीनों अवस्थाओं की आवश्यकता है। मानव की संख्या की तुलना में इन तीनों अवस्थाओं की मात्रा कहीं अधिक है। प्रकृति अपने होने के रूप में इस प्रकार से व्यवस्थित है कि इन चारों अवस्थाओं की मात्रा एक अनुक्रम में निम्न रूप से व्यवस्थित है: भौतिक-अवस्था>> प्राण-अवस्था>> पशु-अवस्था>> मानव-अवस्था (चित्र. 10-8. देखिये)। इसलिये, प्रकृति में किसी भी अवस्था की आवश्यकता की पूर्ति के लिये पहले से ही प्रचुर मात्रा में उपलब्धता है।

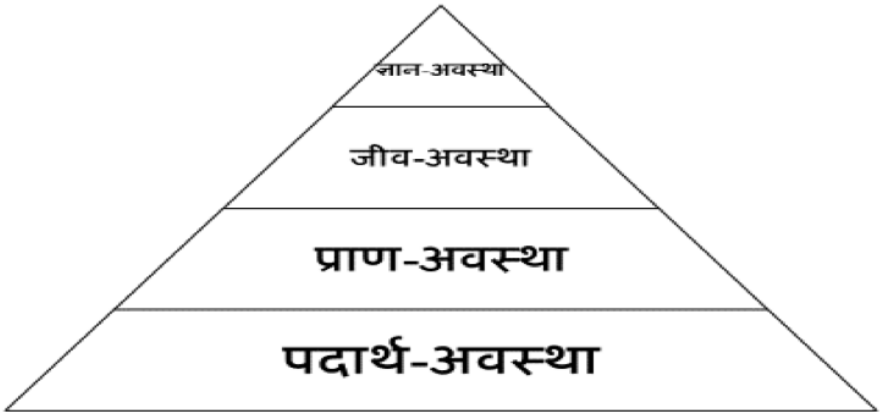

चित्र. 10-8. प्रकृति में प्रचुरता

इसे अधिक स्पष्टता से जंगलों में (जहाँ पर मानव की पहुँच नहीं है) देखा जा सकता है। पेड़-पौधों के साथ-साथ, पशु-पक्षी भी इसी प्रकार से संपन्न हैं। मिट्टी, पानी, हवा, नदियाँ, झीलें और अन्य बहुत सी वस्तुयें जंगल में संवर्धित होती रहती हैं। वहाँ जैव-विविधता भी बढ़ती रहती है। जंगल में संतुलन और सफाई के लिये कुछ मांसाहारी प्रजाति के पौधों, पशुओं एवं चिड़ियों की भी एक निश्चित भूमिका है। उदाहरण के लिये गिद्ध, मृत पशुओं का मांस खाते हैं। इस क्रिया में वे मृत-शरीर को वापस मिट्टी (अन्यथा यह सड़कर, अनेक समस्यायें उत्पन्न कर सकता है) में परिवर्तित करते हैं। जिससे जंगल में गन्दगी नहीं होती है। वहाँ संतुलन बना रहता है। कोई प्रजाति किसी के ऊपर प्रभुत्व स्थापित नहीं करती बल्कि एक दूसरे की सहायता करते हैं। मधु-मक्खियाँ आवश्यकता से अधिक शहद बनाती हैं, जो भालू के लिये उपलब्ध होता है, बिना मक्खियों को नष्ट किये। इस प्रकार से सामान्यतः प्रजातियाँ विलुप्त नहीं होती है, बल्कि सभी फलती-फूलती रहती हैं। निःसंदेह कुछ मौसम अधिक सूखा होता है और कुछ मौसम अधिक प्रचुर, लेकिन फिर भी छोटी सी छोटी चींटी से लेकर बड़े से बड़े हाथी तक का भोजन, जल, वायु इत्यादि की उपलब्धता निश्चित बनी ही रहती है। यह जाँचने का प्रयत्न कीजिए कि क्या यह 'जीवित रहने के लिये संघर्ष और ताकतवर का ही अस्तित्व' जैसा लगता है, या एक संतुलित व्यवस्था है, जिसमें प्रत्येक इकाई अन्य इकाइयों की पूरक है। यह मानव में समृद्धि होने की संभावना का आश्वासन देती है।

अभी तक हमने देखा कि प्रकृति चार अवस्थाओं में वर्गीकृत है और परस्पर पूरकता में रहते हुए, परस्पर संवर्धन करती है और स्वनियंत्रित रहती है। फिर हमने चारों अवस्थाओं की क्रियाओं और उसमे अंतर्निहित प्रकृति सहज धारणाओं का अध्ययन किया ।इस तरह से अस्तित्व में प्रकृति के चारों अवस्थाओं के पोषण सुरक्षा के लिए प्रकृति में प्रचुरता को जाना। आगे की कक्षा में, मानव की अन्य तीन अवस्थाओं पर निर्भरता,प्रकृति में ज्ञान अवस्था का परस्पर-पूरकता के संबंध का निर्वाह, समझ का सहज प्रतिफल एवं प्रकृति में मानव की भागीदारी की विस्तृत चर्चा की जाएगी।

मुख्य बिंदु -
(Salient Points)

- प्रकृति, इकाईयों का समूह है- चैतन्य इकाईयाँ एवं जड़ इकाईयाँ।
- यद्यपि ये इकाइयाँ असंख्य हैं, फिर भी इनको चार अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. पदार्थ-अवस्था
2. प्राण-अवस्था
3. जीव-अवस्था
4. ज्ञान-अवस्था

इन अवस्थाओं को उनकी क्रियाओं, धारणाओं, स्वभाव और अनुषंगीयता के माध्यम से समझा जा सकता है। इनकी निश्चित क्रियायें हैं, जिसके माध्यम से वे अपनी धारणा के अनुसार स्वयं में व्यवस्थित हैं। यह अन्य इकाइयों के साथ संबंध में परस्पर-पूरकता का निर्वाह करती हैं, जो कि उनका स्वभाव है। इनकी धारणा और स्वभाव पीढ़ी दर पीढ़ी अनुषंगीयता के माध्यम से बनी रहती है। इसी प्रकार प्रकृति स्व-नियंत्रित और स्व-व्यवस्थित है। इसी तरह से उनका आचरण निश्चित बना रहता है।

प्रथम तीनों अवस्थाओं में (ज्ञान अवस्था के अतिरिक्त) परस्पर-पूरकता के संबंध का निर्वाह देखा जा सकता है। प्रथम तीन अवस्थाएं, मानव के लिये पूरक हैं। जबकि मानव में अन्य चारों अवस्थाओं के लिये परस्पर-पूरकता के निर्वाह की सहज स्वीकृति तो है, किंतु मानव बिना सही समझ के किसी भी अवस्था के साथ इस परस्पर-पूरकता का निर्वाह करने के योग्य नहीं हो पाता है। इस परस्पर-पूरकता के बजाय वह स्वयं का और इन चारों अवस्थाओं का शोषण करता रहता है।

मानव को अनुभव, बोध और चिंतन की क्रियाओं में जागृत होने की आवश्यकता है; जिससे धारणा, स्वभाव और अनुषंगीयता सुनिश्चित हो सके। जब यह सुनिश्चित हो पाता है तो मानव निश्चित मानवीय आचरण से जी पाता है, अर्थात् अपने स्वभाव (धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा) के अनुसार आचरण कर पाता है। इन क्रियाओं को जागृत करने के लिये शिक्षा-संस्कार की प्रक्रिया प्रमुख है, इसी से मानव चेतना में संक्रमण(परिमार्जन) शुरू होता है। इस प्रकार से मानवीय शिक्षा संस्कार, मानवीय समाज के लिये सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। मानवीय शिक्षा-संस्कार बच्चे में सही समझ और सही-भाव विकसित करने में सहायक है और उसके अनुसार तदनुसार जीने की योग्यता भी विकसित करता है। ये ही बच्चे ऐसे मानव बनेंगे जो अगली पीढ़ी के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार के स्रोत होंगे।

- चारों अवस्थाओं की क्रियाओं, धारणाओं, स्वभाव और अनुषंगीयता की समझ हमें इनके साथ परस्पर-पूरकता का निर्वाह करने के लिये, मूल दिशा निर्देश प्रदान करती है। इस प्रकार से प्रकृति की किसी भी इकाई के साथ निर्वाह करते हुए, हमें उसका स्वभाव एवं उसका सदुपयोग ध्यान में रखना आवश्यक है और यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि इकाई की धारणा और अनुषंगीयता भी सुनिश्चित होती रहे (या कम से कम इनका उल्लंघन न हो)।

- प्रकृति में प्रचुरता है अर्थात् किसी भी अवस्था के लिये जो भी आवश्यक है, वह प्रकृति में पर्याप्त उपलब्ध है। अपने होने में रूप में प्रकृति चारों अवस्थाओं की मात्रा के घटते हुये क्रम में इस प्रकार से व्यवस्थित है: पदार्थ-अवस्था >> प्राण-अवस्था >> जीव-अवस्था >> ज्ञान-अवस्था। यह मानव में समृद्धि की संभावना का आश्वासन देती है।

- प्रकृति में उत्पादन प्रक्रिया चक्रीय है एवं परस्पर-संवर्धन को सुनिश्चित करने वाली है। सभी सुविधा एं जो भी हम उत्पादन करते हैं, वह प्रकृति के इन तीन अवस्थाओं पर कार्य करने से ही उत्पादित होती हैं। परस्पर-पूरकता के निर्वाह के लिए उत्पादन प्रक्रिया को भी चक्रीय एवं परस्पर-पूरक होना आवश्यक है। इस प्रकार से संपूर्ण प्रकृति अर्थात् प्रकृति की सभी अवस्थाएं व्यवस्था में हो सकती हैं क्योंकि प्रथम तीन अवस्थाएं तो पहले से ही व्यवस्था में हैं।
- व्यवस्था, प्रकृति की संरचना में ही अंतर्निहित है अर्थात् यह पहले से ही है। हमें इसे उत्पन्न नहीं करना है। मानव को व्यवस्था में जीने के लिये, सभी प्रावधान प्रकृति में उपस्थित हैं; हमें सिर्फ करना यह है कि बनी हुई इस व्यवस्था को समझना है और इसके अनुसार दूसरे मानवों एवं अन्य अवस्थाओं के साथ परस्पर-पूरकता के निर्वाह को सुनिश्चित करते हुये जीना है।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1 अधिकांशतः ज्ञान-अवस्था ही अन्य अवस्थाओं के साथ परस्पर-पूरक क्यों नहीं है? क्या आपकी सहज स्वीकृति सभी अवस्थाओं के लिये परस्पर-पूरकता के निर्वाह की है? चारों अवस्थाओं के साथ इस परस्पर-पूरकता के संबंध के निर्वाह को सुनिश्चित करने हेतु मानव के लिये क्या आवश्यक है?

2 प्रकृति का प्रक्रिया चक्रीय है और इसमें परस्पर-संवर्धन भी होता है- इस कथन की तीन उदाहरणों के साथ व्याख्या कीजिये।

3 प्रकृति की चारों अवस्थाओं को उनके विशिष्ट क्रियाओं, धारणा, स्वभाव और अनुषंगीयता के आधार पर वर्गीकृत किया गया है- प्रत्येक को उदाहरण सहित समझाइये।

4 स्वभाव की स्पष्टता के साथ, आप इन चार अवस्थाओं की प्रत्येक इकाइयों के साथ किस प्रकार निर्वाह करेंगे?

5 ऐसी कुछ इकाइयों के उदाहरण दीजिए जिनमें सिर्फ पहचानने और निर्वाह-करने की क्रियायें पायी जाती हैं। उन इकाइयों के उदाहरण भी दीजिये जिन्हें जानने, पहचानने और निर्वाह करने की क्रियायें होती हैं। इन इकाइयों के समूहों में जो मूलभूत अंतर है वह भी स्पष्ट करें।

6 प्रकृति में प्रचुरता है, इस कथन की व्याख्या करें। अन्य तीन अवस्थाओं पर ज्ञान अवस्था किस प्रकार निर्भर है, यह भी स्पष्ट करें?

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self Exploration)

(विषय-वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. चारों अवस्थाओं में से प्रत्येक के लिये कम से कम दो इकाइयों की क्रियायें, धारणा, स्वभाव, और अनुषंगीयता का परीक्षण कीजिये (चित्र.10-6. संदर्भ लें)। क्या आप यह देख पाते हैं कि ये अवस्थाएं परस्पर-पूरकता के संबंध का निर्वाह कर रही है? अब वर्तमान की दो समस्यायें; प्रदूषण और संसाधन के अभाव को मानव में परस्पर-पूरकता के निर्वाह की कमी से जोड़कर देखिये और इस संबंध में आपकी क्या टिप्पणी है, लिखिये।
2. अपने पड़ोस से कोई भी एक पर्यावरण से सम्बंधित समस्या को लीजिये और इसका मूल कारण ढूंढने का प्रयत्न कीजिए। उदाहरण के लिये पानी की कमी, वायु प्रदूषण, भोज्य पदार्थों में मिलावट इत्यादि। व्यक्तिगत आधार पर आप इस समस्या के समाधान में क्या योगदान दे सकते हैं लिखिए।

(पर्यावरण की स्थिति पर अनेक लघु फिल्में है। इस प्रकार की एक लघु फिल्म भूतपूर्व अमेरिकी उपराष्ट्रपति अल गोर ने 2006 में प्रस्तुत की थी, जिसे उन्होंने "An Inconvenient Truth" नाम दिया था, जो यूट्यूब से डाउनलोड की जा सकती है (http://an-inconvenient-truth lcom/)।

इसी प्रकार से अनेक लघु फिल्में उन व्यक्तियों के बारे में है, जिन्होंने पर्यावरण संरक्षण के लिये प्रयास किया हैं (आप विचार मंथन हेतु इन्हें देख सकते हैं)।

क्या प्रत्येक मानव में सही समझ और सही-भाव को सुनिश्चित किये बिना,पर्यावरणीय क्षति पूर्ति के लिये किये गये किसी भी प्रयास की सफलता निरंतरता में संभव है? इस पर आप अपने विचार प्रस्तुत करें।

1. अपने भविष्य के बायोडाटा में पर्यावरण और उससे सम्बंधित प्रतिबद्धता वाले भाग में अपने विचार लिखकर बायोडाटा का नवीनीकरण कीजिये।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निसंदेह आप इस समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्ले मॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र महसूस करें!

"प्रकृति पहले से ही व्यवस्था में है (बिना सही समझ के मानव को छोड़कर), इसलिए मानव में व्यवस्था की संभावना या प्रावधान है"

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिए। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है, तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-11

अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना

(Harmony in Existence – Understanding Coexistence at Various Levels)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9 ✓
☞ प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

पुनरावृत्ति
(Recap)

पिछले अध्यायों में हमने मानव की 'मूल चाहना' अर्थात् सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता पर चर्चा की है। निरंतर सुख का आशय सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था पूर्वक जीना है। व्यवस्था में जीने के लिये इन सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझने की आवश्यकता है। अभी तक, हमने मानव, परिवार, समाज और प्रकृति में व्यवस्था का अध्ययन, स्व-अन्वेषण और स्व-सत्यापन की प्रक्रिया से किया है।

'प्रकृति में व्यवस्था' के बारे में चर्चा करते समय, हमने पिछले अध्याय में देखा कि प्रकृति में चार अवस्थाएं हैं: पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था, जीव-अवस्था और ज्ञान-अवस्था। पहली तीन अवस्थायें व्यवस्था में हैं और एक दूसरे के लिये परस्पर-पूरकता का निर्वाह कर रही हैं। मानव को अभी भी व्यवस्था और व्यवस्था में जीने को समझना है, तभी संपूर्ण प्रकृति व्यवस्था में हो पाएगी।

इस अध्याय के अंतर्गत हम अस्तित्व में व्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे; और इस अध्याय के अंत में हम अस्तित्व में व्यवस्था (सह-अस्तित्व) को समझने के आधार पर विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को पुनः देखने का प्रयास करेंगे।

'अस्तित्व'- व्यापक (शून्य) में इकाइयाँ
(Existence as Units in Space)

अस्तित्व नित्य वर्तमान है। Existence is whatever exists।

जो भी विद्यमान है, उसका सार (essence) व्यवस्था या परस्पर-पूरकता है। जो भी विद्यमान है या जो भी होना है, वह परस्पर-पूरकता या व्यवस्था में होना है। अस्तित्व ऐसा ही है।

जब हम अपने आस-पास देखते हैं तो क्या देखते हैं? हम बहुत सी वस्तुयें देखते हैं जैसे सूर्य, चन्द्रमा, तारे आकाशगंगायें, मानव, सड़क, भवन, खेत, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पशु, पक्षी, पेड़ और ऐसी ही अनेक वस्तुयें; क्यों ऐसा ही है न? जब हम और ध्यान से देखते हैं तो, सूक्ष्म इकाइयों को भी देख पाते है जैसे वायु, जल-वाष्प इत्यादि। ये सब इकाइयाँ हैं और निश्चित आयतन घेरती हैं। इनमें से अधिकांश का निश्चित आकार और निश्चित आकृति है। क्या इकाइयों के अलावा कुछ और भी है? हाँ, शून्य अर्थात् व्यापक है।

अतः, अस्तित्व में दो प्रकार की मूल वास्तविकतायें हैं, एक शून्य है और दूसरी वास्तविकता इकाइयाँ हैं। इकाइयाँ, शून्य में हैं। यहाँ पर यह मायने नहीं रखता है कि, कोई इकाई कहाँ है या कोई इकाई एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित हो जाती है, इकाइयाँ सदैव शून्य में ही बनी रहती हैं। ऐसी कोई भी विधि नहीं है कि इकाई को शून्य से अलग किया जा सके। इकाइयाँ, शून्य से अपृथकीय हैं, ये शून्य में अभिन्न (indivisible) हैं, ये शून्य में संपृक्त हैं। ये दोनों वास्तविकतायें सदैव सह-अस्तित्व में विद्यमान हैं। अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में है, जो कि इकाइयों के शून्य में संपृक्त होने के रूप में है। इस अध्याय में हम आगे इसका और विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

शून्य और इकाइयों को समझना
(Understanding Units and Space)

प्रकृति में असंख्य इकाइयाँ हैं; जैसे वायु, जल, मिट्टी, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, भवन, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, मानव इत्यादि। 'प्रकृति में व्यवस्था' के अध्याय में हमने इन इकाइयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। अब हम यह देख सकते हैं कि ये इकाइयाँ शून्य में हैं। शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में दोनों का सह-अस्तित्व है। अब हम इकाइयों एवं शून्य के कुछ विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

इकाइयाँ आकार में सीमित है; शून्य असीमित है

(Units are Limited in Size; Space is Unlimited)

हम अपने आस-पास इकाइयों को देख सकते हैं; ये आकार में सीमित हैं। कोई इकाई छोटी या बड़ी हो सकती है, परंतु सभी इकाइयाँ आकार में सीमित ही हैं। उदाहरण के लिये पेंसिल एक इकाई है, जो कि आकार में छोटी है; मानव भी एक इकाई है, लेकिन यह सापेक्ष रूप से आकार में उससे बड़ा है। पृथ्वी, मानव की तुलना में बहुत बड़ी है, लेकिन फिर भी इसका आकार सीमित ही है। सूर्य, पृथ्वी से भी बड़ा है परंतु इसका आकार भी सीमित है। इस प्रकार से, सभी इकाइयाँ, छोटी हों या बड़ी, आकार में सीमित ही हैं। उनकी एक निश्चित आकृति व आकार है। प्रत्येक इकाई शून्य से घिरी हुई है। इकाई के चारों तरफ शून्य है, इसी कारण से इकाई की सीमा का निर्धारण हो पाता है। हम इकाई की सीमा को पहचान पाते हैं, अर्थात् उस स्थान को पहचान पाते हैं, जहाँ पर इकाई समाप्त हो रही है और अब केवल शून्य ही विद्यमान है।

अब शून्य को समझते हैं; यह असीमित है अर्थात् यह सब जगह फैला हुआ है। यह सर्वत्र विद्यमान है। शून्य का कोई सीमित आकार नहीं है। हम इसकी सीमाओं को नहीं देख सकते हैं।

इकाइयों और शून्य के मध्य यह एक मूल भेद है। शून्य असीमित है और सर्वत्र व्याप्त है जबकि इकाइयाँ आकार में सीमित है। चूंकि इकाइयाँ आकार में सीमित है इसलिये इन्हें संख्याओं में गिना जा सकता है; जबकि शून्य असीमित हैं। हम पाँच पेड़, आठ मानव इत्यादि की गिनती कर सकते हैं जबकि शून्य के बारे में हम केवल यह कह सकते हैं कि शून्य है; यह शून्य है या वह शून्य है, यह नहीं कह सकते क्योंकि शून्य सब जगह विद्यमान है।

इकाइयाँ क्रिया हैं, वे क्रियाशील हैं; शून्य "क्रिया-शून्य" है

(Units are Activity, they are Active; Space is "No-Activity")

प्रत्येक इकाई एक क्रिया है और यह क्रियाशील है। इकाई में किसी न किसी प्रकार की क्रिया सदैव होती रहती है। एक इकाई अन्य इकाइयों के साथ, परस्परता का निर्वाह भी करती रहती है अर्थात् यह अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में क्रियाशील रहती है।

उदाहरण के लिये अपने 'शरीर' को देखिये। क्या आप देख सकते हैं कि आपके 'शरीर' में कुछ क्रियायें हो रही हैं? निःसंदेह, हो रही हैं। श्वसन, पाचन, स्पंदन इत्यादि 'शरीर' में हो रही क्रियाओं के कुछ सामान्य उदाहरण हैं। ये सब क्रियाएं सम्मिलित रूप से आपके 'शरीर' को परिभाषित करती हैं। दूसरे शब्दों में आपका 'शरीर' एक क्रिया है और आगे आप यह भी देख सकते हैं कि आपका 'शरीर' क्रियाशील है - यह अन्य इकाइयों के साथ परस्परता का निर्वाह करता रहता है। उदाहरण के लिये आपका 'शरीर' भोजन पकाने, खेत जोतने, भार उठाने इत्यादि क्रियाओं में परस्परता का निर्वाह कर रहा होता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आपका 'शरीर' क्रियाशील है।

जब आप 'स्वयं (मैं)' को देखते हैं, तो इच्छा, विचार और आशा की क्रियायें 'स्वयं (मैं)' में निरंतर चलती हुई दिखती हैं। यह सभी क्रियायें सम्मिलित रूप से आपको अर्थात् 'स्वयं (मैं)' को परिभाषित करती हैं। आप यह भी देख सकते हैं कि आपका 'स्वयं (मैं)' अन्य इकाइयों के साथ परस्पर क्रियाशील है। उदाहरण के लिये यह आपके 'शरीर' को निर्देश दे रहा है और 'शरीर' से प्राप्त संवेदनाओं को पढ़ रहा है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आपका ''स्वयं (मैं)'' एक क्रिया है और यह क्रियाशील है।

यदि हम कुर्सी को देखें तो क्या पाते हैं? क्या यह क्रिया है? क्या यह क्रियाशील है? प्रथम दृष्टया तो ऐसा लगता है कि कुर्सी में कुछ भी नहीं हो रहा है, लेकिन सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर आप देख पाते हैं कि इसकी आकृति, आकार एवं संगठन एक लम्बे समय अवधि लगभग 15 वर्षों में परिवर्तित होता ही है। क्या यह परिवर्तन 15 वर्षों के उपरांत एकदम से हुआ या उत्तरोत्तर परिवर्तन होता ही रहा? हम सब यह जानते हैं कि यह परिवर्तन की प्रक्रिया उत्तरोत्तर धीमी गति से होती रहती है और इस परिवर्तन को कुछ-कुछ समय के पश्चात देखा भी जा सकता है। इससे यह संकेत मिलता है कि कुर्सी में भी कुछ क्रिया चल रही है। विज्ञान की सहायता से अब हम यह जान पाते हैं कि कोई भी वस्तु परमाणुओं से मिलकर बनी है। परमाणु सूक्ष्म उप-परमाणु कणों से मिलकर बना है और ये अपने अक्ष के चारों तरफ घूमते हुये नाभिक के चारों तरफ लगातार चक्कर लगा रहे हैं। ये परमाणु सम्मिलित रूप से मिलकर अणु बनाते हैं, और इसी प्रकार अन्य बड़ी संरचना बनाते हैं जैसे कुर्सी। तो कुर्सी भी एक क्रिया है। कुर्सी अन्य इकाइयों के साथ परस्पर क्रियाशील है। यह फर्श पर स्थिर है और एक व्यक्ति जो उसके ऊपर बैठता है, उसका भार भी वहन करती है। इस दृष्टि से यह क्रियाशील है।

अपने आस-पास की इकाइयों का निरीक्षण करने का प्रयास करें और उनमें हो रही विभिन्न क्रियाओं में से कुछ की सूची बनाएं और यह भी देखने का प्रयास कीजिये कि ये इकाइयाँ, अन्य इकाइयों के साथ किस निश्चित विधि से परस्परता का निर्वाह कर रही हैं। आप यह देख सकते हैं कि प्रत्येक इकाई में एक क्रिया है और यह अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में क्रियाशील है।

जब बात शून्य की आती है तो हम यह देख पाते हैं कि यह क्रिया नहीं है। केवल इकाइयों में ही क्रिया होती है। जहाँ पर कोई इकाई नहीं है, वहाँ पर कोई क्रिया भी नहीं है। दूसरे शब्दों में जहाँ सिर्फ शून्य विद्यमान है, वहाँ कोई क्रिया नहीं है।

हम में बहुत सी क्रियाओं को देख सकते हैं जैसे कल्पनाशीलता, विश्लेषण, तुलन, चयन, आस्वादन इत्यादि। 'शरीर' में भी क्रियायों का एक समूह है जैसे साँस लेना, खाना, घूमना, टहलना, बातचीत करना इत्यादि। पृथ्वी के वातावरण में वायु और जल निरंतर गतिशील है, वृक्षों में वृद्धि हो रही है, पशु और पक्षी भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे हैं, इत्यादि। सूर्य भी क्रिया है। जब हम सूर्य और पृथ्वी के बीच देखते हैं, जहाँ कोई इकाई नहीं है, केवल शून्य विद्यमान है, वहाँ पर कोई क्रिया नहीं है, अतः शून्य क्रिया नहीं है।

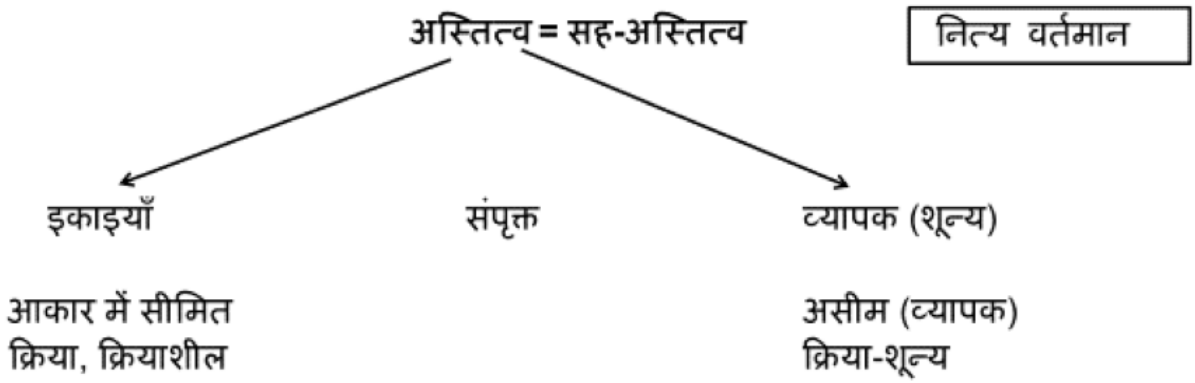

चित्र. 11-1. अस्तित्व = शून्य में संपृक्त इकाइयाँ

अस्तित्व, शून्य में संपृक्त इकाइयों के रुप में है। (चित्र. 11-1. देखें) अस्तित्व ऐसा ही है। इकाइयाँ आकार में सीमित हैं, जबकि शून्य असीमित और सर्वव्यापी है। इकाइयाँ क्रिया हैं और वे क्रियाशील हैं। शून्य में कोई क्रिया नहीं है। इकाइयाँ, शून्य में संपृक्त हैं।

संपृक्तता को समझना

(Understanding Submergence)

इकाइयाँ कहाँ हैं - क्या वे शून्य में हैं या शून्य से बाहर हैं? प्रश्न जरा मुश्किल है, ऐसा है कि नहीं? इकाइयाँ शून्य में हैं और वे शून्य में संपृक्त हैं।

जब हम कहते हैं कि इकाइयाँ शून्य में संपृक्त हैं तो इसका अर्थ यह है कि इकाइयाँ शून्य में हैं, वे शून्य से अपृथकीय हैं। जहाँ पर इकाई है, वहाँ पर भी शून्य है और जहाँ इकाई नहीं है वहाँ भी शून्य है। यह मायने नहीं रखता कि कोई इकाई कहाँ है, वह सदैव ही शून्य में बनी रहती है। इकाई जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित होती है, तब भी वह शून्य में बनी रहती है। ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसमें इकाई को शून्य से बाहर निकाल लिया जाये या इसे शून्य से अलग कर दिया जाये। अस्तित्व इकाइयों के शून्य में संपृक्त होने के रूप में है। अस्तित्व सह-अस्तित्व है (ए नागराज 2003)।

संपृक्तता के तीन आशय हैं:

1। इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं।

2। इकाइयाँ शून्य में स्व-व्यवस्थित हैं।

3। प्रत्येक इकाई दूसरी इकाई के साथ परस्परता को पहचानती है और निर्वाह करती है।

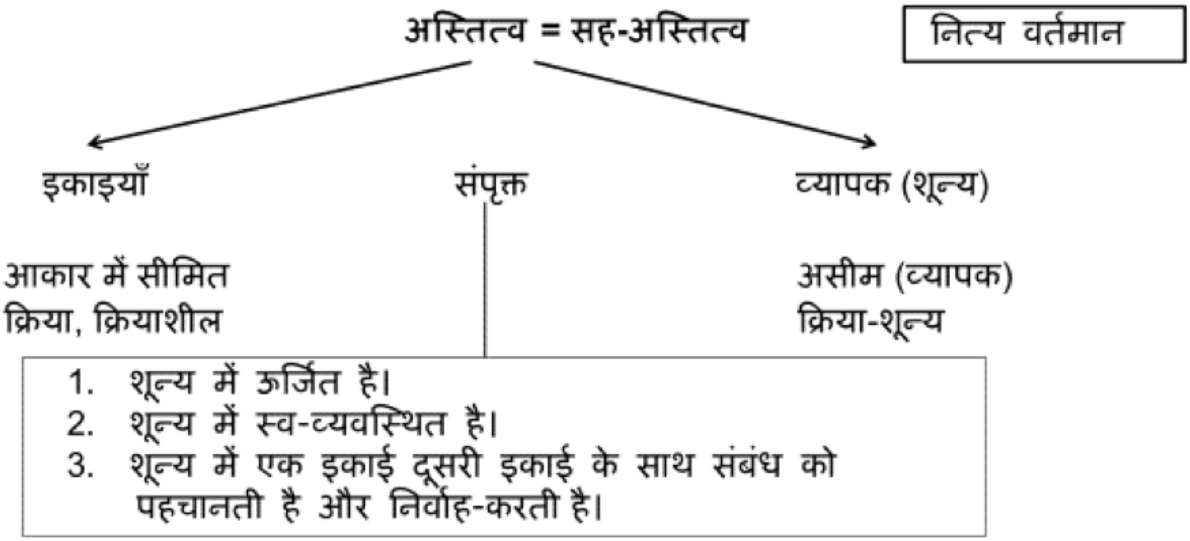

चित्र. 11-2. संपृक्तता

चित्र. 11-2. का उपयोग करते हुए आइये प्रत्येक कथन की व्याख्या करते हैं।

इकाइयाँ शून्य में उर्जित हैं

(Units are Energized in Space)

शून्य के सह-अस्तित्व में प्रत्येक इकाई ऊर्जित है।

उदाहरण के लिये पृथ्वी शून्य में है। यह शून्य में संपृक्त है। पृथ्वी एक क्रिया है। यह अपने अक्ष के चारों तरफ घूम रही है और सूर्य के चारों तरफ भी परिक्रमा कर रही है। क्या पृथ्वी को ऊर्जा हम दे रहे हैं? नि:संदेह मानव पृथ्वी को ऊर्जा नहीं दे रहे रहा है। क्या यह ऊर्जा सूर्य से आ रही है या शून्य के सह-अस्तित्व में पृथ्वी ऊर्जित है? पृथ्वी, शून्य के सह अस्तित्व में ऊर्जित है।

जबकि, हम ऐसा मानते हैं कि पृथ्वी को ऊर्जा, सूर्य से मिल रही है और सूर्य में ऊर्जा हाइड्रोजन परमाणुओं के संलयन से आ रही है। तब एक प्रश्न यह बनता है कि हाइड्रोजन परमाणु में ऊर्जा कहाँ से आ रही है? हमें इसका आधार पहचानना है। अंततः, हम यह देख पाते हैं कि हाइड्रोजन परमाणु, शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है।

हम किसी भी परमाणु का परीक्षण कर सकते हैं। परमाणु शून्य में है। यह शून्य में संपृक्त है। उप-परमाणविक कण अपने अक्ष के चारों तरफ घूमते रहते हैं। उप-परमाणविक कण अपने नाभिक के चारों तरफ भी विभिन्न कक्षाओं में घूमते रहते हैं। ये और इस प्रकार की अन्य क्रियायें परमाणु में होती रहती हैं। परमाणु में यह ऊर्जा कहाँ से आ रही है? परमाणु शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है।

अब 'स्वयं (मैं)' का निरीक्षण करें। में होने वाली क्रियायें इच्छा, विचार और आशा निरंतर चल रही हैं। यह सब क्रियायें 'शरीर' से ऊर्जा ले कर चल रही हैं क्या?। जब 'शरीर' बीमार होता है तो क्या यह क्रियायें धीमी पड़ जाती हैं या रूक जाती हैं? 'स्वयं (मैं)' की क्रियायें 'शरीर' की बीमारी से अप्रभावित रहती हैं। की क्रियायें निरंतर हैं और यह निरंतरता 'शरीर' की स्थिति पर निर्भर नहीं हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रस्ताव को समझना महत्वपूर्ण होगा कि शून्य में है और यह शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है। ', शून्य में संपृक्त है और 'शरीर' भी शून्य में संपृक्त है।

इकाइयाँ शून्य में स्व-व्यवस्थित हैं

(Units are Self-organized in Space)

शून्य के सह-अस्तित्व में प्रत्येक इकाई स्व-व्यवस्थित है। प्रत्येक इकाई एक निश्चित व्यवस्था में है। एक निश्चित व्यवस्था में रहते हुये यह एक निश्चित आचरण को प्रदर्शित करती हैं; इसके निश्चित आचरण के आधार पर कोई भी उस इकाई को पहचान सकता है, अध्ययन कर सकता है।

चलिये, हम परमाणु का पुनरावलोकन करते हैं। यह एक निश्चित व्यवस्था में है; जिसमें सारे उप-परमाणविक कण अपनी एक निश्चित भूमिका निभा रहे हैं; जिससे परमाणु का एक निश्चित आचरण है। क्या हम उप-परमाणविक कण के ठीक प्रकार से अपनी भूमिका निभाने के लिये कुछ कर रहे हैं? क्या हम परमाणु के व्यवस्थित रहने के लिये कुछ कर रहे हैं? परमाणु शून्य के सह-अस्तित्व में है और स्व-व्यवस्थित है; और इसका एक निश्चित आचरण है।

पृथ्वी भी स्व-व्यवस्थित है। यह अपने अक्ष के चारों तरफ घूम रही है। यह पौधों, पशुओं और मानवों के लिये अनुकूल वातावरण बनाये हुये है। चूंकि यह स्व-व्यवस्थित है, व्यवस्था में है, अतः पृथ्वी पर सभी तरह की चीजे घटित हो पा रही हैं। यदि यह स्व-व्यवस्थित नहीं होती तो हम पृथ्वी पर जीवित नहीं रह पाते। पृथ्वी शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है और स्व-व्यवस्थित है।

हमारा 'शरीर' एवं इसके सभी अंग स्व-व्यवस्थित हैं। क्या हमें अपने 'शरीर' की प्रत्येक कोशिकाओं (जो कि लाखों की संख्या में है) का ध्यान रखने की आवश्यकता है? नि:संदेह नहीं है। 'शरीर' भी शून्य के सह-अस्तित्व में स्व-व्यवस्थित है।

इकाइयां शून्य के सह-अस्तित्व में दूसरी इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं

(Units Recognize their Relationship and Fulfil it with Every Other Unit in Space)

शून्य के सह-अस्तित्व में इकाइयाँ प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानती और निर्वाह करती हैं।

परमाणु, शून्य के सह-अस्तित्व में है। यह शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है; इसमें अनेक प्रकार की क्रियायें चल रही हैं। ये क्रियाएँ स्व-व्यवस्थित हैं, व्यवस्था में हैं अतः परमाणु निश्चित आचरण को प्रदर्शित करता है। एक परमाणु अन्य परमाणुओं के साथ परस्परता को पहचानते और निर्वाह करते हुये अणु रचना करता है। इस प्रकार से रचित 'अणु', इन परमाणुओं के 'सह-अस्तित्व' में होने की अभिव्यक्ति है। अणु भी शून्य में है, यह भी शून्य में ऊर्जित है, स्व-व्यवस्थित है और निश्चित आचरण का प्रदर्शन करता है और अन्य अणुओं के साथ परस्परता को पहचानते और निर्वाह करते हुये विभिन्न आणविक संरचनायें बनाता है। इसी प्रकार से बड़ी संरचनायें जैसे ग्रह इत्यादि भी शून्य में इसी तरह से अभिव्यक्ति होते हैं।

मानव-शरीर अनेकों कोशिकाओं से मिलकर बना हुआ है। ये सभी कोशिकायें शून्य में हैं; और शून्य में ऊर्जित हैं। 'शरीर' की प्रत्येक कोशिका में अनेकों क्रियायें होती रहती है। ये कोशिकायें स्व-व्यवस्थित हैं और एक स्पष्ट प्रणाली के अंतर्गत क्रियाशील हैं एवं एक निश्चित आचरण को व्यक्त करती हैं। ये अन्य कोशिकाओं के साथ परस्परता को पहचानते हुये और निर्वाह करते हुये अंग-प्रत्यंग का; और अंततः मानव-शरीर का निर्माण करती हैं। उदाहरण के लिये, हमारी आँखें अनेकों कोशिकाओं से निर्मित हैं। ये कोशिकायें एक दूसरे के साथ संबंध को पहचानती

हैं और निर्वाह करती हैं। इस प्रकार से हम आँखों की सहायता से वस्तुओं को देख पाते हैं। यदि आप और अधिक सटीकता से देखें तो पता चलता है कि ये कोशिकायें अनेकों अणुओं से बनी हुई हैं और ये अणु अनेकों परमाणुओं से बने हुये हैं। ये अणु और परमाणु शून्य में संपृक्त हैं अर्थात् ये शून्य में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं और अन्य परमाणुओं और अणुओं के साथ शून्य के सह-अस्तित्व में संबंध को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं। इसी तरह से आणविक संरचनायें, कोशिकायें, अंग-प्रत्यंग इत्यादि बनते हैं और अंत में 'शरीर' बनता है। यह सब कुछ शून्य की संपृक्तता में घटित होता है।

यह देख सकते हैं कि पहली तीन अवस्थायें पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था और जीव-अवस्था पहले से ही स्व-व्यवस्थित हैं। केवल ज्ञान-अवस्था, अर्थात् मानव को ही स्वयं के प्रयासों से अस्तित्व में सह-अस्तित्व को समझकर और उसके अनुसार जीकर अस्तित्व की इस स्व-व्यवस्थित होने की प्रक्रिया को पूर्ण करना है।

अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में - शून्य में संपृक्त इकाइयाँ

(Existence as Co-existence – Units Submerged in Space)

'अस्तित्व सह-अस्तित्व है' पर चर्चा के प्रकाश में अब हम पूरे अस्तित्व के संपूर्ण चित्र को देख सकते हैं।

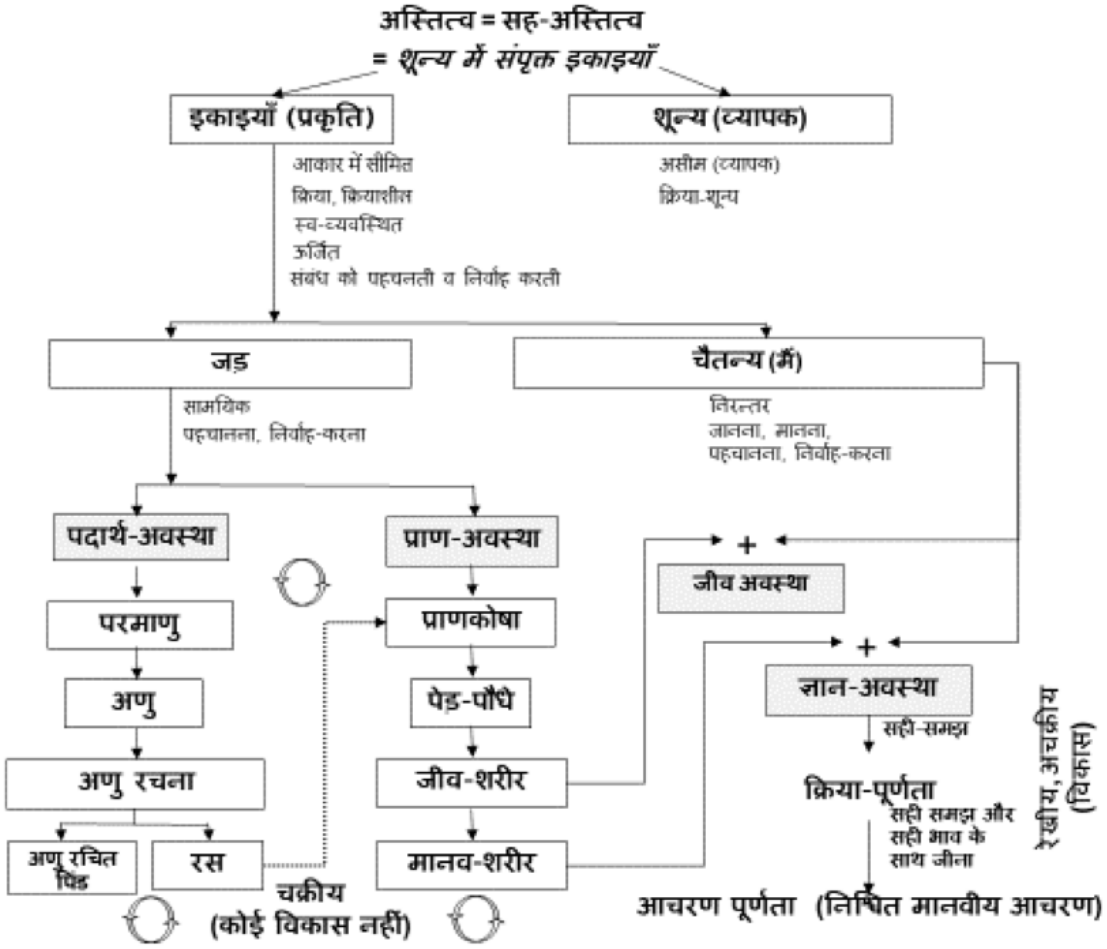

चित्र. 11-3. सह-अस्तित्व का प्रगटन

पृथ्वी पर हम जड़ इकाइयों के फैलाव को देख सकते हैं, जिसमें विभिन्न तरह के परमाणुओं से लेकर अणुओं, आणविक संरचनाओं, कोशिकाओं, कोशिकीय संरचनाओं इत्यादि तक और साथ ही साथ चैतन्य इकाइयाँ भी शून्य में संपृक्त हैं, सह-अस्तित्व में हैं, एवं एक दूसरे के साथ परस्परता को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं। इस फैलाव को चित्र। 11-3। में इंगित किया गया है।

इन सब का आधार सह-अस्तित्व है। इस सह-अस्तित्व का प्रकटन शून्य में इकाइयों के संपृक्त होने के रूप में हो रहा है। इकाइयाँ आकार में सीमित हैं, क्रिया हैं और वह क्रियाशील हैं। शून्य असीमित है, सर्वव्यापी है और इसमें कोई क्रिया नहीं है। शून्य में संपृक्तता के आधार पर इकाइयाँ उर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं एवं शून्य में अन्य इकाइयों के साथ परस्परता को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं।

इस अध्याय में हमने अस्तित्व की व्यवस्था को सह अस्तित्व के रूप में जाना, जो की शून्य में संप्रिक्क्त इकाइयों के रूप में है। शून्य में सभी इकाइयों का स्व वयवस्थित, ऊर्जित और एक इकाई का दूसरे इकाई के साथ पहचानने निर्वाह करने को जाना। कक्षा 12 में हम जड़ और चैतन्य इकाइयों को अस्तित्वगत दृष्टिकोण से विभिन्न स्तरों पर उसकी अभिव्यक्ति का अध्ययन करेंगे। और अंततः समझ के सहज प्रतिफल के रूप में अस्तित्व में मानव के भागीदारी को जान पाएंगे।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- अस्तित्व है - जो भी विद्यमान है, या जो भी है या जो भी होना है, व्यवस्था में है।
- अस्तित्व सह-अस्तित्व है, जो शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में है।
- इकाइयाँ दो प्रकार की हैं - जड़ इकाइयाँ एवं चैतन्य इकाइयाँ। सभी इकाइयों का आकार सीमित है। ये क्रिया हैं, और अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में भागीदारी करते हुये क्रियाशील हैं।
- शून्य असीमित है, सर्वव्यापी है और क्रियाशून्य है।
- इकाइयाँ शून्य में संपृक्त हैं।

अपनी समझ को जाँचे
(Test Your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. जो भी विद्यमान है, अस्तित्व है। अस्तित्व में जो दो प्रकार की वास्तविकतायें हैं वे क्या हैं? आप इन दोनों वास्तविकताओं में किस प्रकार विभेद करेंगे?
2. शून्य के बारे में अध्ययन करना क्यों आवश्यक है?
3. इकाइयाँ शून्य के सह-अस्तित्व में हैं। जहाँ भी इकाई है, वहाँ भी शून्य है। इन दोनों कथनों की व्याख्या कीजिये।

4. इकाई और शून्य में अंतर स्पष्ट कीजिये।
5. इकाइयाँ, शून्य में संपृक्त हैं इसका क्या अर्थ है, इसके तीन आशय क्या हैं?
6. शून्य में संपृक्त प्रकृति की इकाइयों को इनके विभिन्न अवस्थाओं के रूप में एक चार्ट के माध्यम से स्पष्ट करें?

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self Exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये, कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. 'स्वयं (मैं)' का निरीक्षण कीजिये। आप शून्य में संपृक्त हैं, ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं, आप में सह-अस्तित्व, व्यवस्था एवं संबंध के लिये सहज-स्वीकृति बनी हुई है। यही आपकी क्षमता का सम्पूर्ण क्षेत्र है; मानव होने के रूप में आप में इसकी पूरी संभावना है। जाँच कर देखिये कि क्या आपके लिये ऐसा है या नहीं।

अब अपने 'शरीर' का निरीक्षण कीजिये। यह शून्य में संपृक्त है। इसमें करोड़ों कोशिकायें हैं। प्रत्येक कोशिका ऊर्जित है, स्व-व्यवस्थित है और अन्य इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती है और अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करती है जो कि विभिन्न अंग-प्रत्यंग के रूप में मिलकर आपके 'शरीर' को संगठित करती हैं - यह सब कुछ परस्पर-पूरकता विधि से हो रहा है। प्रत्येक क्षण कुछ कोशिकायें मरती हैं और कुछ नई बन जाती हैं और वे इसी प्रकार से भागीदारी करती रहती हैं, क्या ऐसा ही है? क्या अस्तित्व की प्रत्येक जड़ इकाई में ऐसा ही है? जाँचें।

इसी प्रकार पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था एवं जीव-अवस्था सभी व्यवस्था में हैं। इन सब का निश्चित आचरण है। आपकी आवश्यकता पूर्ति के लिये ये प्रचुरता में पहले से ही उपलब्ध हैं।

इन सब में, आपका 'स्वयं (मैं)' है, आपका 'शरीर' है और आपका 'स्वयं (मैं)' अपने 'शरीर' के साथ सह-अस्तित्व में है। अब, इसको ध्यान में रखते हुये जाँच करके देखिये कि अस्तित्व में आपके 'स्वयं (मैं)' के लिये क्या करना सही है। यह भी जाँच करके देखिये कि क्या ये अस्तित्व में प्रत्येक मानव के लिये सही है। यही सार्वभौमिक मानवीय मूल्य का अर्थ है। इसे स्वयं में देखें और जाँच करें।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का 'स्वयं (मैं)' में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों

(creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

परिशिष्ट

A3-1: मूल चाहना क्या है?

A3-1: What is Basic Aspiration?

हम में से हर व्यक्ति कुछ न कुछ प्रयास तो कर ही रहा है। जैसे कि हम कुछ सोचते रहते हैं, कुछ करते रहते हैं इत्यादि। इस प्रकार हम सब कुछ न कुछ प्रयास कर ही रहे हैं। हम मूलतः ये सभी प्रयास क्यों कर रहे हैं? पहले हम इसी का अध्ययन करना चाहते हैं।

करना (प्रयास करना) ⇨ बनना ⇨ पाना ⇨ होना

पहली दृष्टि में हमारे सभी प्रयास कुछ बनने के अर्थ में दिखते हैंजैसे इंजीनियर, डॉक्टर, किसान, IAS अधिकारी, वकील, वैज्ञानिक, कलाकार, संगीतकार, फिल्म निर्माता, या चार्टर्ड अकाउंटेंट इत्यादि। अब अगर स्वयं से पूछें कि हम यह बनना क्यों चाहते हैंतो कुछ और बुनियादी,मूलभूत वास्तविकताओं के करीब पहुँच सकते हैं।

हम इंजीनियर, डॉक्टर, किसान इत्यादि बनने का प्रयास इसलिये कर रहे हैं, क्योंकि हम यह सब बनकर कुछ पाना चाहते हैं। आप अपने में ही जाँचकर देखें किआप इंजीनियर, डॉक्टर या किसान इत्यादि क्यों बनना चाहते हैं? तो इसका उत्तर नई-नई इमारतों को डिजाइन करने, हानिकारक रसायनों से मुक्त भोजन उगाने इत्यादि के अर्थ में हो सकता है। स्वयं के लिये जाँचकर देखें कि क्या सिर्फ नई इमारत के लिये डिजाइन बनाना अथवा जैविक प्राकृतिक भोजन उगाना ही आपका अंतिम लक्ष्य हैया आप इन्हें करने के बाद इनसे कुछ और पाना चाहते हैं। जैसे एक इंजीनियर बनने और नई इमारतों को डिजाइन करने के बादआप इससे बहुत सारा धन पाना चाह सकते हैं। एक किसान के रूप मेंआप प्राकृतिक भोजन उगाकर अच्छे स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में सफलता पाना चाहते हैं। इन लक्ष्यों को पाना इसलिये चाह सकते हैं कि इनके आधार पर आपके आस-पास के लोग आपको सम्मान दें; समाज में आपका बहुत नाम हो, प्रसिद्धि हो इत्यादि। क्या आप यह देख सकते हैं?

अब हम उस मूल चाहना के लगभग करीब हैं जिसके लिये हम कुछ बनने का, करने का या पाने का यह प्रयास कर रहे हैं। इंजीनियर या किसान बनना तो धन और सम्मान पाने का एक साधन मात्र है। हम वकील बनकर या संगीतकार बनकर या अन्य और व्यवसायों के माध्यम से भी ये धन और सम्मान प्राप्त कर सकते हैं। अब, हम दोबारा वही प्रश्न पूछते हैं कि, "क्या पैसा और सम्मान ही हमारी वह मूल चाहना है जो वास्तव में हम चाहते हैं या हमारी मूल चाहना कुछ और है?"कृपया चित्र A3-1-1का संदर्भ लें।

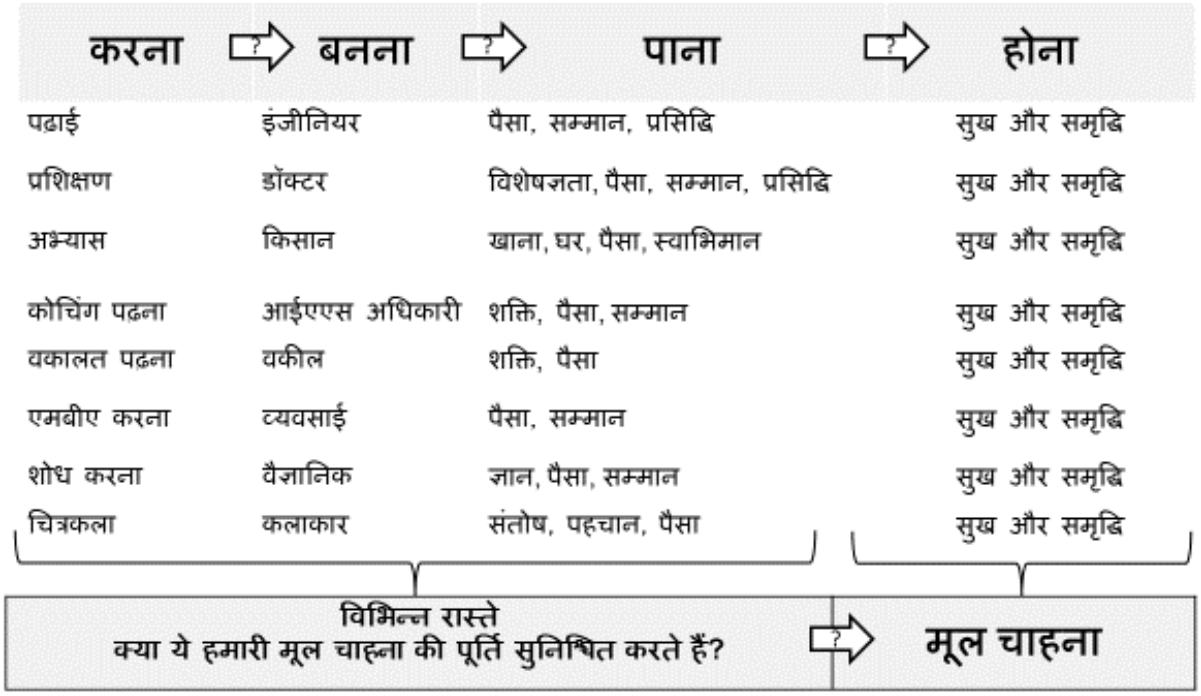

चित्र. A-3-1-1. जीने के विभिन्न रास्ते (मूल चाहना से जुड़े बिना ही)

हम कुछ न कुछ करते हैं क्योंकि हम कुछ बनना चाहते हैंऔर बनकर कुछ न कुछ पाना चाहते हैं; किन्तु यह करना, बनना और पाना किसके लिये है? ये सब हमारे 'सुखी और समृद्ध' होने के लिये है।

यह वही मौलिकवस्तुहै,जोहमहोनाचाहते हैं,जिसकीनिरंतरताचाहतेहैं।अतःहमारीमूलचाहनानिरंतर सुखी और समृद्ध होना है।

मानव की मूल चाहना- निरंतर सुख और समृद्धि

Continuous Happiness and Prosperity as Basic Human Aspirations

अपने में जाँच कर देखिये कि क्या आप सुखी होना चाहते हैं या दुखी?या आप कभी सुखी होना चाहते हैं और कभी दुखी? या आप हर समय, निरंतरता में सुखी रहना चाहते हैं? इसी तरहअपने में यह भी जाँचिये कि आप समृद्ध होना चाहते हैं या नहीं। इसके अलावा, यह भी जाँचिये कि आप केवल कभी-कभी समृद्ध होना चाहते हैं या निरंतरता में?

आप अपने विचारों और कार्यों को देखें एवं स्वयं से बार-बार पूछें कि यह विचार क्यों,यह कार्य क्यों? तो थोड़ी जाँच से यह पता चलेगा कि अंततः आप सुखी होना चाहते हैं, समृद्ध होना चाहते हैं और सुख, समृद्धि की निरंतरता चाहते हैं। आपकी इच्छा, विचार और आशा सहित आपके सभी प्रयास इसी अर्थ में हैं, क्योंकि वास्तव में आप यही होना चाहते हैं। यह आप में स्वाभाविकरूप से है ही जो कि निरंतरता में आप में बनी रहती है। यहीआपकी मूल चाहना है। जब आप जाँच करेंगेतो देखेंगे कि आपकी यह चाहना कभी बदलतीनहीं है;यह उम्र, करियर प्लान, व्यापार, स्थान इत्यादि में बदलाव के बावजूद भी आपमें एक समान बनी रहती है; आपके जीने की स्थिति कोई भी क्यों न होआपमें 'निरंतर सुखी और समृद्ध होने की यह मूल चाहना' हमेशा एक जैसी बनी रहती है। इसे अपने लिये स्व-सत्यापित करें।

यदि हमें यह स्पष्ट है,तो हम अपने प्रयासों का नियोजन इसी चाहना को पूरा करने के अर्थ में करेंगे। हम इसी की पूर्ति के अर्थ में कार्यक्रम बनायेंगे और कार्यक्रम के प्रत्येक पायदान (Step)को इस तरह से संयोजित करेंगे कि यह हमें हमारी मूल चाहना की पूर्ति के करीब ले जाये। हालांकिहम अपनी मूल चाहना स्पष्ट न होने के बावजूद भी कार्यक्रम तो बनाते ही हैं, लेकिन तब हम यह देखने में सक्षम नहीं हो पाते कि क्या यह कार्यक्रम हमें हमारी मूल चाहना की पूर्ति की ओर ले जा पायेगा या नहीं! हम यह मान लेते हैं कि ये कार्यक्रम हमें बेहतर स्थिति में ले जायेंगेबिना इस बात की स्पष्टता के कि वह बेहतर स्थिति क्या है या हम किसी न किसी पायदान (Step) को ही अंतिम पड़ाव मान लेते हैं।

उदाहरण के लिये हम स्कूल की पढ़ाई को पूरा करने, स्नातक स्तर की पढ़ाई को पूरा करने, नौकरी प्राप्त करनेइत्यादि को अपने लक्ष्य के रूप में मान सकते हैं। किन्तु जब इस तरह कोई एक योजना पूरी हो जाती है,तो भी स्वयं में अपूर्णता ही लगती रहती है,यानी हममें कुछ अधूरापन, असंतोष की भावना बनी ही रहती है,जिसके कारण हम किसी अन्य योजना के बारे में पुनः सोचने लगते हैं और यही चक्र चलता रहता है, ऐसा लगता है कि जिंदगी एक ऐसी दौड़ बन गयी है जिसमें कोई अंतिम बिंदु है ही नहीं। हम ऐसा कोई बिंदु तय नहीं कर पाते कि हम यह कह सकें कि यही वह अंतिम लक्ष्य है, जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं जिसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।

जब आप पढ़ते हैंतो क्या आप को यह स्पष्ट रहता है कि आप इस पढ़ाई को अपने सुख और समृद्धि के लिये कर रहे हैं या इसे केवल आप एक असाइनमेंट मानकर पूरा करने की दृष्टि से कर रहे हैंया मात्र एक परीक्षा पास करने के लिये या मात्र एक डिग्री प्राप्त करने के लिये या मात्र एक नौकरी प्राप्त करने के लिये? इत्यादि। ऐसे ही जब आप गेहूँ के बीज की बुआई कर रहे होते हैं तो उस समय आपके विचार किस अर्थ में चलते हैं, क्या आपके विचारों में इससे होने वाला लाभ चलता रहता है या यह चलता है कि इससे प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता के संबंध का निर्वाह होगा साथ ही साथ हमारी समृद्धि भी सुनिश्चित होगी?

इस प्रकार अपने सभी विचार और कार्यों के लिये यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि ये किन चरणों (steps)के माध्यम से आपके अंतिम लक्ष्य अर्थात्मूल चाहना से जुड़े हुये हैं? यह भी जाँच करें कि क्या यह मान लेना ठीक है कि 'आप अपना प्रयास करते रहो आपकी मूल चाहना तो स्वतः पूरी हो ही जायेगी'जैसे कि 'मेहनत करते रहो बाकी सब तो स्वतः ही ठीक हो जायेगा' अथवा 'अधिकाधिक लाभ कमाते रहो समृद्धि तो स्वतः आ ही जायेगी' इत्यादि।वास्तव में इस प्रकार की बातों के बारे में यह जाँच आवश्यक है कि ये कैसे आपकी मूल चाहना से जुड़ी हुई हैं?

इसी तरहअपने किसी कार्यक्रम या चरण (step) के बारे में ऐसा मान लेना ठीक है क्या कि यही वह अंतिम चरण (step) हैजो एक बार पूरा हो गया तो बाकी सब कुछ स्वतः ठीक हो ही जायेगा? जैसे कि एक अच्छा इंजीनियर या डॉक्टर बन जाना ही वह अंतिम चरण (step) है एक बार आप इसमें सफल हो गये तो जीने की बाकी समस्यायें तो स्वतः ही हल हो जायेंगी; और क्या यह आपको सही लगता है?

एक बार जब हममें यह स्पष्टता हो पाती है कि हमारी मूल चाहना निरंतर सुख और समृद्धि हैतब हम अच्छी तरह से आपस में जुड़े हुये एक चरणबद्ध कार्यक्रम के द्वारा अपनी इस मूल चाहना को पूरा करने के अर्थ में अपने सभी प्रयासों को कदम दर कदम नियोजित करने में सक्षम हो पाते हैं। मूल चाहना स्पष्ट होने सेहम यह तय कर पाते हैं कि हमें क्या बनना है, क्या पाना है, क्या होना हैऔर इन सब के लिये हमें करना क्या है जैसा कि चित्र A3-1-2 में दिखाया गया है।

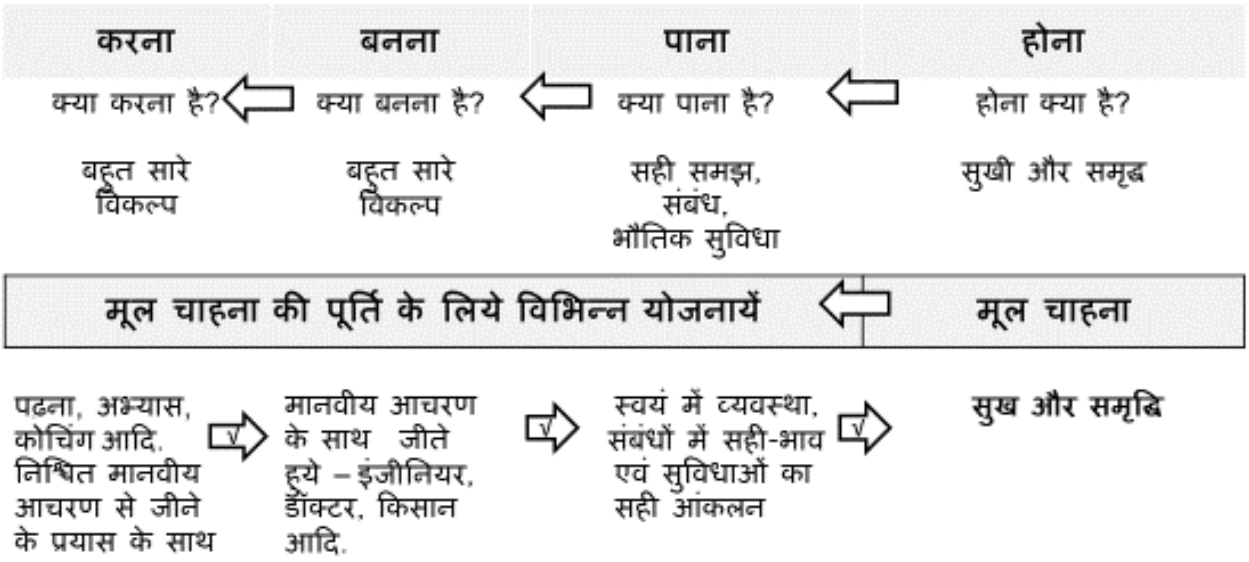

चित्र. A3-1-2. मानव की मूल चाहना की स्पष्टता के साथ जीने की योजना

इस प्रकार हमारा हर प्रयास एक विशिष्ट दिशा में होगा अर्थात्हमारी मूल चाहना की ओर होगा। यह प्रयास मौलिक रूप से निश्चित मानवीय आचरण के विकास के लिये होगा; हम मानव लक्ष्य की स्पष्टता सहित एक सार्थक व्यवसायी बनने के साथ-साथ मानव-चेतना से युक्त एक अच्छा इंसान बनने की योजना भी बनायेंगे; हम स्वयं में व्यवस्था सुनिश्चित करने के अर्थ में अन्य लोगों के साथ संबंध में सही भाव एवं परिवार में समृद्धि के लिये आवश्यक भौतिक सुविधा जुटाने के लिये योजना भी बनायेंगे। जहाँ तक भौतिक सुविधा का संबंध है,हम शेष-प्रकृति के साथ चक्रीय और परस्पर-संवर्धन विधि से इसके उत्पादन को सुनिश्चित करेंगे। दूसरी ओर,यदि हम इस मूल चाहना की स्पष्टता के बिना ही केवल कुछ चरणों के अर्थ में ही कार्य कर रहे हैंतो हमारे प्रयास किसी विशेष दिशा में हो भी सकते हैं या नहीं भी;ये तृप्ति दायक हो भी सकते हैं या नहीं भी।ये प्रयास मूल लक्ष्य के विपरीत दिशा में भी हो सकते हैं

जिसके परिणामस्वरूप ये परस्पर विरोध (उदाहरण के लिये युद्ध) का कारण भी बन सकते हैं। इन दोनों संभावनाओं को चित्र A3-1-3में दिखाया गया है।

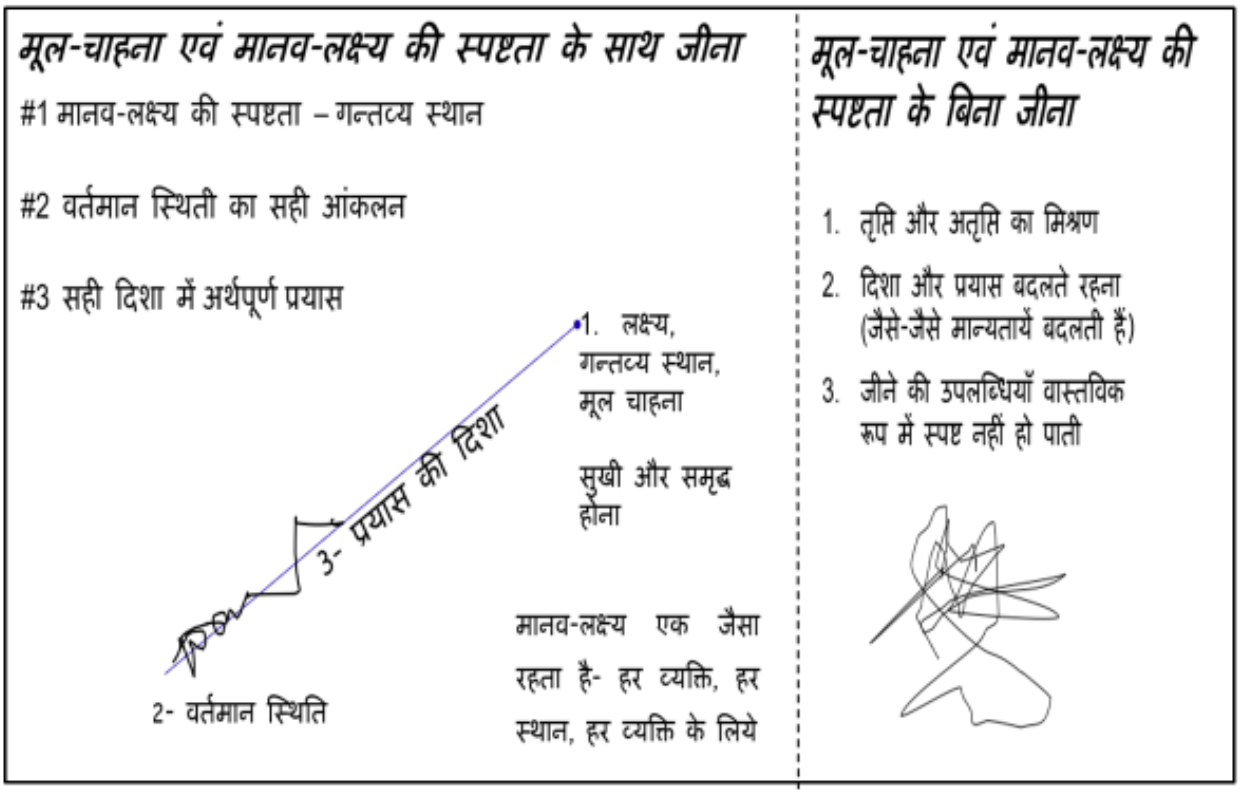

चित्र. A3-1-3. मूल-चाहना की स्पष्टता अथवा स्पष्टता के बिना जीना

प्रयोग के लिये महत्वपूर्ण बिन्दु (Takeaways):

- हम जो करते हैं (करना), हम जो बनते हैं (बनना) और हमें जो प्राप्त होता है (पाना) ये सभी कदम निरंतर सुख और समृद्धि की स्थिति (होना)को सुनिश्चित करने के अर्थ में हैं। इन क़दमों में बहुत विविधता हो सकती है किन्तु हमारा 'होना' निश्चित है।
- हमारी मूल चाहना की स्पष्टता के साथ, हमारे जीने की योजना के सभी कदम अच्छी तरह एक दूसरे से जुड़े हुये एक निश्चित दिशा में होते हैं। हमारी मूल चाहना की स्पष्टता के बिना यदि हम योजना बनाते हैं तो सामान्यतः इन कदमों को ही लक्ष्य मान लेते हैं या कभी-कभी तो ये कदम एक दूसरे के विरोध में भी हो सकते हैं।

परिशिष्टA6-1: 'स्वयं(मैं)' कीक्रियायें

Appendix A6-1: Activities of the Self

'स्वयं(मैं)' की दस क्रियाओं को चित्र A6-1में उल्लेखित किया गया है।

गति क्रिया	स्थिति क्रिया
1. प्रामाणिकता	अनुभव
2. संकल्प	बोध
3. चित्रण ←	चिंतन
4. विश्लेषण	तुलन
5. चयन	आस्वादन

चित्र. A6-1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

अध्याय-6 में, हमने 'स्वयं(मैं)' की क्रियाओं के बारे में संक्षेप में चर्चा की थी। अब, हम 'स्वयं(मैं)' की सभी दसों क्रियाओं के बारे में विस्तृत चर्चा कर रहे हैं [ए नागराज १ ९९९]।

'स्वयं(मैं)'पाँच स्थिति-क्रियाओं और पाँच गति-क्रियाओं का एक अविभाज्य चैतन्य इकाई है।

अनुभव, बोध, चिंतन, तुलन और आस्वादन स्थिति-क्रियायें हैं।

प्रमाण, संकल्प, चित्रण, विश्लेषण और चयन गति-क्रियायें हैं।

स्थिति और गति क्रियायें साथ-साथ हैं।

'अस्तित्व' सह-अस्तित्व के रूप में है। अस्तित्व जैसा है उसे वैसा जानना ही अनुभव-क्रिया है अर्थात् सह-अस्तित्व का अनुभव। यह सह-अस्तित्व के अर्थ में जीने के प्रमाण के रूप में अभिव्यक्त होता है अर्थात् सार्वभौम मानवीय व्यवस्था के रूप में।

प्रकृति में एक अंतर्निहित व्यवस्था है। प्रकृति की इस अंतर्निहित व्यवस्था को समझना ही बोध-क्रिया है। यह समझ प्रकृति की व्यवस्था में जीने के संकल्प के रूप में अभिव्यक्त होती है।

अस्तित्व में प्रत्येक इकाई का एक निश्चित स्वभाव हैअर्थात् उसकी बड़ी-व्यवस्था में एक निश्चित भागीदारी है। इस भागीदारी को जानना ही चिंतन-क्रिया है। यह भागीदारी संबंध में परस्पर-पूरकता के अर्थ में जीने की इच्छा के रूप में अभिव्यक्त होती है।

विश्लेषण-क्रिया का आशय इच्छा की पूर्ति के लिये विभिन्न विधियों एवं आवश्यक संसाधनों के विवरणों से संबंधित विभिन्न विकल्पों की तुलना करना है। तुलनके छह आधार(दृष्टि) हैं:

1. इंद्रियों के अनुकूल (प्रिय)

2. स्वास्थ्य के अनुकूल (हित)

3. सुविधा संग्रह के अनुकूल (लाभ)

4. मानव-मानव संबंध में उभय-सुख के अर्थ में (न्याय)

5. प्रकृति में व्यवस्था (परस्पर-पूरकता) के अर्थ में (व्यवस्था)

6. सह-अस्तित्व के अर्थ में (सह-अस्तित्व)

वह 'स्वयं(मैं)', जिसने अनुभव, बोध और चिंतन की अपनी क्षमता को साकार कर लिया है (जिसका उल्लेख हमने सही-समझ के रूप में किया है), वह 'स्वयं(मैं)' अपनी तुलन-क्रिया में बिन्दु 6, 5, 4 के आधार पर बिन्दु 3, 2, 1 को निर्देशित कर पाता है। दूसरे शब्दों मेंसह-अस्तित्व, परस्पर-पूरकता, और न्याय हमारी तुलन की दृष्टि में प्राथमिक आधार होते हैं। ये तीनों दृष्टियाँ (सह-अस्तित्व, व्यवस्था, और न्याय) शेष तीनों दृष्टियों (प्रिय हित लाभ) को संवेदना, शरीर और भौतिक सुविधा के सदुपयोगके अर्थ में मार्गदर्शन कर पाती हैं। ये निर्देशित विकल्प हमें शरीर के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिये पोषण और संरक्षण के अर्थ में उपयुक्त भौतिक सुविधाओं के चयन हेतु संवेदना का उपयोग करने,स्वयं के विकास और सामाजिक विकास (व्यापक मानव लक्ष्य) के अर्थ में शरीर का उपयोग करने; एवं उभय-समृद्धि सुनिश्चित करने के अर्थ में भौतिक सुविधाओं का उपयोग करने के योग्य बनाती हैं।

वह 'स्वयं(मैं)' जिसने अपनी पूरी क्षमता को अभी साकार नहीं किया है ('स्वयं(मैं)' जिसमें सही समझ का अभाव है), एक सीमित तरीके से केवल बिन्दु 3, 2, 1 की दृष्टि के आधार पर तुलन करता है। चूंकि यह तुलन सही-समझ से निर्देशित नहीं है अतः प्राथमिकता केवल संवेदना, भौतिक-अनुकूलता या लाभ की ही होती है।

इस प्रकार की सभी अभिव्यक्तियाँ जिनमें बाहरी दुनिया भी शामिल हो, वह 'स्वयं(मैं)' में चयन-क्रिया के माध्यम से होती हैंजो कि आस्वादन पर आधारित होती हैं अर्थात् संवेदना, संबंधों में मूल्य और मानवीय लक्ष्य के आस्वादन पर आधारित होती हैं।

शब्दकोष

शब्द (वास्तविकता की ओर संकेत)	**अर्थ** (वास्तविकता का संक्षिप्त विवरण)
क्रिया	समय के साथ किसी इकाई में होने वाला परिवर्तन।

	1.इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं और क्रियाशील हैं (अपने स्वभाव के अनुसार दूसरी इकाइयों के साथ संबंध का निर्वाह कर रही हैं) । 2.क्रियायें- भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और चैतन्य क्रिया के रूप में हो सकती हैं।
क्रियापूर्णता	'स्वयं(मैं)' की वह स्थिति,जिसमें 'स्वयं(मैं)' अपनी सारी क्रियाओं में जागृत होता है।
पशु-चेतना	वह व्यक्ति जो अपने आप को सिर्फ शरीर मानकर, अपनी सभी आवश्यकताओं को केवल भौतिक सुविधाओं से ही पूरा करने का प्रयास करता है (वह स्वयं में सही-समझ और संबंधों में सही-भाव के लिये प्रयास नहीं करता)।
मानना	स्वयं और दूसरों के प्रति स्वीकृति। इसकी दो संभावनायें हैं: 1.जानना के आधार पर मानना - स्वीकृति निश्चित होती है। मैं मानव हूँ; दूसरा भी मेरे जैसा ही है;और मैं संबंध में परस्पर-पूरकता के निर्वाह का भाव रखता हूँ। 2.जानना के बिना मानना – स्वीकृतियाँ,मान्यताओं और संवेदनाओं पर आधारित होती हैं,जिनमें अनिश्चितता रहती है; संबंधों में भाव शर्त आधारित होते हैं।
व्यवहार	एक मानव की दूसरे मानव के साथ परस्परता। यह परस्परता मुख्यतः भावों के आदान-प्रदान के रूप में होती है।
शरीर	'स्वयं' (चैतन्य-इकाई) के सह-अस्तित्व में एक जड़-इकाई।
चरित्र	मानव द्वारा किया गया व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी।
सह-अस्तित्व	शून्य के संपृक्तता में परस्पर जुड़ी हुई, अंतर्संबंधित इकाइयां।
आचरण	मानव का संपूर्ण जीना; मानव का अपनी समझ और विचार के साथ व्यवहार, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी।
आचरण-पूर्णता	मानव का ऐसा आचरण जिसमें 'स्वयं(मैं)' अपनी सभी क्रियाओं (चिंतन बोध और अनुभव सहित) में जागृति पूर्वक व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी करता हो।
चैतन्यता	इकाइयाँ जिनमें जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह-करने की क्रियायें हैं। वर्तमान में मानव में मानने की क्रिया तो जागृत है किन्तु जानने की क्रिया जागृत हो भी सकती है और नहीं भी।
चेतना विकास	स्व-विकास ('स्वयं' का विकास); जानने के बिना सिर्फ मानने के आधार पर जीने के बजाय जानने और मानने के आधार पर जीने की उच्च क्षमता

	को जागृत करना। इसी को पशु-चेतना से मानव-चेतना में संक्रमण के रूप में भी देखा जाता है।
चक्रीय और परस्पर संवर्धन	एक ऐसी प्रक्रिया, जिसमें भाग लेने वाली सभी इकाइयाँ एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होती रहती हैं; और इस प्रक्रिया में भाग लेने वाली सभी इकाइयों का संवर्धन भी होता रहता है।
निश्चित मानवीय आचरण	मानवीय-चेतना पर आधारित आचरण। ऐसे आचरण में मानव का व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी,संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ के आधार पर होती है;प्रत्येक मानव में इसके लिये सहज-स्वीकृति भी है।
दासता	यह निम्न में से किसी भी प्रकार की हो सकती है: a. शारीरिक विवशता के रूप में b. स्वयं में ऐसी अपेक्षाओं के रूप में जो कि व्यवस्था के अर्थ में नहीं हैं c. विरोधाभासी विचारों के रूप में d. स्वयं में ऐसी इच्छाओं के रूप में जो कि सह-अस्तित्व के अनुरूप नहीं हैं
परतंत्रता	दूसरे के द्वारा निर्देशित होना अथवा अपनी अंतर्विरोधी आशा, विचार या इच्छा के द्वारा निर्देशित होना
नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण की अभिव्यक्ति (व्यवहार, कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी) के मूलभूत नियम/सिद्धांत ही नैतिकता है।
नैतिक	नैतिकता के अनुरूप (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक आचरण	नैतिकता के अनुरूप आचरण (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक मानवीय आचरण	सही-समझ, सही-भाव के साथ बड़ी व्यवस्था (बाहरी संसार) में मानव की भागीदारी - जो कि नैतिकता (ऊपर परिभाषित) के अनुरूप हो।
अस्तित्व	जो कुछ भी है /जो कुछ भी होना है।
प्रयोगात्मक-सत्यापन	जीने में सत्यापन - मानव के `साथ व्यवहार में और शेष-प्रकृति के साथ कार्य में।
परिवार	एक दूसरे के लिये स्वीकृति का भाव रखने वाले व्यक्तियों का समूह, जो कि परस्पर-पूरकता के अर्थ में जीते हों।
अभय	परस्परता में विश्वास और परस्पर-पूरकता।
निर्वाह	जो इकाई की निश्चित आवश्यकता को पूरा कर रहा हो।
सुख	व्यवस्था में होना।
संगीत	व्यवस्था, सामंजस्य
स्वास्थ्य	(1) 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के अनुसार कार्य करता है।

	(2) 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी हुई है।
मानव	'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व।
मानव चेतना	मानव, जो अपने आप को 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझता हो; जो 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताओं को सही-समझ एवं सही-भाव से तथा 'शरीर' की आवश्यकताओं को सुविधाओं से पूरा करता हो। जो धीरता पूर्वक संबंधों में न्याय, व्यवस्था और सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) का निर्वाह करता हो।
मानव लक्ष्य	सही-समझ और सही-भाव (सुख), समृद्धि, अभय (विश्वास), और सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता)।
मानवीय मूल्य	अस्तित्व के सभी स्तरों पर मानव की स्वाभाविक भागीदारी- धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा।
मानवीय आचरण	मानव का अपने स्वभाव के अनुसारआचरण।
मानवीय समाज	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव-लक्ष्य की पूर्ति हो पाये।
मानवीय परंपरा	1.पीढ़ी दर पीढ़ी समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के साथ जीने वाले लोगों का समूह। 2.मानवीय आचरण, शिक्षा, संविधान और सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था, और इनकी निरंतरता।
प्रकृतिसहजधारणा	इकाई के होने की प्रकृति सहज व्यवस्था जो कि इकाई से अविभाज्य है।
अंतर्संयोजनात्मकता	साथ-साथ होना और एक दूसरे से संबंधित होना।
परस्पर-निर्भरता	परस्परता में एक-दूसरे से जुड़े होना और एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
जानना	वास्तविकता जैसी है उसे सीधे-सीधे वैसा ही देखना, उसकी संपूर्णता में देखना।
ज्ञान	1.वास्तविकता की सही-समझ। वास्तविकता जैसी है उसे वैसा ही देखना, उसे संपूर्णता में देखना। 2.स्वयं का ज्ञान, अस्तित्व का ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण का ज्ञान।
बड़ी व्यवस्था	इकाई जिस व्यवस्था का भाग है, वह व्यवस्था उस इकाई की बड़ी व्यवस्था है।
जड़	इकाइयाँ जिनमें सिर्फ पहचानना और निर्वाह-करना होता है(जिनमें जानने या मानने की क्रिया नहीं होती है)। जिनकी आवश्यकतायें और क्रियायें सामयिक हैं।
परस्पर	साथ-साथ, एक दूसरे के साथ।

परस्पर-पूरकता	एक इकाई का दूसरी इकाई के साथ संबंध में रहते हुये, एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
सहज स्वीकृति	स्वीकृति का सहज भाव, जो कि संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में हो।
स्वभाव	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में उसकी प्रकृति सहज भागीदारी।
प्रकृति	इकाइयों (जड़ और चैतन्य) का समूह।
भागीदारी	व्यवहार, कार्य या दूसरी इकाई के साथ किसी अन्य रूप में निर्वाह।
मान्यता	मानना जो कि अभी स्व-सत्यापित नहीं हुआ है। मानना सही भी हो सकता है और नहीं भी।
व्यवसाय	बड़ी व्यवस्था में भागीदारी जैसे उत्पादन, स्वास्थ्य, विनिमय इत्यादि व्यवस्थाओं में भागीदारी। मानवीय चेतना के अर्थ में सही-समझ के साथ जो भी सीखा है और अभ्यास किया है,उसे स्वीकृति के साथ करना।
व्यावसायिक नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण के मूल सिद्धांतों की अभिव्यक्ति (व्यवहार कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी)विशेष रूप से व्यवसाय के संबंध में जो भी हम करते हैं।
समृद्धि	आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधाओं के उपलब्ध होने का भाव या उत्पादन या कर पाने का भाव।
उद्देश्य	इकाई का स्वभाव।
वास्तविकता	जो भी है। वास्तविकतायेंमूलतः तीन प्रकार की हैं – जड़, चैतन्य और शून्य
अनुभव	संपूर्ण वास्तविकता के सार को प्रत्यक्ष देखना। स्वयं में अस्तित्व को सह-अस्तित्व के रूप में देखना।
पहचानना	संबंध को देख पाना।
सही-भाव	सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध का भाव। विश्वास का भाव (आधार मूल्य) से लेकर प्रेम का भाव (पूर्ण मूल्य) तक[सभी नौ मूल्य]।
सही-समझ	जीने के चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझना- स्वयं से लेकर संपूर्ण-अस्तित्व तक। ज्ञान संपन्नता।
सदुपयोग	1.मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के अर्थ में सुविधाओं का उपयोग। 2.मानवीय मूल्यों की पूर्ति के अर्थ में धन ('शरीर', 'स्वयं(मैं)' और सुविधाओं) को अर्पित करने की क्रिया।

संस्कार	अभी तक की 'स्वयं(मैं)' में संग्रहित सभी इच्छा, विचार और आशा से प्राप्त स्वीकृतियां।
लक्ष्य	गंतव्य। जैसा हम होना चाहते हैं और जिसकी निरंतरता चाहते हैं हम सुखी होना चाहते हैं और सुख की निरंतरता चाहते हैं
'स्वयं(मैं)'	चैतन्य इकाई।
स्व-अन्वेषण	स्वयं में अध्ययन। अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच के उपरांत अपने व्यवहार और कार्य में प्रायोगिक सत्यापन।
स्व-राज्य	स्वयं में व्यवस्था का बाहरी संसार तक फैलाव।
स्व-व्यवस्थित	अपनी प्रकृति सहज धारणा के अनुसार होना; अर्थात् स्व-व्यवस्था में होना, निश्चित क्रम में होना, अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करना।
स्व-व्यवस्थित संगठन	किसी इकाई की आतंरिक स्व-व्यवस्था या इकाई के होने का क्रम।
संयम	1.शरीर के संदर्भ में - शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी का भाव। 2.प्रकृति के संदर्भ में – चारों अवस्थाओं में नियमन।
स्व-सत्यापन	स्वयं के द्वारा, अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में सत्यापन के साथ-साथ संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में अपने जीने का प्रायोगिक सत्यापन करना।
संवेदना	शरीर के पाँचों संवेदी अंगों से मिलने वाली सूचना जिसे 'स्वयं(मैं)' पढ़ता है – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।
कौशल	प्रक्रियाओं को सीखना (तरीका या तकनीक) a.शेष-प्रकृति के साथ कार्य b.मानव के साथ व्यवहार में भावों को व्यक्त करना।
समाज	परिवारों का ऐसा समूह जो एक दूसरे के साथ परस्पर पूरकता के अर्थ में जीते हों।
शून्य	एक सर्वव्यापी वास्तविकता, जिसमें प्रत्येक जड़ और चैतन्य इकाई सम्पृक्त है, साम्य ऊर्जा है, पारदर्शी है।
सत्य	सार, जो नित्य वर्तमान है।
अखंड समाज	एक ऐसा समाज जिसके प्रत्येक व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति हो।
दु:ख	अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना।

सार्वभौममानवीय व्यवस्था	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव लक्ष्य की पूर्ति होती हो।
मूल्य	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में प्रकृति सहज भागीदारी।
विवेक	मानव लक्ष्य की स्पष्टता।
कार्य	मानव का शेष-प्रकृति पर किया गया श्रम जिसमें सुविधा का उत्पादन होता है।

संदर्भ

1. ए नागराज, 1999, जीवन विद्या एक परिचय, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
2. ए नागराज, 1999, व्यवहारवादीसमाजशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
3. ए नागराज, 2001, आवर्तनशील अर्थशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
4. ए नागराज, 2003, मानव व्यवहार दर्शन, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
5. ए नागराज, 2003, समाधानात्मकभौतिकवाद, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
6. एन त्रिपाठी, 2003, मानव-मूल्य, न्यूऐजइंटरनेशनलप्रकाशक।
7. बीएलबाजपेई, 2004, इंडियन एथोस एंड मॉडर्नमैनेजमेंट, न्यू रॉयल क्लास नोट्सकं, लखनऊ। 2008पुनर्मुद्रण।
8. बी पी बनर्जी, 2005, फाउंडेशनऑफ़एथिक्सएंडमैनेजमेंट, एक्सेल बुक्स।
9. डीएचमीडोज, डेनिसएलमीडोज, जोर्गेनरैंडर्स, विलियमडब्ल्यूबेहरेंस।।।, 1972, लिमिट्सटूग्रोथ - क्लब ऑफ रोम
   की रिपोर्ट, यूनिवर्स बुक्स।
10. ई एफशूमाकर, 1973, स्मॉलइजब्यूटीफुल: ए स्टडी ऑफ इकोनॉमिक्सऐजइफ पीपुलमैटरेड, ब्लॉन्ड एंड ब्रिग्स,
   ब्रिटेन।
11. ई जी सेबॉएर और रॉबर्टएल बेरी, 2000, फंडामेंटल ऑफ एथिक्स फॉर साइंटिस्ट्स एंड इंजीनियर्स, ऑक्सफोर्ड
   यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. एफएओ, 2011, ग्लोबल फूड लॉसेस एंड फूड वेस्ट - एक्सटेंड, कॉज एंड प्रिवेंशन, आईएसबीएन 978-92-5-
   107205-9, रोम।
13. एम फुकुओका, 1984, द वन-स्ट्रॉरिवोल्यूशन: एन इंट्रोडक्शनटूनेचुरलफार्मिंग, प्रकाशित (भारत में) फ्रेंड्सरूरल
   सेंटर, रसूलिया
14. इलिच, 1974, एनर्जी एंड इक्विटी, द ट्रिनिटी प्रेस, वॉर्सेस्टर, और हार्परकॉलिन्स, यूएसए।
15. भूटान के राजा जिग्मेखेसर, 2010, कोलकाता विश्वविद्यालय दीक्षांत समारोह में रॉयल एड्रेस, कोलकाता (5अक्टूबर,
   2010)।
16. एम गोविंदराजन, एस नटराजन और वी। एस। सेंथिल कुमार, 2004, इंजीनियरिंग एथिक्स (मानव मूल्यों

सहित), पूर्वी अर्थव्यवस्था संस्करण, प्रेंटिसहॉल ऑफ इंडिया लि।
17. एम के गांधी, 1939, हिंद स्वराज, नवजीवनपब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद।
18. पी एल धर, आर गौड़, 1990, साइंसएंडहुमेनिज़्म, राष्ट्रमंडल प्रकाशक।
19. एस पालेकर, 2000, नेचुरलफार्मिंग का अभ्यास कैसे करें, प्रवीण (वैदिक) कृषि तंत्र शोध, अमरावती।
20. एस जॉर्ज, 1976, हाउ द अदरहाफडाइस, पेंगुइन प्रेस। 1986, 1991 को पुनः प्रकाशित किया गया।

प्रासंगिक वेबसाइट, सीडी और वृत्तचित्र

1. यूनिवर्सलह्यूमनवैल्यूज वेबसाइट, http://www.uhv.org.in/
2. AKTU वैल्यू एजुकेशन वेबसाइट, http://aktu.uhv.org.in/
3. स्टोरीऑफ़स्टफ, http://www.storyofstuff.com/
4. अलगोर, एन इनकनवीनिएंट ट्रुथ, 2006, पैरामाउंटक्लासिक्स, यूएसए
5. चार्लीचैपलिन, मॉडर्नटाइम्स, यूनाइटेड आर्टिस्ट्स, यूएसए
6. आईआईटी दिल्ली, मॉडर्नटेक्नोलॉजी - द अनटोल्डस्टोरी
7. आनंद गांधी, राइटहियरराइटनाउ, 2003, साइकिलवालाप्रोडक्शन
(नोट: इस पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिये एक शिक्षक-मैनुअल भी उपलब्ध है)

विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिए जिससे वे संसार के महान धर्मों को आदर के साथ सीख सकें।

-महात्मा गांधी

राष्ट्र-गीत

वन्दे मातरम्

श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय : आनन्दमठ

वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।
शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकित यामिनीम्।
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्।।
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्।
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।

भारत का संविधान

अध्याय IV A

मूल कर्तव्य

Article 51A

मूल कर्तव्य--भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह--

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्र्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।